श्री... श्री... ...नो विजयतेतराम्

श्री

इश्क कान्ति

इश्क रहस्योद्घाटिनी टीका सहित

❀ श्रीजानकी रमणोविजयतेतराम् ❀

रसिकाधिराज शिरताज अनन्त श्रीविभूषित

युगलानन्यशरणजी महाराज

विरचित

श्रीमधुर मञ्जुमाला ग्रन्थान्तर्गत
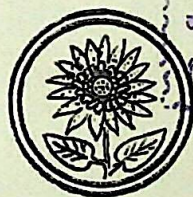
श्रीइश्क कान्ति

इश्क रहस्योद्घाटिनी टीकाकार

शत्रुघ्न शरण

प्रथमावृत्ति ५०० प्रति] सन् १९८० ई० [अग्रिम प्रकाशनार्थ चन्दा १०)

मुद्रकः—मनीराम प्रिंटिंग प्रेस, श्रीअयोध्याजी उ०प्र०)
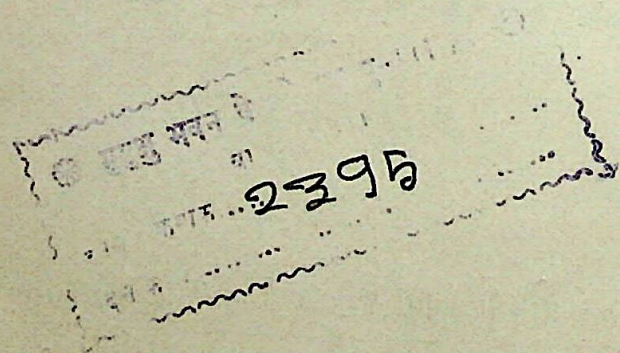
भूमिका

अनन्त श्रीविभूषित रसिकाचार्य स्वामी श्रीयुगलानन्यशरणजी महाराज रसिक सम्प्रदाय के प्रवर्त्तकाचार्यों में अन्यतम थे। पूज्यपाद महाराज श्री संस्कृत, फारसी, उर्दू, हिन्दी आदि अनेक भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उन्होंने शताधिक ग्रन्थों की रचना की है। उनमें मधुरमञ्जुमाला एक विशाल ग्रन्थ है। जिनमें रूपकान्ति, रसकान्ति, इश्ककान्ति आदि बारह कान्तियाँ हैं। यद्यपि सभी बारहों खण्ड अलौकिक हैं, किन्तु उनमें इश्ककान्ति सभी कान्तियों से विलक्षण है। ३०७ छन्दों में निबद्ध यह ग्रन्थरत्न समस्त भक्ति वाङ्मय में अदृष्टचर, अश्रुतपूर्व ग्रन्थ है। यद्यपि इस ग्रन्थ में अनेक विषयों का प्रतिपादन है, किन्तु मुख्यरूप से प्रेमतत्त्व का ही विशद वर्णन किया गया है। तत्सुखसुखित्व की भावना से विभूषित निर्मल निष्कलंक प्रेम को ही ग्रन्थकार ने इश्क के नाम से अभिहित किया है। इस प्रेमतत्त्व को प्राप्त करने वाले महापुरुषों को आशिक के नाम से कहा गया है। परमप्रेमास्पद श्रीजानकीवल्लभजू को माशूक कहा गया है। श्रीस्वामीजी महाराज ने इस प्रेमपथ को अत्यन्त दुर्गम कहा है। वे कहते हैं—

'छठी रात का दूध कढ़े जब चढ़े इश्क की राहें।
मढ़ी मशान समान खान औ पान न नेक निराहें॥
पढ़ी पढ़ाई बात न आवै छावै आह अथाहें।
युगलानन्य कढ़ी कातिल किरपान सुसूर सराहें॥'

श्रीमहाराजजी ने कहा है कि– 'इश्क कोई खाला का घर नहीं है' जहाँ बिना रोक टोक लोग चले जाते हैं। इश्क की आराधना अत्यन्त महंगी है। ये दमड़ी सेर नहीं बिकती—

'इश्क फकीरी अमल अमीरी दमड़ी सेर नहीं हैं'।

प्रेमास्पद से भाँति भाँति के वरदान माँगने वालों का यहाँ कोई स्थान नहीं है। यहाँ तो यार की तलवार के सामने शीश देने वाले होशियार समझे जाते हैं,- यदि वे प्रियतम के कटु बचन श्रवण में सुधा का स्वाद लेते हैं-

'जो मारे तलवार यार हुशयार शीश तब देते हैं।
जो बोले कटु बैन चैनहर तब सम सुधा सहेते हैं॥

इसीलिए इश्कबाजों की श्रेणी कहने सुनने से पृथक् है। वे प्रियतम से कृपा की भिक्षा नहीं माँगते, उनके कोप में ही आनन्द का अनुभव करते हैं-

दरजा दूर इश्कबाजन का कहन सुनन ते न्यारा है।
महबूबों दी मेहर न माँगे कहर महा मुद धारा है॥

आशिकों को दिन रात में एक क्षण के लिये भी अवकाश नहीं है–

आशक को दिन रात कार फ़ुरसत नहिं पाव घड़ी है।
रोना खुद खोना धोना दिल बोना विरह जड़ी है॥

आशिक का श्रीसियावर को छोड़कर किसी से सम्बन्ध नहीं होता—

किस ही से न वासता मेरा फ़क़त सियावर जाने।
अपने घर में मौज निरन्तर कहौ कौन को माने॥

श्रीसीतारमणजी से कैसी प्रीति होनी चाहिये इसका वर्णन पूज्यपाद श्रीमहाराजजी ने २६४ छन्द से २६६ छन्द तक किया है, जो अत्यन्त ही मननीय है। आशिक के लक्षणों का वर्णन छन्द २३० तथा २३३ छन्द में किया है। जो समस्त शास्त्रों का सार प्रतीत होता है। श्रीरूपगोस्वामीजी ने भक्ति रसामृतसिन्धु में–

'क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं विरक्तिर्मानशून्यता, आशाबन्धः समुत्कण्ठा नामगाने सदा रुचिः।
आसक्तिस्तद् गुणाख्याने रतिस्तद्वसतिस्थले, इत्यादयोऽनुभावाः स्युर्जातभावाङ्कुरे जने॥

इन श्लोकों के द्वारा जो प्रेमियों का लक्षण किया है तथा सूफी सन्तों ने जो आशिकों के नौ लक्षण कहे हैं, उन सभी का संग्रह पूर्वोक्त इन दो छन्दों में श्रीमहाराजजीने कर दिया है। जो प्रेमी विरह व्यथा से व्याकुल होकर प्रियतम के मिलन की चाह में तड़फते रहते हैं। वास्तव में वे वंदनीय हैं, किन्तु श्रीमहाराजजी का कथन है कि–प्रबल अनल से भी दाहक विरह ज्वर विरही आशिक को रात दिन जलाता रहे। ऐसी दशामें प्रियतम उसकी ओर न दृष्टिपात करे, न उसकी सुधि ले, फिर भी विरही उस विरह की सराहना करता रहता है–

'अनलहुँ ते अति प्रबल विरहज्वर रैन दिवस दिल दाहे।
बारहमास निवास खास उर पलभर जुदा न जाहे॥
ऐसी दशा समय प्रियतम सुधि लेत न चख चित चाहे।
युगलानन्यशरन एतहुँ पर विरहिन विरह सराहे॥

इसीलिये आशिक की समता करने लायक तीनों लोक में योगी, यति, तपस्वी, ज्ञानी कोई भी नहीं है –

आशक की समता करने लायक तिहुँ लोक न कोई है।
योगी, यती, तपी, ज्ञानी तिसके आगे सब छोई है॥

वास्तव में आशिक होना सरल काम नहीं है, मरने से भी यह कठिन कार्य है; क्योंकि मरने में तो एक ही बार दुख होता है, किन्तु आशिक को तो पल-पल में मरना तथा जीना पड़ता है। इस मार्ग में बुद्धि का चातुर्य एवं यन्त्र मन्त्र का चमत्कार काम नहीं देता है। यहाँ

तो प्रियतम के वियोग में प्रेमी गर्म आहें भरते रहते हैं। आशिक रस को बहुत काल तक रसास्वादन करने पर ही कुछ पता चलेगा—

आशक होना सरल नहीं मरने से मुश्किल मानोगे।
पल पल पर मरना जीना तिसको क्योंकर पहिचानोगे॥
चोज, चमत्कारी न चले तहँ हाय हमेशे ठानोगे।
युगलानन्यशरन आशक रस छानत छानत छानोगे॥ १४॥

इस मार्ग में जाति, विद्या, गुण, रूप, चमक-दमक, एवं प्रभुता का कोई महत्त्व नहीं है। दान, मान, पंथ, ग्रन्थ, आदि से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, वहाँ तो केवल अनन्यप्रेम की ही आवश्यकता है।

जन अभिजन गुन रूप कांति प्रभुता की तहाँ न गिनती है।
दान मान नहि पंथ ग्रंथ सब से उह विलग वसंती है॥
सम्प्रदाय नहिं ज्ञान ध्यान तहँ केवल प्रीति एकंती है।
युगलानन्यशरन आशक बिन को बूझै रसरंती है॥ १५॥

श्रीमहाराजजी कहते हैं कि ज्ञान ग्रन्थ में बहुत वाद-विवाद हैं। कर्मकाण्डों में अनेक उलझनें हैं। भिन्न भिन्न पंथ भिन्न भिन्न मत बतलाते हैं। अतः मेरामन कहीं लगता नहीं। युगलानन्यशरण तो श्रीराम का आशिक बनकर सरयूतट का वास कर रहा है—

'युगलानन्यशरन आशक अब वासी सरयूतट का है।'

इस प्रकार इश्क कान्ति में कहीं- श्रीप्रिया प्रियतम की शोभा का वर्णन, कहीं दुलहा-दुलहिन के मौर-मौरी युत शृंगार का वर्णन, कहीं श्रीराम चरितमानस की प्रशंसा आदि विविध विषयों का वर्णन है। किन्तु मुख्य रूप से प्रेमरस का सागर ही अक्षर-अक्षर में छलक रहा है। जो प्रेमी इसमें अवगाहन करेंगे, वे अवश्य कृतकृत्य होंगे, ऐसी पूर्ण आशा है।

श्रीसीताराम नाम, रूप, लीला, धाम के अनन्य रसिक सन्त प्रवर श्रीशत्रुहन शरणजी महाराज ने इश्क कान्ति की मधुर व्याख्या की है। साथ ही समस्त प्रसङ्गों को अनेक खण्डों में विभाजित कर प्रसंगानुकूल अध्यायों का भी निर्माण किया है। इससे प्रेमियों को इश्क कान्ति के अर्थ समझने में सुविधा होगी। सांथ ही संस्कृत, फारसी आदि के जो कठिन शब्द आये हैं, उनका भी शब्दार्थ कर दिया है; जिससे ग्रन्थ सरल हो गया है। उनकी व्याख्या के द्वारा इस कठिन ग्रन्थ का भलीभाँति रसास्वादन भक्त करेंगे, ऐसी आशा है।

— स्वामी सीताराम शरण
श्रीलक्ष्मणकिलाधीश
अयोध्या

॥ श्री जानकी जानिर्जयति ॥

* टीकाकार के दो शब्द *

मैं मानता हूँ कि मेरे शुष्क हृदय पर दिव्य प्रेम की एक भी छींट नहीं पड़ी है, परन्तु एक तुच्छ प्रेमार्थी तो हूँ ही। श्रीगीता प्रेस के भाई जी का प्रेम दर्शन, श्रीवियोगी हरिजी का प्रेमयोग, श्रीप्रेम चन्द्रिका, श्रीप्रेम विलास आदि प्रेम पुस्तकें मुझे प्रारम्भ से ही अति प्रिय रही हैं। मैंने अपने जीवन का सर्वोत्तम मंगलमय मुहूर्त उसको माना, जिस क्षण मुझे श्री इश्क कान्ति के प्रथमवार दर्शन हुये। मन आनन्द में झूमने लगा, जैसे अपनी कोई खोई निधि मिल जाय। तभी से मैं इस गूढ़ार्थ गर्भित अर्थ गौरव विशिष्ट ग्रन्थ को समझने के प्रयत्न में लगा हूँ। इस कार्य में मुझे दो बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ आईं।

एक तो अरबी फारसी, पंजाबी, संस्कृत, हिन्दी आदि विविध भाषाओं में मिश्रित शब्दावली, मुझ जैसा एक साधारण हिन्दी मात्र के जानकार के लिये दुर्बोध थीं, दूसरी मेरे समान प्रेम हीन व्यक्ति के लिये 'अनिवर्चनीय प्रेम स्वरूपम्' को अपनी स्थूल बुद्धि से समझना।

प्रथम कठिनाई को हल करने के लिये मैंने अरबी फारसी के विद्वानों से सम्पर्क स्थापित किया, किन्तु मुझे संतोष तब हुआ, जब मुहम्मद मुस्तफा खाँ 'मद्दाह' द्वारा संकलित उर्दू हिन्दी शब्द कोष देव नागरी अक्षरों में छपा प्राप्त हुआ। इस परमोपादेय शब्द कोष के धड़ाधड़ तीन संस्करण, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, हिन्दी सदन, महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ से अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। पंजाबी भाषा विदों से मैंने पंजाबी भाषा के शब्दार्थ सुने। अब शब्दार्थ समझना मेरे लिये कठिन नहीं है।

'इश्क क्या सय है, किसी मायल से पूछा चाहिये।
जख्मे दिल क्या है किसी घायल से पूछा चाहिये॥

हमारे परमाराध्य आचार्य चरण इश्क के मर्मज्ञ भुक्त भोगी आशिक हैं। श्रीइश्क कान्ति आप के रसज्ञ हृदय का शब्द चित्र है। परन्तु हम प्रेमहीन, उसको समझे कैसे ? आप ही के रचित श्रीप्रेम प्रकाश, श्रीप्रेम उमंग, श्रीप्रेम परत्व प्रभा दोहावली; श्री प्रीति पचासिका तथा श्री संत सुख प्रकाशिका आदि अनमोल ग्रन्थों के स्वाध्याय से मुझे श्रीइश्क कान्ति के भावों का वाक्य ज्ञान मात्र बहुत थोड़ा सा प्राप्त हुआ है।

अपनी जानकारी की परीक्षा के लिये, मैंने श्रीइश्क कांति की कथा कहने का स्वांग सजा। श्रीअयोध्या के संत भक्तों को मेरी कथा, इतनी रुची कि इन ने श्रीइश्क कांति की टीका कर प्रकाशित कराने के लिये, कुछ द्रव्य भी इकट्ठे कर दिये। इन प्रेमी मित्रों के प्रोत्साहन से, मेरी धृष्टता बढ़ी और मैंने श्रीइश्क कांति जैसे महान ग्रंथ पर टीका लिख कर प्रकाशित कराने की भी अनधिकार चेष्टा कर डाली। मेरा यह बाल प्रयास तो विद्वत्समाज में हास्यास्पद होगा ही, किन्तु दो चार प्रेमियों को भी यह प्रयास लाभप्रद प्रतीत हुआ, तो मैं अपने श्रम को सफल समझूँगा। हितैषियों के आवश्यक संशोधन सुझाव, हर्ष पूर्वक स्वीकृत होंगे तथा अग्रिम संस्करण में इन्हें समाविस्ट करने का यत्न करूँगा। प्रेमी पाठक आशीर्वाद दें कि मुझे भी अपने परम प्रेमास्पद श्रीजानकीरमण के प्रति सच्चा प्रेम मिले।

विनयावनतः—

शत्रुहन शरण

=: श्रीजानकी जानिर्जयति :=

प्राक्कथन

दाम्पत्य भाव से एक दूसरे की ओर स्नेहाकृष्ट प्रेमिका और प्रेमी के निमित्त ही आशिक और माशूक शब्दों का व्यवहार रूढ़ है। उन्हीं की मधुरा प्रीति का नाम इश्क है। ऐसी जागतिक प्रीति इश्क मिजाजी तथा श्रीजानकीरमणजू से सम्बन्धित मधुरा प्रीति इश्क हकीकी कहाती है। हक फारसी नाम भगवत ही का है। प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रयुक्त इश्क भी दिव्य-दाम्पत्य प्रीति का ही बोधक है। इस भाव से श्रीजानकीरमणजू की उपासना, मधुर उपासना कहाती है।

श्रीअग्रदेवाचार्य, विन्द्वाचार्य श्रीस्वामी रामप्रसादजी महाराज, श्रीकरुणासिन्धु प्रभृति महज्जनों द्वारा यह मार्ग शिष्ट परिगृहीत होने से, मधुर उपासना सज्जनों द्वारा स्वतः समादृत है, फिर भी इस सम्बन्ध में आस्था दृढ़ाने के लिये यहाँ कुछ आप्त प्रमाण उद्धृत किये जाते हैं।

❀ जीव का सहज स्त्रीत्व ❀

"स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न विचेदन्धः।" (अथर्ववेद ९।९।१५)

अर्थात् किसी शुद्ध स्वरूप अनुभूत महापुरुष की उक्ति है॥ देखो, मैं हूँ तो स्त्री, फिर भी लोग मुझे पुरुष कहते हैं। ठीक ही है, अक्षुष्मान (आँख वाला) ही वस्तु तत्त्व देखता है, अन्धा नहीं।

ईश्वर प्रणिधाना द्वा १।२३, यथाभिमत ध्याना द्वा १।३९, समाधि सिद्धिरीश्वर प्रणिधानात् आदि योग सूत्र भक्तियोग निर्देशक हैं। योग सूत्र में महर्षि पतञ्जलि ने भक्ति का मधुर परिणाम जीव की अन्तिम परिणति स्त्री रूप में ही बताया है। योग सूत्र में योग द्वारा मायामुक्त जीवों की दो चरम गति बताई गई हैं। यदि साधक सांख्ययोग मार्ग का पथिक है, तो उसे कैवल्य मोक्ष मिलेगा; भक्तियोग के पथिक सगुण ब्रह्म की चिद्शक्ति होने के कारण, अपने शुद्ध स्त्री रूप में प्रतिष्ठित हो जायेंगे। शक्ति शब्द स्त्री लिंग ही है। पुरुषार्थ शून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं, स्वरूप प्रतिष्ठा वा चिति शक्तेः॥ — योगसूत्र ४।३४॥

इसी प्रकार मद्भगवद्गीताचार्य भगवान् भी जीव को अपनी पराप्रकृति बताकर, जीव का नित्य स्त्रीत्व ही सिद्धकर रहे हैं, क्योंकि प्रकृति शब्द स्त्रीलिंग है।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥ (श्रीगीता ७।५)

अर्थात् ऊपर के श्लोक में मैंने (श्रीकृष्ण भगवान ने) अष्टधा प्रकृति बताई वह तो अपरा-प्रकृति है। दूसरी मेरी पराप्रकृति भी है। हे महाबाहो अर्जुन, वह पराप्रकृति जीव है।

आलवार सूरियों ने श्रुति पुराण का मथितार्थ सिद्धान्त निर्भ्रान्त रूप से यही निश्चित किया है कि जीव अपने शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप में नित्य सिद्ध स्त्री ही है।

गोविन्द एव पुरुषो ब्रह्माद्याः स्त्रिय एव च।
वासुदेवः पुमानेकः स्त्री प्रायमितरं जगत् ॥

आगम ग्रन्थों से भी जीव का स्त्रीत्व ही सिद्ध होता है।

आत्मानं चिन्तयेत्तत्र तासां मध्ये मनोरमाम्।
रूप यौवन सम्पन्नां किशोरीं प्रमदाकृतिम् ॥ (श्रीसनत्कुमार तन्त्रे)

अर्थात् भावना में चिन्तवन करना चाहिये कि श्रीसाकेत प्रमदावन की विलासिनियों के मध्य में मैं भी रूप यौवन सम्पन्न मनोरमा किशोरी हूँ।

पुंस्त्वं निशम्य पुरुषोत्तमता विशिष्टे स्त्रीप्राय कथनाज्जगितोऽखिलस्य।
पुंसां च रञ्जक वपुर्गुणवत्तयापि शौरेश्शठारि यमिनोऽजनि कामिनीत्वम् ॥

—द्रमिणोपनिषद्

अर्थात् श्रीशठकोपाचार्य ने निगमागम के मथितार्थ रूप ज्ञान के द्वारा यही निश्चय किया कि पुरुषोत्तम श्रीरघूत्तम में ही सच्चा पुंस्त्व है। उनके अतिरिक्त जगत के प्राणिमात्र स्त्री हैं। श्रीरघुलाल सलोने के रूप में ऐसा प्रभाव है कि पुरुषाभिमानी जीव के हृदयमें भी दिव्य काम संदीपन कर, उसे स्त्रीत्व में आविष्ट कर देते हैं। यही सब सोच विचार कर, आचार्यपाद स्वयं कामिनी भाव में आविष्ट हो गये।

मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा ॥ (श्रीमन्मानस ३।३६।६)

जीव का सहज स्वरूप ज्ञानयोग तपः पूत विशुद्धान्तःकरण वाले दण्डकारण्य वासी ऋषि मुनियों को श्रीराघव रूप दर्शन से प्राप्त हुआ था।

नाना मुनिगणाः सर्वेदण्डकारण्य वासिनः। ज्ञानयोग तपोनिष्ठा जापका ध्यान तत्पराः ॥
मुनिवेषधरं रामं नीलजीमूत सन्निभम्। रमन्ते योषितो भूता रूपं दृष्ट्वा महर्षयः ॥

—श्रीमन्महा रामायण ५२।१४,१५

❀ पुरुष एकमात्र पुरुषोत्तम सगुण ब्रह्म ❀

वैदिक वाङ्मय में कहीं कहीं जीव को भी मुक्तावस्था पर्यन्त पुरुष शब्द से अभिहित किया गया है, परन्तु जीव का वह पुरुष अभिधान तथाकथित ही है, सोपाधिक है। पुरुष में अपेक्षित शौर्य वीर्य एकमात्र श्रीरघुसिंह, श्रीजानकीरमण में ही पाये जाते हैं।

वीर्यं चाक्षीण शक्तित्वं वर्द्धमानाति पौरुषम्।
अपि सर्वदशास्वस्य रामस्याविकृतिश्च तत् ॥ (श्रीभगवद्गुण दर्पणे)

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ (श्रीगीता १५।१७)

अर्थात् क्षर (बद्ध जीव), तथा अक्षर (मुक्त जीव), थोड़ी देर के लिये कहने भर को पुरुष नामधारी हो सकते हैं, परन्तु पुरुषोचित शक्ति सामर्थ्य से सम्पन्न तीनों लोकों के चराचर प्राणियों के अभ्यन्तर प्रविष्ट होकर, सबों का धारण पोषण करने वाला पुरुषोत्तम तो परमात्मा ही हो सकता है। श्रीमिथिलेशकिशोरीजी के साथ सतत रमणशील रहकर, असंख्य साकेत मनोरमाओं को निरन्तर रमाते हुये भी अक्षीण वीर्य बना रहना, पुरुषोत्तम श्रीरघुनन्दन से ही संभव है।

श्रियो रमण सामर्थ्यात् सौन्दर्य गुण सागरात् ।
श्रीराम इति नामेदं विष्णोस्तस्यैव गीयते ॥ (वृद्धहारीत)

मनोभिरामा रामास्ता रामो रमयतां वरः।
रमयामास धर्मात्मा नित्यं परम भूषिताः ॥

—श्रीमद् वाल्मीकीय रा० ७।४२।२२,२३ ।

इन्हीं गुणों के कारण आपका पौरुष सभी लोकों में सुप्रसिद्ध है।

गन्धर्व राज प्रतिमं लोके विख्यात पौरुषम् । (श्रीवाल्मी० १।२६।४।१)

महर्षि वाल्मीकि ने अपने वेदावतारभूत आदि काव्य में ठौर ठौर पर आपको पुरुष व्याघ्र [२।२।४०], पुरुषर्षभ [२।१२।२६], नरोत्तम [२।१८।१३] कहकर, आपकी पुरुषोत्तमता प्रतिपादित की है। जगद्‌गुरु भगवान् शंकर ने उभय विभूतिनायक श्रीरघुनायक ही को पुरुष नाम से प्रसिद्ध माना है।

पुरुष प्रसिद्ध प्रकासनिधि, प्रगट परावर नाथ ।
रघुकुल मनि मम स्वामि सोइ, कहि सिव नायउ माथ॥

— श्रीमानस १।११६ ॥

❁ ब्रह्म की रस--रूपता ❁

रस शब्द लोकोत्तर आनन्द का बाचक है। श्रुति में ब्रह्म को ठौर ठौर पर आनन्द कहा गया है। आनन्द शब्द प्रकारान्तर से रस-रूपता ही का प्रतिपादन करता है। अतः श्रुति ब्रह्म ही को रसस्वरूप मानती है। "रसो वै स ।" तैत्तिरीय० २।७। "सर्वरसः"-छान्दोग्य ३।१४।२। श्रीमानस के रंगभूमि प्रकरण में ब्रह्म का सर्वरस स्वरूप स्पष्ट देखने में आता है।

जिन्ह के रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥
देखहिं रूप महा रनधीरा। मनहुँ वीर रस धरे सरीरा ॥ (वीर रस)
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी । मनहुँ भयानक मूरति भारी॥ (भयानक रस)

रहे असुर छल छोनिप बेषा । तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा ॥ (रौद्र रस)
पुरवासिन्ह देखे दोउ भाई । नरभूषन लोचन सुखदाई ॥
नारि विलोकहि हरषि हिय, निज निज रुचि अनुरूप ।
जनु सोहत सिंगार धरि, मूरति परम अनूप ॥ (शृङ्गार रस)
विदुषन्ह प्रभु विराट मय दीसा । बहु मुख कर पद लोचन सीसा ॥ (अद्भुत रस)
जनक जाति अवलोकहि कैसे । सजन सजे प्रिय लागहि जैसे ॥ (सख्य रस)
सहित विदेह विलोकहिं रानी । सिसु सम प्रीति न जाहिं बखानी ॥ [वात्सल्य रस]
जोगिन्ह परम तत्व मय भासा । सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा ॥ [शान्त रस]

यहाँ के सभी उपलब्ध रसों से अनन्तगुणा अधिक स्वाद रस ब्रह्म श्रीरघुलालजू में है । "स एव रसानां रसतमः परमः परार्द्धं ।" छान्दोग्य १।१।३ ॥ ऐसा सर्वरस परिपूर्ण ब्रह्म भी प्रेमरस का भूखा है । अपने भक्तों में किंचिन्मात्र भी रस देख लेता है, तो उसको रसन करने को ललचा उठता है । रस पाकर वह फूला नहीं समाता ।

रसँ, ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति ॥ [तैत्ति० २।७]

अपने रसदायक भक्त के हाथ अपने को बेच देता है ।

या रस की अनुमात्र छींट जाके हिय लागी ।
वसीभूत तिहि संग रहत प्रभु रस अनुरागी ॥
— बड़ी श्रीध्यान मञ्जरी, १४६ ।

जीवों को भी आनन्द उसी रसमय ब्रह्म के द्वारा प्राप्त होता है ।

"एष ह्येवानन्दयाति" [छान्दोग्य १।१।३]

सो सुखधाम राम अस नामा । अखिल लोक दायक विश्रामा ॥

❀ ब्रह्म जीव की सजातीयता ❀

ब्रह्म की भाँति जीव भी अपने शुद्ध स्वरूप से सच्चिदानन्द है ।

ईश्वर अंस जीव अविनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी ॥
— श्रीमन्मानस ७।११७।२

अन्तर केवल घनत्व और कणत्व का है । ब्रह्म सच्चिदानन्द घन है तो जीव सच्चिदानंद कण । पुरुष ब्रह्म में "पुरुष प्रताप प्रवल सब भाँती" है, तो जीव "अबला अबल सहज जड़ जाती" हैं । अन्तर होना स्वाभाविक है ।

ब्रह्म 'षोडश वर्ष किशोर राम नित सुन्दर रौंज" तो जीव नित्य "किशोरी प्रमदाकृति" है। छान्दोग्य उपनिषद् तृतीय अध्याय, चतुर्दश खण्ड के दूसरे मन्त्र में, जहाँ ब्रह्म को "सर्व कर्मा

सर्व कामः सर्वगन्धः सर्व रसः" कहा गया है, तो वहीं चौथे मन्त्र में महर्षि शाण्डिल्य के मत का अनुवाद करते हुये यही सब विशेषण जीव में भी उपलब्ध कहे गये हैं। "सर्व गन्धः" सूत्र की व्याख्या करते हुये श्रीअयोध्या विहारीलाल के श्रीअङ्गों में कस्तूरी, कर्पूर, केतकी, चन्दन, कृष्णागरु, मुरामांसी, चम्पा, अशोक, केतकी, मालती, जूही, कमल, मंदार, पारिजात आदि पुष्पों की सुगन्धों की स्थिति बताई गई है।

कस्तूरी वासनोङ्गेषु कर्पूर स्थिरवासकः। केतकी कोटि गन्धयङ्गः पाटीर पट्ट गन्धकः॥
कृष्णागरु सुगन्धयङ्गो मुरामांसी सुगन्धकः। चम्पकाशोक शोकघ्नः केतकीयुत सौरभः॥
मालती यूथिकाम्भोज मन्दारामोदमोददः। पारिजात प्रसूनौघः तुल्यः स्वजन मादनः॥

— श्रीभगवद्पुराणे दर्पणे, सौगन्ध्य प्रकरणे।

मुक्त जीवों के स्वरूप भी स्वतः सौगन्ध्य भूषित कहे गये हैं।

ततो मुक्ता महाशुद्धाः स्वतः सौगन्ध्य भूषिताः।

साकेत विलासिनियों के अंगों में भी कमल, मालती, मल्लिका, केतिकी, गुलाब, केशर आदि सौगन्ध्यों का अधिवास बताया गया है।

तत्र काश्चित्पद्मगन्धाः काश्चित्मालति सौरभाः।
मल्लिका गन्धवत्यश्च केतकी सौरभान्विताः॥
पाटलामोदवत्यश्च काश्चित्काश्मीर सौरभाः।
सर्व गन्ध युताश्चान्या मद विह्वलितेक्षणाः॥

— श्रीहनुमत्संहिता ३।३८,३९,४०।

ब्रह्म का श्रीविग्रह परम प्रकाशपूर्ण कहा गया है। सूर्य, चन्द्रमा, तारागण, विद्युत, अग्नि आदि उसे प्रकाशित नहीं करते, वह स्वतः अपने प्रकाश से सम्पन्न है। प्रत्युत ब्रह्म ही प्रकाश-पुञ्जों का भी प्रकाशक है।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्त मनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

यह मन्त्र श्वेता० ६।१४, कठ० २।२१५, मुण्डक २।२।१०, तीनों श्रुतियों में उपलब्ध है।

वही बात श्रीसीता सखियों के अंगों में भी है।

स्वभासा रूप मञ्जर्यो मुखाब्ज किरणोत्किराः।
भासयन्तोहि भवनान्युडुभिः खेमिव चन्द्रमा॥

— श्रीमाधुर्य केलि कादाम्बिनी, २९।

अर्थात् मणिमय भवन के विविध प्रकाशपूर्ण मणियों के प्रकाशों को तारागणों की भाँति अपने मुखचन्द्र के प्रकाश से मन्द करती हुई, ये रूप मञ्जरियाँ श्रीकनक भवन को भी प्रकाशित

कर रही हैं। सभी प्रकाशपूर्ण तत्व भी प्रकाशित हो जाते हैं।

"स्मितास्य जागर्ति मनोहरीणां कान्त्यालि पंक्तिः सहसातिरम्याः ॥ —वही, २५

ब्रह्मरूपा श्रीमैथिलीजू की सखी भी उन्हीं के समान रूप गुण वाली हैं। "तुल्य रूपगुणाः सख्यः" —उज्ज्वल नीलमणि।

❀ ब्रह्म जीव सम्बन्ध ❀

पिछले प्रसंग में जीव का नित्य स्त्रीत्व आप्त प्रमाणों से सिद्ध किया गया है। ब्रह्म ही जीवा-शक्ति के एकमात्र अनादि सिद्ध पति हैं। वेदान्त दर्शन "पत्यादि शब्देभ्यः" १।३।४३ सूत्र से इस सम्बन्ध को पुष्ट करता है। इस सूत्र में पति शब्द के आगे आदि शब्द पत्योचित संरक्षणोप-योगी शक्ति सामर्थ्य, भरण-पोषण, कामपरितोष आदि क्षमता सूचक है।

रघु शब्द का अर्थ शब्द कोश के अनुसार जीव भी होता है। अतः रघुपतिजी जीवमात्र के पति हैं। श्रीमुख वचन भी ऐसा ही है:—

सन्धौ तु समनुप्राप्ते त्रेताया द्वापरस्य च।
रामो दाशरथिर्भूत्वा भविष्यामि जगत्पतिः ॥

— श्रीमहाभारत, शान्ति पर्व, १२.३.४८

जगद्गुरु भगवान शंकरजी अपने महली रूप को श्रीसाकेतविहारीजू की पतिव्रता नारी मानते हैं तथा श्रीराघवजू की अपने पतिभाव से ही भावना किया करते हैं।

पतिव्रता यथा नारी पतिं स्मरति नित्यशः।
तथा स्मरामि लोकेशं रामं विश्वेश्वरेश्वरम् ॥

—पद्मपुराण, उत्तरखण्ड १ १।४

स्वयं भगवान वेद ब्रह्म को जीवमात्र का पति कहते हैं।

पतिर्बभूथा समोजनानामेको विश्वस्य भुवनस्य राजा।

—ऋग्वेद ६।३६।४

अर्थात् हे प्रभो! हम जीवों का एकमात्र अद्वितीय (असमः) पति आप ही हैं। सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्मांडों के भी राजा आप ही हैं। (इससे अपनी अनन्त जीवा रमणी के भरण-पोषण करने की योग्यता भी बताई।)

"प्रियाणां त्वां प्रिय पतिं हवामहे।" —शु०य० २३।१६

अर्थात् हे साकेतविहारीजू समस्त प्रिय वर्गों में (प्रियाणां) आप तो प्रियतम पति ही हैं (त्वां प्रिय पतिं)। अतः हम आप ही का आवाहन [हवामहे] करते हैं।

"हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।"

—अथर्व संहिता कांड ४, सूक्त २, मन्त्र ७।

अर्थात् स्वर्णांगी श्रीमैथिलीजी को हृदय में धारण करने वाले [हिरण्यगर्भः] साकेताधीश परतम ब्रह्म अनादि सनातन पुरुष है [समवर्त्तताग्रे]। वही एकमात्र प्राणि समूह के पति थे और हैं। "भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्"। "परिष्वजन्ते जनयो यथा पतिं" ऋग्वेद १०।४३।१ अर्थात् प्रियतम प्रभो आपके ध्यान करने से मुझे वही आनन्द मिलता है, जो कामिनी को अपने प्रियतम पति के परिरंभण से मिले।

हमारे सम्प्रदायाचार्य भगवत्पाद श्रीरामानन्द स्वामीजी ने अपने रचित वैष्णव मताब्जभास्कर में श्रीराम मन्त्र के अर्थ करते हुये,जीव ब्रह्म में भार्या भर्त्ता,भोग्य और भोक्ता का सम्बन्ध बताया है।

भार्या भर्तृत्व सम्बन्धोऽप्यनन्यार्हत्व वाचिना।
पष्ठ्यन्तेन मकारेण भोग्य भोक्तृत्वमप्युत॥

❁ शृङ्गार रस की उत्कृष्टता ❁

शृंगार शब्द का अर्थ ही सिद्ध करता है कि इसी रस से युक्त मधुर उपासना करने वाले श्रीराघवजू के प्रति अनुराग की सर्वोच्च शिखर पर पहुँच सकते हैं।

शृङ्गं अत्युच्चं ऋच्छति गच्छति इति शृङ्गारः।

यों तो सख्यादि पंच भक्तिरस एवं करुणहास्यादि सप्तगौण रस सभी रस कहाते हैं, किन्तु रस शब्द व्यवहार में शृंगार रस के लिये ही रूढ़ है।

रस शब्दोहि शृङ्गारे मुख्यवृत्तितया स्थितः।
अन्यत्र स भवेद्गौणः परिभाषा विवर्जितः॥

— श्रीलोमश संहिता, १५।३६।

"शृंगारमेव रसनाद् रसमामनामः" भोज प्रबन्ध में कहा गया है कि सर्वोत्कृष्ट आस्वाद्य होने से हम लोग शृंगार को ही रस मानते हैं।

शृङ्गारो मिश्र तत्वेऽपि सर्वेभ्यो बलवत्तरः।
तीव्रातितीव्रतरं हि रतेस्तत्रैव वीक्ष्यते॥

— आत्म सम्बन्ध दर्पण।

अर्थात् शृंगार सभी रस तत्वों में अधिक शक्तिशाली है। दाम्पत्य स्नेह की रति स्थायीभाव) अपनी तीव्रातितीव्र दशा में संवर्द्धनशील इसी रस में होती हुई देखी जाती है।

❁ श्रीअयोध्या विहारी की मधुर उपासना ❁

रूप गुण अभिनव यौवन सम्पन्न कुलकन्या अपने वरेण्यवर में खोजती है १–रूपाकर्षण, २–रसनीय सद्गुण, ३–रसिकता, और ४–निजी प्रयोजन पूर्ण करने की योग्यता।

श्रीरघुलालजू में ये चारो वस्तुएँ भरपूर हैं, तथा स्थायी एवं चिरंतन हैं।

१– रूपाकर्षण ऐसा है कि "करतल बान धनुष अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा॥"

कहहु सखी अस को तनु धारी । जो न मोह यह रूप निहारी ॥
खग मृग मगन देखि छवि होही । लिये चोरिचित राम बटोही ॥

चन्द्रकान्ताननं राममतीव प्रियदर्शनम् ।
रूपौदार्य गुणैः पुंसां दृष्टि चित्तापहारिणम् ॥

— श्रीवाल्मीक० २।३।२८ ।

अर्थात् श्रीराघव मुखचन्द्र प्रियदर्शन हैं। अपनी रूप उदारता से नारी को कौन कहे, पुरुषों के मन नयन चुराते हैं।

९- रसनीय गुणगण—

उत्फुल्लामल कोमलोत्पलदल श्यामाय रामाय नः ।
कामाय प्रमदा मनोहर गुणग्रामाय रामात्मने ॥

-- श्रीसनत्कुमार संहिता (रामस्तव राज), ५४ ।

अर्थात् प्रफुल्ल कमलदल नयन श्यामसलोने श्रीरघुलालजी में प्रमदाओं के मन को फँसाने वाले गुण समूह भरपूर हैं।

कामपूर्णं कामवरं कामास्पद मनोहरम् ।
कन्दर्प कोटि लावण्यं रमणीगण मोहनम् ॥

— श्रीराम स्तवराज, ३७ ।

एक रमणी श्रीरघुलालजू की ओर स्नेहाकृष्ट होने का कारण बताती है।

तत्र हेतुस्त्वदीयं तु रूपं सौन्दर्यमुत्तमम् ।
माधुर्यं यौवनारम्भः सौगन्ध्यः सुकुमारता ॥
लावण्यं परमाकान्तिः सौशिल्यं खलु सौहृदम् ।
सौलभ्यं परवात्सल्यं प्रसन्नत्वं स्वभावतः ॥
शक्तिर्नाना विधा सर्वकला प्रावीण्यमाश्रयम् ॥

— श्रीशिव संहिता १६।५६-५८ ।

३- रसिकता—रसिक वही है जो भोग्यतत्व का मर्मी हो, उसमें भोगने की सामर्थ्य हो, अपनी भोग्याओं से मधुर व्यवहार करने वाला हो, अपनी भार्याओं के प्रति अनुरागी हो तथा लोक में जिसका सुयश फैला हो।

वेत्ता भोग्यस्य भोक्तुं वा समर्थः शील इत्यपि ।
पुण्यश्लोकानुरागी च रसिकोऽसौ प्रकीर्त्तितः ॥
चतुर्दश रसाभोगी नागराणां शिरोमणिः ।
नानावर्ण समायुक्तो मोदते वन कानने ॥

— श्रीअग्रदेव स्वामी कृत संस्कृत अष्टयाम् ।

अर्थात् चौदह प्रकार के रसों का भोक्ता, नायकेन्द्र चूड़ामणि श्रीसीताकान्त नाना रसिकोचित गुणों से सम्पन्न, श्रीप्रमोदवन में वनिता विहार का आनन्द लूट रहे हैं।

कामरूपं कलावन्तं कामिनी कामदं विभुम्।

श्रीराम स्तवराज, ३१।

अर्थात् नवयुवतियों के मन में कामोन्माद उत्पन्न करने में, श्रीराघवजू काम ही की प्रतिमूर्ति हैं। सभी प्रकार की कामकला के मर्मज्ञ हैं। दक्षिण नायक की भाँति सभी कामिनियों के मदन मनोरथ प्रपूरक हैं।

४- अपनी रमणियों के प्रयोजन पूरक:— अनन्त ब्रह्माण्ड नायक सार्वभौम चक्रवर्ती सम्राट् उदार शिरोमणि श्रीराघव की अन्तःपुर किंकरियाँ अनन्त इन्द्रों से भी अधिक भोग पदार्थों से सम्पन्न हैं। आपकी पाणिगृहीता पत्नियों को वह भोगैश्वर्य सुलभ है, जो महालक्ष्मी के लिये भी दुर्लभ है।

पुनः मुक्तात्माओं में यह शक्तिस्वरूप सिद्धि होती है कि गन्धमाल्य, भोज्यान्न पान, गीतवादित्र उपकरण, तथा अन्यान्य प्रयोजनीय वस्तुओं को अपने संकल्प से प्रगट कर दे।

"अथ यदि गन्धमाल्य लोककामो भवति, संकल्पादेवास्य गन्धमाल्ये समुपतिष्ठत स्तेन गन्धमाल्य लोकेन सम्पन्नो महीयते।" – छान्दोग्य ८।२।६-१०।

❀ श्रृङ्गार रसमयी मधुर उपासना का मधुर परिणाम ❀

"या प्रीतिरस्ति विषयष्वविवेक भाजां,
सैवाच्युते भवति भक्ति पदाभिधेया।
भक्तिस्तु काम इह कमनीय रूपे,
तस्मान्मुनि रजनि कामुक वाक्य भङ्गी॥"

अर्थात् जो विषय स्पृहा अविवेकी पुरुषों में घृणित मानी जाती है; वही अच्युत श्रीरघुलालजू में भक्तिरूपा बन जाती है। उनके कमनीय कलेवर के प्रति कामवासना भी परमाभक्ति कहाती है। इसी से श्रीशठकोप मुनि प्रेमोन्मत्त दशा में कामुकों की तरह वाक्य प्रलाप करने लगे थे।

"यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् सोऽश्नुते।
सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता॥"

अर्थात् (परमे व्योमन्) परात्पर धाम श्रीसाकेत स्थित (निहितं गुहायां) गोप्यातिगोप्य प्रमदावन के प्रमदा लम्पट श्रीजानकीरमण को (वेद) तत्वतः भाव समाधि में साक्षात्कार ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वह साधन सिद्ध भावुक कोककलाविद् (विपश्चिता) श्रीसाकेत प्रमदावन विहारी के साथ, सब प्रकार के कामानन्द का उपभोग करता है (सर्वान् कामान् अश्नुते)। यहाँ अश्नुते का अर्थ भुञ्जते है न कि प्राप्त करना।

अतः प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय शास्त्र सम्मत एवं शिष्ट परिगृहीत होने से ग्राह्य है। पाठक इसी दृष्टिकोण से ग्रन्थ रत्न कर स्वाध्याय करें।

❀ श्रीमते स्वामिने युगलानन्यशरणाय नमः ❀

❀ समर्पण ❀

श्रीइश्क़ कान्ति के प्रणम्य प्रणेता असंख्य चरणाश्रित प्रतिपालक, अघमोद्धारक, अनन्त श्रीविभूषित रसिकाधिराज शिरताज स्वामी युगलानन्यशरण जी महाराज

परमाराध्य आचार्य शिरोमणि,

मुझ अबोध चरणाश्रित के द्वारा अपनी कृपा प्रसाद से लिखाई गई यह इश्क रहस्योद्घाटिनी टीका सहस्रों साष्टाङ्ग प्रणिपात पूर्वक, आप ही के कृपामय करकंज में सादर सविनय समर्पित है।

भवदीय चरणरेणु क्षुधातुर

दीन हीन शत्रुहनशरण

❀ विषय-सूची ❀

❀ प्रस्तुत ग्रन्थान्तर्गत छन्दों की क्रम संख्या ❀

प्रस्तुत दुष्प्रवेश एवं दुर्बोध ग्रन्थ रत्न श्रीइश्ककान्ति के स्वाध्याय काल में हमें इनमें कई प्रकरण यत्र तत्र बिखरे रूप में मिले। कविश्री अपने इश्क की दीवानी दशा में समुच्चरित उन्मत्त स्नेहोद्गार में प्रकरण सजाने की क्या परवा करते? श्रीग्रन्थ को सुबोध एवं हृदयग्राही बनाने के लिये, हमें बिखरे प्रकरणों को यथास्थान सजाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। अतः पूर्व संस्करणों की छन्द क्रमसंख्या बदलकर, नवीन क्रमसंख्या बनाने के लिये हमें विवश होना पड़ा। इस धृष्टता के लिये हम परमाराध्य श्रीग्रन्थकर्त्ता जू तथा सहृदय पाठकों से विनम्र क्षमा याचना करते हैं। छन्दों की प्रारम्भिक संख्या प्रस्तुत संस्करण की क्रमसंख्या है। प्रत्येक छन्दान्त में हमने पूर्वसंस्करणों की क्रमसंख्या जोड़ दी है। श्रीग्रन्थ में केवल ३०७ छन्द और एक अन्तिम दोहा हैं। इस संस्करण में क्रमसंख्या ३०९ हो जाती है। इसका कारण है कि पृष्ट १२२-१२३ के बीच में छन्द क्रमसंख्या १३६ के पश्चात् १३९ आ जाती है। बीच वाली संख्या १३७ तथा १३८ हमारी भूल से छुट गई है।

❀ सांकेतिक अक्षरों के तात्पर्य ❀

शब्दार्थ प्रसंगों में मूल शब्दों के आगे अ० अरबी भाषा के शब्द, फा० फारसी भाषा के शब्द, पं० पंजाबी भाषा के शब्द तथा सं० संस्कृति शब्दों के द्योतक हैं। अन्यत्र से उद्धृत पदों के आगे सं० सु० प्र० संत सुख प्रकाशिका नाम्नी पुस्तक का संकेतक हैं। कहीं कहीं प्रे० प्र० प्रेम प्रकाश नामक ग्रन्थ के बदले लिखा गया है। चतुर पाठक सांकेतिक अक्षरों के भाव स्वयं समझ जायेंगे।

❀ धन्यवाद ❀

ग्रन्थ प्रकाशन के निमित्त, आगरा वाली बहन श्रीसियासहेलीजी ने २०००) रु०, राधाकृष्णधानुका प्रकाशन संस्थान कलकत्ता ने १०००) रु०, फतेहपुर (तहसील) जि० बाराबंकी वाले भल्ला भ्राता द्वय ने १०००) रु०, श्रीलक्ष्मणकिला की गिन्नीबाई जी ने २००) रु०, जोधपुर वाले बाबा जगदीशराम ने १००) रु०, तथा कई अन्यान्य सज्जनों ने अर्थ सहाय्य किये हैं। एतदर्थ सभी उदार दाता धन्यवाद के पात्र हैं। प्रेस में दौड़-धूप के निमित्त श्रीसियारघुवीरशरणजी भी धन्यबादार्ह हैं।

— शत्रुहन शरण।

अनंत श्री स्वामी युगलानन्य शरण जी

❀ श्री सद्गुरु चरणकमलेभ्यो नमः ❀

❀ रसिकजन प्राणवल्लभाय नमः ❀

श्री मधुर मञ्जु माला ग्रन्थान्तर्गत

इश्क कान्ति

॥ स्तुत्य ग्रन्थ का नामार्थ ॥

पूज्यपाद ग्रन्थकार स्वरचित बीसायंत्र नामक पुस्तिका में इश्क शब्द की परिभाषा लिखते हैं :—

"अति आसक्ति सनेह रस, मन महबूब मोकाम।
होश हिसाब न हिरस दिल, इश्क असल अभिराम॥"

अर्थात् प्रेमास्पद प्रेमसिन्धु श्री जानकीरमण जू के मनरंजन रूप में प्रेमसाधक के मन की सुदृढ़ स्थिति हो जाय तथा स्नेहातिरेक के कारण, उन में अतिशय आसक्ति हो जाय, उसी को सच्चा इश्क कहेंगे। इश्क की दशा में आशिक को अपने तन मन की सुधि बुधि नहीं रहती, न उसे प्रेम के व्यतिरेक किसी अन्य वस्तु की चाहना ही होती है।

पुनः प्रस्तुत ग्रन्थ के ही दूसरे खण्ड के प्रारंभिक छन्द में इश्क शब्द का अक्षरार्थ भी किया गया है।

"ऐन ऐन महबूब रूप निज नैन बैन में लाते हैं।
शरम साज शरबत सम पीके तन मन सुख सरसाते हैं॥
करक करारी दरदिल हरगिज नेस्त अधिक तलफाते हैं।
युगलानन्य इश्क अच्छर वर तीन पीन मद माते हैं॥"

उपर्युक्त छन्द की व्याख्या यथा स्थान देखिये। प्रस्तुत ग्रन्थरत्न श्री इश्क कान्ति, श्री मधुर मंजुमाला नामक एक वृहद् ग्रन्थ का खण्ड मात्र है। रसिकाचार्य अनन्त श्री स्वामी युगलानन्य शरण जी महाराज द्वारा विरचित मूलग्रन्थ श्रीमधुर मंजुमाला उपासक संसार के लिये अनुपम देन है। ग्रन्थ क्या है? मधुर मनोहर मणियों की एक स्पृहनीय माला है। सहृदय रसज्ञ पाठक इन्हें

अपने हृदय का भूषण बनावें। मंजुछंद में रचित इस माला की मणियोंमें न्यारी न्यारी कान्ति (छटा) है। अतः बारह विभागों में विभक्त मूल ग्रन्थ का प्रत्येक विभाग कान्ति नाम से अभिहित किया गया है। हम बारहों की सूची नीचे प्रस्तुत करेंगे।

क्रमांक	ग्रन्थ	छंद संख्या
	एक जिल्द में प्रकाशित :—	
१	श्रीविनय कान्ति	६०
२	श्रीसत्संग कान्ति	८६
३	श्रीवैराग्य कान्ति	१६०
४	श्री ज्ञान कान्ति	२५२
५	श्रीभक्ति कान्ति	१६६
६	श्रीधाम कान्ति सटीक प्रकाशित	१४२

क्रमांक	ग्रन्थ	छन्द सं०	
७	श्री सुगुण कान्ति	१२२	अप्रकाशित
८	श्रीरूप कान्ति	२०४	प्रकाशित जिल्द में
९	श्री रस कान्ति	१५०	अप्रकाशित
१०	श्री रहस्य कान्ति	१२८	अप्रकाशित
११	श्रीइश्क कान्ति	३०७	प्रकाशित
१२	श्रीनाम कान्ति	२५६	प्रकाशित

मङ्गलाचरण ?

मूल ग्रन्थ श्री मधुर मञ्जु माला की प्रारम्भि विनय कान्ति में आदर्श ग्रन्थ कर्त्ता ने इक्कीस मंजु छन्दों में सम्पूर्ण ग्रन्थ के लिये सुविस्तृत मंगलाचरण लिखा। अतः प्रत्येक कान्ति के लिये पृथक पृथक मंगल की आवश्यकता नहीं रह गई। मंगलाचरण के प्रथम तथा अन्त वाले छंद इस प्रकार हैं:—

श्री शत सहस्र सहित श्री गुरु पद पदुम पराग प्रकाशी।
प्रनमो प्रीति प्रतीति प्रणय पन धारि धारणा खाशी॥
जयति जानकी जानि नाम रस रूप विभास विभासी।
युगलानन्य शरन सेवक पर पूरन कृपा सुपासी॥ १॥

श्री सतगुरु पद पदुम परमपद पावन प्रगट प्रभाकर हैं।
प्रीतम प्रान प्रनत प्रतिपालक मालक माल सुधाकर हैं॥
जड़ित जवाहर वचन रचन वर बोध विवरधन आकर हैं।
युगल अनन्य शरन लघुजन पर रैन ऐन करुनाकर हैं॥ २१॥

—:०:—

❋ प्रथम खण्ड ❋

❀ पहला अध्याय ❀

❀ विषय प्रवेश ❀

❀ मूल छंद ❀

इश्क रहस्य अथाह नाह प्रिय चाह समेत बखानो।
जाके श्रवन मनन कीने सियस्याम मिलत रसखानो ॥
याके परे अपर नाहीं कछु वेद पुरान पछानो।
युगलानन्य शरन सब तजि निज इश्क कथा उरझानो ॥ १ ॥

शब्दार्थः—इश्क=अत्यासक्ति पूर्ण स्नेह। रहस्य=गूढ मर्म, गोप्य वस्तु। अथाह=गंभीर। नाह=श्रीजानकीनाथ। चाह=प्राप्ति इच्छा। श्रवन=पढ़ने से, मर्मी सज्जन के मुख से सुनने पर। मनन=विचार करने से। रसखान=रस के उत्पत्ति स्थान। निज=नित्य ब्रह्म के साथ। उरझानो= लिप्त हुये हैं।

व्याख्याः-इश्क की परिभाषा लिख चुके हैं। इश्क में स्नेह तथा आसक्ति उभय मिले रहते हैं।

स्नेह—"दर्शने स्पर्शने वापि श्रवणे भाषणेऽपि वा।
यत्र द्रवत्यन्तरङ्गं स स्नेह इति कथ्यते ॥
अत्रोदिते भवेज्जातु न तृप्ति दर्शनादिषु।"

अर्थात्—स्नेह प्रेम की वह पराकाष्ठावस्था है, जहाँ अपने प्रेमास्पद के दर्शन, स्पर्श, चर्चा-श्रवण, तत्सम्बन्धी संभाषण करते ही अन्तःकरण द्रवित होने लगे। स्नेह के उदय होने पर प्रेमास्पद के दर्शनादि चाहे कल्पपर्यन्त करते रहें, तृप्ति नहीं होती।

आसक्ति—"आसक्ति जु असक्तचित, जहँ तहँ निकसत नाहिं।
किये उपायो कोटि विधि, नहिं लावत मन माहिं ॥

अर्थात्—अपने प्रेमास्पद में चित्तवृति समासक्त होने पर करोड़ों उपाय करने पर भी वहाँ से न हटे, न हटाने की इच्छा मन में हो।

इश्क में उपर्युक्त स्नेह और आसक्ति का संमिश्रण होता है। यह कथन भी सन्तोषार्थ ही समझिये। सच्ची बात तो यह है कि "अनिर्वचनीय प्रेम स्वरूपम्" (श्रीनारद भक्ति सूत्र)।

दिव्य प्रेम लोकभाषा का विषय है ही नहीं। जिन्हें इश्क की दशा प्राप्त हुई नहीं, वे विचारे क्या जाने ? जिन्हें प्राप्त हो गई है, वे भी 'गुंगे के गुड़ स्वाद' के समान कह नहीं सकते।

अतः इश्क को गूढ विषय कहा गया। प्रेमसिंधु का नाप तौल कौन करे ? यथा—

"चढ़त न चातक चित कबहु, प्रिय पयोद के दोष।
तुलसी प्रेम पयोधि की, ताते नाप न जोख॥

(श्री दोहावली २८१)

अतः इश्क अथाह है। 'रामहि केवल प्रेम पियारा॥' इसलिये इश्क को नाह प्रिय कहा गया।

इश्क स्वतः रसनीय है। इसकी चर्चा में भी मजा आता है। अतः पूज्य ग्रन्थकर्त्ता इस विषय को चाह के साथ कहते हैं। पूज्य ग्रन्थकर्त्ता आशीर्वादात्मक फलश्रुति बताते हैं कि प्रस्तुत ग्रन्थ के पठन, श्रवण एवं मनन करने से इश्क रिझवार श्री सीताराम जी अनायास मिल जाते हैं, क्योंकि "तुम रीझहु सनेह सुठि थोरे।" वाला स्वभाव है। वे इश्क ग्राहक हैं। "रसो वै सः। रसो ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति" इति श्रुति।

नितान्त सत्यसार ग्राही, यथार्थ वक्ता वेद पुराणों की जानकारी में जितनी भी स्पृहणीय वस्तुएँ हैं, उनमें इश्क सर्वोत्कृष्ट है। इससे बढ़कर प्राप्य वस्तु कोई भी नहीं।

श्रीयुगल ललन जानकी रमण में अनन्य भाव से शरणापन्न होने वाले पूज्य ग्रन्थकार, इश्क रहस्य के निर्वचन करने में इतना अधिक रसानुभव कर रहे हैं कि आप सभी अन्यान्य चर्चाओं को छोड़ कर, एकमात्र इश्क चर्चा में ही उलझे रहना चाहते हैं।

ठीक ही है, इश्क मिल गया तो और चाहिये ही क्या ?

"यत्प्राप्य न किञ्चिद्वाञ्छति न शोचते, न द्वेष्टि न रमते, नोत्साही भवति॥"

(श्रीनारद भक्ति सूत्र ५)

आशिक को न कोई चाह, न शोच, न किसी से द्वेष, न अन्य रुचि, न अपर उत्साह।

ऊपर चर्चित मधुर मञ्जुमाला ग्रन्थ की पाँचवी, भक्ति कान्ति है तथा ग्यारहवीं है प्रस्तुत पुस्तिका इश्ककान्ति। विचार करने पर भक्ति एवं इश्क में बहुत अन्तर है।

अपने सेव्य गुरुजनों में श्रद्धामिश्रित प्रेम, भक्ति है। यथा-मातृ भक्ति, गुरु भक्ति आदि। सजातीय समान धर्मी व्यक्ति विशेष में स्नेहात्मिका आसक्ति इश्क कहाती है। आशिक, माशूक, इश्क आदि शब्दों के प्रयोग शृँगार रसात्मक प्रेमियों के निमित्त व्यवहार देश में रूढ़। प्रस्तुत ग्रन्थ के इश्क, आशिक आदि शब्द भी इसी भाव से कहे गये हैं।

अग्रिम छन्द की अवतरणिकाः—

जाको लहि कछु कहन की, चाह न हिय में होय।
जयति जगत पावन करन, प्रेम वरन यह दोय॥

"उलटी पलटी करहु निखिल जग की परिभाषा।
मिलहिं न पै कहुँ एक प्रेम पूरी परिभाषा॥"
"जानत हूँ कछु प्रेम स्वाद सुख वरनि न आवत।
जदपि परम वाचाल मूक वनि भाव वतावत॥"

॥ मूल छन्द ॥

२– इश्क कथा को कहे जवाँ से अकथ सुमन मति बानी है।
कागज कलम न मसि लायक तेहि समुझत शौक समानी है॥
हो रहिये खामोश होश बिन निर्मल नेह निशानी है।
युगलानन्य शरन मेरी मति इश्क सुदस्त बिकानी है॥ ३०॥

शब्दार्थः—जवाँ (फा०)=जीभ। अकथ=कहने में नहीं आने वाला। सुमन=सुन्दर मन। मति=बुद्धि। बानी (वाणी सं०)=वचन, भाषा। मसि=रोशनाई। शौक=अधिक चाह। समानी=डूब गई। खामोश (फा०)=चुप। होश=सुधि, बुधि। निशानी=पहचान, लक्षण। सुदस्त (फा०)=सुंदर हाथों में।

भावार्थः—इश्क का संपूर्ण वृतान्त अपनी जीभ से कहने में कौन समर्थ है? बात यह है कि—

"प्रेम हरी को रूप है, त्यों हरि प्रेम स्वरूप।
एक होय द्वै यों लसैं, ज्यों सूरज अरु धूप॥

अतः प्रभु के समान ही प्रेम भी अनिर्वचनीय है।

"मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकइ सकल अनुमानी॥"

लौकिक संबंधियों में जो मोह परक प्रेमाभास होता है, उसे फारसी में इश्क मिजाजी कहते हैं। दिव्य प्रेम इश्क हक़ीकी कहाता है।

आप इश्क हक़ीकी के विषय को लिपिवद्ध करना चाहें, तो उन के उपयुक्त कागज, कलम एवं स्याही लायेंगे कहाँ से? मान लिया कि आप स्वर्णपत्र पर, मणिमय कलम से, अष्टगंध की स्याही बनाकर लिखेंगे। तौ भी ये सभी साहित्य मायिक ही हुये न? दिव्य वस्तु को मायिक वस्तु से संसर्ग कराना कहाँ का न्याय है?

पूज्य चरण कवि की मान्यता में इश्क कहने सुनने की नहीं, आस्वादन करने की वस्तु है। चिड़िया भी अपने चारे का स्वाद लेते समय चहचहाना बंद कर मौन हो जातीहै। आपभी मौन होकर इश्क का मजा चखिये, और मगन हो जाइये। जागतिक सुधि बुधि भूल जाइये।

विशुद्ध स्नेह के उदय होने पर, अपने प्रेमास्पद के स्मरण वाली तन्मयता विभोर कर ही देती है।

श्रद्धेय कवि कहते हैं कि इश्क विषय में कुछ कहूँ भी तो कैसे ? मेरी बुद्धि श्री इश्क देव के मनोज्ञ करकंज में बिक चुकी है। बुद्धि अपने अधिकार में होती, तो कुछ इस विषय पर सोच विचार कर कहता भी।

फिर अग्रिम विषय कहा कैसे ? बुद्धि तत्व में श्रीइश्कदेव एकाकार होकर स्वयं कहवा रहे हैं। इसी से आप प्रस्तुत ग्रन्थ में इश्क स्वरूप का सच्चा चित्रण देखेंगे।

अनिर्वचनीय विषय पर, कुशल कवि ने कलम क्यों उठाई ? अग्रिम छन्द में आप इन्हीं के शब्दों में सुनिये :—

॥ मूल छन्द ॥

३—ज्यों वर बाग विगत मानव, सुख-सपन कहौं किमि प्यारे ?
चाहत कहन थकित पुनि पुनि मन वचन अगम अवधारे॥
कथनी कही कही गावैं सब बकता बने विचारे।
युगलानन्य शरन अनुभव अनुराग विवश निरधारे॥ ८१॥

शब्दार्थः— मानव=जागतिक मनुष्य। वर बाग=कुशल वाणी। विगत=परे। सुख सपन=समाधि दशा का अनुभूत दिव्यानन्द। प्यारे=पाठकों के लिये सम्बोधन अथवा अपने प्रेमास्पद विषयक। थकित=रुक जाती है। अगम=जहाँ पहुँच नहीं हो। अवधारे=निर्णय किया। विचारे=सूक्ष्म समझ के गरीब। निरधारे=निश्चय पूर्वक कहा।

भावार्थः— प्रेमयोगी मानसी भावना की भाव समाधि में प्रियतम प्रभु साकेत प्रमदावन विहारी जू की प्रेममयी रसीली लीलाओं को साक्षात् की भाँति देखकर, उसी दिव्यानन्द में छक जाते हैं। उनका वह समाधि सुख मानव भाषा की चतुरातिचतुर वाणी में भी व्यक्त करने योग्य नहीं होता। इस अवस्था में प्रिय पाठक ! आप ही बताइये कि मैं (कवि) कहूँ भी तो कैसे कहूँ ?

दिव्य आशिकी इश्कबाजी सीखने वालों के लिये मार्ग प्रदर्शन रूप यह ग्रन्थ मैं (कवि) लिखना तो चाहता हूँ, किन्तु पदे पदे पर मेरी वाणी रुक जाती है। कारण यह कि इश्क तत्त्व पर विचार करते ही, प्रेमास्पद श्री जानकी रमण में तन्मयता हो जाती है। उस तन्मय दशा में वाणी की गति रुक जाना सहज संभव है। पुनः विचार करता हूँ, भाई ! यह इश्क का विषय मन वाणी से अगोचर है। चलो, छोड़ो इस पर कलम चलाना।

मैंने अपने अनेक पूर्ववर्ती लेखकों की इश्क तत्व पर कृतियाँ देखी हैं। मुझे ऐसा लगा कि इन्हें सच्ची आशिकी का अनुभव नहीं है। बेचारे भुक्त भोगी न होने के कारण, स्वयं अपनी ओर से कुछ मौलिक नवीन वस्तु कहें भी तो कहाँ से ? किन्तु वक्ता कहाने के लोभ से इन्हें कुछ न कुछ कहना ही है। अतः औरों की कथनी का पिष्ठ पेषण करते हुये, अपने शब्दों में उनका अनुवाद कर, संतोष कर लेते हैं।

किन्तु मुझे पराये भाव की चोरी अच्छी लगी नहीं। सोचा अपना स्वयं का इष्ट कृपा प्राप्त अनुभव कहूँगा। परन्तु एक असमंजस सामने आया। इश्क देश की नीति है। "चाखे रस भाषे सपनेहु नहिं।" ऐसा विचार कर पुनः चुप्पी साधी। तब तो अनुराग का ऐसा उमंग उठा कि काव्य की अजस्र धारा स्वतः हृदय रूपी पर्वत गुफा से फूट निकली और प्रवाहित हो चली। मैं यंत्री की भाँति "केनापि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।" कलम चलाने लगा। उसमें, अपना अनुभव ही अनुभव कहा गया। क्या करूँ, अनुभव प्रगट करने की वस्तु है नहीं, किंतु मैं अपने वश में स्वतंत्र तो था नहीं, था अनुराग के परवश। नीचे हम पूज्य ग्रन्थकर्त्ता जी महाराज विरचित श्री प्रेमप्रकाश नामक ग्रन्थ रत्न के तीन अरिल छंद उपर्युक्त भाव के स्पष्टीकरण में उद्धृत करते हैं।

"संत सोहावन रीति सुनो मन मोद सें।
जेहि विधि विरचे छंद ललित सुविनोद सें॥
छाया लेश न लेय किसी के ग्रंथ का।
हरिहाँ, प्रभु प्रेरित यच कहें रहस सतपंथ का॥ ८१२॥
आकस्मात उदोत होत पद प्यारमय।
नाम रटत एकतार रूप गुन ध्यान लय॥
रहे न उन से गोप रहस रसखान की।
हरिहाँ, प्रभु प्रताप पट्ट पाय आप कुर्बान की॥ ८१३॥
सुरसरिता की धार धवल सम एक रस।
बानी विमल विचित्र कहे सुनि सुमन वस॥
दृगदेखी वै कहें कल्पना त्यागि के।
हरिहाँ, तिनकी कविता सुनों गुनो अनुरागि के॥ ८१४॥
"उमा जोग जप दान तप, नाना मख व्रत नेम।
राम कृपा नहिं करहिं तसि, जसि निष्केवल प्रेम॥'

श्रीमानस ६। ११७

ऊपर उद्धृत मानसोक्ति से मिलती जुलती सदुक्ति पूज्य ग्रन्थकर्त्ता के अग्रिम छंद में पढ़िये।

॥ इश्क महिमा मूल छन्द ॥

४– सियवल्लभ वर वपुष मिलन हित अद्भुत इश्क कलाई है।
मेहनत विना मिले मोहन मुद वेद नेति जेहि गाई है॥
साँची बात न शक यामें कछु कथा पुरान गाई है।
युगलानन्य शरन आशक पर सियवर मेहर सदाई है॥ १७॥

शब्दार्थः—वर-मधुर मनोहर। वपुप (सं०) स्वरूप। हित-निमित्त। अद्भुत-लोकविलक्षण। कला ई ही)-एकमात्र युक्ति। मोहनसुद-आनन्द सिंधु विश्व विमोहन श्रीरघुचंद जू। नेति न+इति-जिनका पार नहीं है। शक संदेह। आशक (आशिक फा०)-प्रेमी, श्रीराम रूप में आसक्त चित्त स्नेही। मेहर (मेह्न फा०)-कृपा। सदाई-सदा ही।

भावार्थः—श्रीजानकीवल्लभलालजू का आनन्दसिंधु विश्वविमोहन स्वरूप वेद ब्रह्मादिकों के लिये भी अगम अगोचर है। उनकी प्राप्ति की सरल सुगम युक्ति है तो एकमात्र इश्क।

"हरिव्यापक सर्वत्र समाना। प्रेमते प्रगट होहि मैं जाना॥"
"अगजगमय सब रहित विरागी। प्रेम ते प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥"
"अतिसय प्रीति देखि रघुवीरा। प्रगटेउ हृदय हरन भवभीरा॥"

जिनकी महिमा एवं ऐश्वर्य परत्व का गान करते करते वेद नेति नेति कहकर चुप्प हो जाते हैं, ऐसे दुर्लभतम ब्रह्म की प्राप्ति तीर्थ, व्रत,तप, योग, यज्ञादि के द्वारा अत्यन्त दुष्कर है। परन्तु उनके प्रति इश्क करना एकमात्र ऐसी सुकुर युक्ति है कि वे अलभ्य ब्रह्म विना दीर्घकालीन क्लिष्ट साधन किये, अनायास ही मिल जाते हैं।

यह बात ध्रुव सत्य है। इसमें तनक सा भी संशय संदेह करने की संभावना नहीं है। पुराणों में ऐसे बहुत से श्रीराम आशिकों की कथा आई है। इश्क के द्वारा, मधुराप्रीति के प्रभाव से विना अन्य साधन श्रम के ही उन्हें शीघ्र अपना लिया है। वन्दनीय कविश्री कहते हैं कि अपने स्वरूपासक्त स्नेही भक्त पर श्रीजानकी कान्तजू की सदा सर्वदा ममत्वपूर्ण कृपा की अजस्र वर्षा होती रहती है। धन्य है इश्क तेरी महिमा!

प्रेम (इश्क) महिमा पर कविश्री की और महावाणी भी सुनिये।

"नहिं होंत बिलग पल पाव, प्रीतम प्रेम से।
वेद पुरान संत सम्मत सुख सागर सरस स्वभाव।
कपट कलंक शंक नासत सब, सरसावत चित चाव॥
निपट निकट निज देत वास वर, सहित भावना भाव।
युगल अनन्य शरन सनेह बिन, भवनिधि गोता खाव॥
— श्री संत सुख प्रकाशिका।

अग्रिम छंद की अवतरणिकाः—श्री जानकी रमणजू की प्राप्ति का राजमार्ग है प्रेम सहित उनका भजन। इसके अतिरिक्त अन्य साधन निस्सार प्रत्यूह संपन्न एवं विवादास्पद हैं।

॥ मूल छन्द में साधन सिद्धान्त ॥

५—नाना मत वरनत झगरत नित विगरत मत सति साधु।
सार रहित भवभार असद गुनि त्यागिये निपट उपाधु॥

सुन्दर शाह राह सीतापति भजन विगत वद वाधू।
युगलानन्य सजाय इश्क दृढ़ लली लाल आराधू॥ १३४॥

शब्दार्थ:—नाना मत=अनेकों पंथ। वरनत=स्वमत मण्डन। झमरत=परमत खण्डन में वाद विवाद। सति साधू=सच्चे साधक। विगरत मत=बुद्धि भ्रम में पड़ जाती है। असद=भ्रमात्मक। निपट=नितान्त। उपाधू=धोखा। शाह राह=राजमार्ग। वद=बुरा। वाधू=विघ्न, रुकावट। आराधू=उपासना करें, रिझावें।

भावार्थ:—आजकल कलयुग है। युगधर्म है—

श्रुति संमत हरि भक्ति पथ, संजुत विरति विवेक।
तेहि न चलहि नर मोह वश, कल्पहि पंथ अनेक॥

—श्रीमानस ७।१००

वैदिक सिद्धान्त निर्भ्रान्त होने से हृदय उन्हें वेखटके स्वीकार कर लेता है। झूठ सत्य मिले नये कल्पित पन्थ दिमाग में शीघ्र घुसते नहीं। हृदय उन्हें कबूल करने में आनाकानी करता है। अतः इन कल्पित पन्थ समर्थकों को अपना सत्यासत्य मिश्रित मत जनता से स्वीकार कराने में बहुत से वाग्आडम्बर का स्वांग सजना पड़ता है। सच्चे मार्ग से भोले भाले जनता को हटा कर, अपने पक्ष में करने के लिए, इन पन्थाई वालों को वाद विवाद, लड़ाई झगड़ा में उलझे रहना पड़ता है। निगुरे लोग विना पेंद के लोटे की भाँति इन पन्थाइयों के जाल में अनायास फँस जाते हैं। इतना ही नहीं, इनके वाग्जाल का दुष्परिणाम सच्चे साधकों पर भी पड़े बिना नहीं रहता। ये भी भ्रम में पड़ कर, अपने उचित साधन को शिथिल कर बैठते हैं। विचारवानों को चाहिये कि ऐसे पन्थाई सिद्धान्तों को निस्सार समझकर त्याग दें। ये कच्चे मत जन्म मरण के वोझ को बढ़ाने वाले होते हैं। सच्चे साधकों के लिये विघ्न रूप हैं।

श्रीसीतापति कहने का भाव है कि अपने स्वरूप का जन्य सम्बन्ध श्रीसिया जू के साथ होने से वाल-लीला उन्हीं के साथ साथ हुई है। श्रीसियाजू के ही विवाह काल में अपने स्वरूप का भी पाणिग्रहण हुआ है। श्रीसीतापति ही अपने पति हैं। पति परिचर्या स्वधर्म हैं॥

एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा॥

और भाव से श्रीसीतापति का भजन राजमार्ग मार्ग हैं। पति भाव से भजन करना सुन्दर (मनोज्ञ) राजमार्ग है।

"मन क्रम वचन छाड़ि चरातुई। भजतहि कृपा करहि रघुराई॥"

राजमार्ग के भजन से प्रभु कृपा हुई। और कृपा प्राप्त होने पर—

"सकल विघ्न व्यापहि नहि तेही। राम सुकृपाँ विलोकहि जेही॥"

अतः सीतापति भजन में कोई विघ्न वाधा नहीं है।

अब हमारे आचार्य चरण हमें उपदेश और आदेश दे रहे हैं कि तुम श्रीलली लालजू के प्रति इश्क संचित कर, लाड़ प्यार पूर्वक उनकी आराधना करो।

इश्क सजाने के सम्बन्ध में महाराजश्री की और वाणी भी द्रष्टव्य हैं।

"निस दिन प्रेम से सजुनेह।
परम पावन पंथ अविचल, निखिल गुनगन गेह॥
लोक लाज समाज नीरस, सुवन धन तिय खेह।
प्रान प्रीतम वसीकर मृदु, मंत्र मोहन येह॥
सार श्रुति सतमत सरस, सुख रूप परम सनेह।
युगअनन्य सुभाव केकी, हित अनूपम मेह॥

--श्री संत सुख प्रकाशिका।

दृढ़ इश्क का स्वरूप आचार्य चरण बताते हुये कहते हैं—

इश्क फंद में फँसे निकसना दूर है।
ज्ञान गुमान निशान शान चकचूर है॥
आखिर आशा अन्त शेष सियकन्त ही।
हरि हाँ, युगल अनन्य अकह गति समुझै संत ही॥

श्रीप्रेम प्रकाश ४६५।

श्रीआचार्यचरणादेश से हमें अपने हृदय भवन को इश्क से सजाना है। वश यहीं श्रीलली-लालजू का आह्निक एवं षटऋतु विहार वाली मोदमयी मनोरंजनी ललित लीलाएँ देखा करेंगे, जिससे हमारा हृदय नित्य नवायमान आह्लाद से परिप्लावित रहेगा। इश्क सजाना सहज बात नहीं है। इसके लिये भी कुछ साधन करना होगा। हम आगे के दो अध्यायों में इश्क की आधार भूमि एवं पृष्ठि भूमि पर श्रीआचार्य चरण की महावाणी के प्रकाश में विचार करेंगे। इश्क के अन्यान्य उपयोगी साधनों पर तो मूल ग्रन्थ में ही सुविस्तृत विवेचना की गई है, जिसे आप यथास्थान पढ़ेंगे।

॥ दूसरा अध्याय ॥

❁ इश्क की आधार भूमि, ध्रुवा स्मृति ❁

ध्रुवा स्मृति शास्त्रीय भाषा है। इसका अर्थ है अपने इष्ट का तैलधारावत अविच्छिन्न अखण्ड स्मरण।

साधन और सिद्धिके तारतम्य समझने के लिये लोग बहुधा नदी नाव का दृष्टान्त दिया करते हैं। रास्ते में अगाध नदी पार करनी है। नाव चाहिये। नदी पार कर ली, छोड़िये नाव को, आगे का रास्ता तय कीजिये। नाव है साधन। साध्य है रास्ता पूरा करना। साध्य पाने पर साधन त्याग दिया जाता है।

ऐसी बात इष्ट स्मरण के सम्बन्ध में नहीं हैं। हम मानते हैं कि इश्क प्राप्त करने का मुख्य साधन है इष्ट का अखड स्मरण, परन्तु इसका यह माने नहीं है कि इश्क हासिल हो जाने पर हम प्रियतम को स्मरण रूपी साधन का त्याग दें। अपने परम प्यारे इष्ट की मधुर स्मृति तो आशिकों का स्वभाव बन जाता है। स्मृति ही उनका जीवन है, इष्ट विस्मरण है, आशिक अपना मरण मानते हैं। "तद्विस्मरणे परम व्याकुलता।" श्रीनारद भक्ति सूत्र।

अगले छन्द में उस सच्चे आशिक के स्वभाव बताते हैं जो दुर्लभतम इश्क को प्राप्त कर लेते हैं।

॥ मूल छन्द ॥

६–आशक असल लहे इस रस कों चसको चशम लगाये।
कठिन करेजे कसक जिन्हों के तिन नव रहस रसाये।
श्री अवधेश सुवन सुन्दर गुन लीला लाह ललाये।
युगलानन्य शरन सीतावर सुमिरन रंग रँगाये॥ २०८॥

शब्दार्थः— असल–सच्चे। लहे–प्राप्त करते हैं। रस–स्वाद। चसको फा०–आदत, लत। चशम (चश्म फा०)–नयन (बाह्य दृष्टि एवं ध्यान दृष्टि)। कसक–प्रेम की टीस। (हम तोरे इश्क से तो वाकिफ नहीं है लेकिन। सीनेके अन्दर कोई जैसे दिन को मला करे है।) रसाये=रसयुक्त। आनन्द लूटा। लाह–लाभ। ललाये–लालायित हुये। रंग–आनन्द। रँगाये–आसक्त हुये॥

भावार्थः— अपने प्राणवल्लभ श्री रघुराज दुलारे जू की मधुरानन्द विस्तारिणी मीठी मीठी यादगारीमें क्या स्वाद है, उसका अनुभव तो सच्चे आशिक ही करते हैं। उनके अन्तर्नयन को प्रियतम के ध्यान दर्शन की चाट (चसक) लग जाती है। (बिनु देखे नयनमा ना माने हो) एक क्षण भी दर्शन में व्यवधान पड़ जाय, तो उनके हृदय पर वज्राघात सी चोट लगती है।

"लला तुम होउ न आँखिन ओट।
एक पलक बिन दरस कलप सम, लगत कुलिस सी चोट ॥

अन्तर्दृष्टि से निरन्तर प्रिय छवि अवलोकन करते रहना, इष्ट स्मरण की मनोज्ञ विधि है। स्मरणानन्द का तारतम्य स्मरणकर्त्ता के हृदय धर्म पर निर्भर करता है। जिन के हृदय पर इश्क का रंग जितना गाढ़ा होगा, उन्हें अपने प्रेमास्पद की स्मृति में उसी अनुपात में रसानुभव होगा।

जिन्हें प्रियतम विस्मरण में परम व्याकुलता होती है, उन्हें प्रियतम स्मृति जगते ही, उनके हृदय में नित्य नई नई दिव्य केलि क्रीड़ाओं के दृश्य उपस्थित होते रहते हैं। वे नित्य नवीन दिव्य विहार लीला दर्शनों का आनन्द लूटते रहते हैं।

ऐसे सौभाग्यशाली आशिक श्री जानकी रमण जू की उत्तमोत्तम दिव्यगुणावली, ललित लीला लहरी के नित्य नवायमान अनुभव के लिये लालायित रहते हैं। उसी के अनुरूप उनके हृदय में विविध विहार रस वरसते रहते हैं।

श्री मैथिली विहारी जू के स्मरणानन्द में छके हुये रसिक महानुभाव के हृदय की जितनी स्तुति की जाय, थोड़ी है। अतः प्रियतम स्मरण की लत लगाना अनिवार्य है। पूज्य कविश्री की और भी महावाणी इस सम्बन्ध में दृष्टव्य है।

साजन सुमिरन सार और वदकार है। वृत्ति न दीजे वहन संत टकसार है ॥
मन मति दीजे गाड़ि यार के याद में। हरिहाँ, सपने सुरति न देहु गर्मी अरु शाद में ॥१५२॥
राम रसायन पीवत जीवत जान ही। काम कषाय न छीवत फेर न प्रान ही।
याम आठहू सुमिरत सुख सरसाइ है। हरिहाँ, युगलानन्य सपदि पर पद परसाई है ॥ ३७६॥

श्रीप्रेम प्रकाश

"वाह वाह क्या खूब संतगुरु बानी है। जिस में गूनागून सुप्रीति निशानी है ॥
सदा अथाह निगाह किये मन मानी है। युगलानन्य शरन सुमिरन रुचि ठानी है ॥"

—श्रीप्रेम उमंग १०६

श्री वेदान्त में अखंड भगवत्स्मृति की बड़ी महिमा गाई गई है। सबसे लाभ तो अखंड स्मरण कर्त्ता को यह होता है, कि उनकी मायाजीव वाली चिज्जड़ ग्रंथियाँ अनायास खुल जाती हैं।

"स्मृति लम्भे सर्व ग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।"

छान्दोग्य ७।२६।२

जगद्गुरु श्री कौलदेवाचार्य ने स्वरचित 'साधन भक्ति दर्पण' में तो श्री रघुलाल की तैलधरावत विच्छेद रहित स्मृति को ही साधन भक्ति का एकमात्र उपाय वताया है ॥

"रामस्य तैलधारा वद् विच्छेद रहिता स्मृतिः।
पुरुषार्थात्मिका भक्ति स्तत्साधिका मता नव ॥"

इस प्रकार अखंड स्मृति को जगाने के लिये सात साधन भूमिकाओं को पार करना होता है। श्री वोधायाचार्य देव अपनी वृत्ति में उन भूमिकाओं के नाम इस प्रकार गिनाये हैं।

"तल्लब्धि विवेक विमोकाभ्यास क्रिया कल्याणानवसादा नुद्धर्षेभ्यः सम्भवान्निर्वचनाच्च ।"

१–विवेक—आहार शुद्धि से विवेक जगता है। जाति आश्रय, ताथ निमित्त दोष विरहित अन्न भक्षण से अन्तःकरण की शुद्धि होती है। विशुद्ध हृदय में ही विवेक का उदय होता है।

"आहार शुद्धौ सत्व शुद्धिः, सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः ॥"

२–विमोक—सभी कामनाओं और वासनाओं का त्याग।

३–अभ्यास—नाम जपादि का अभ्यास।

४--क्रिया—संत, गुरु और हरि की परिचर्या ।

५–कल्याण—सत्य सरलता दया, दान, अहिंसा, पराई वस्तु से निर्लोभ आदि कल्याण साधन हैं।

६--अनवसाद—साधन श्रम से थकना नहीं।

७--अनुद्धर्ष—साहस नहीं छोड़ना ।

अवतरणिकाः—अग्रिम छंद में आप स्मृति की रीति सीखें। अखंड स्मरण भाव समाधि की दशा है, जिसमें शरीर के वाह्य व्यापार स्तब्ध हो जाते हैं।

❀ मूल छन्द ❀

७—तसवी फिरे नहीं कर डोले वदन न बोले वानी।
शवों रोज नहबूब याद की माला मेहर निशानी ॥
चाखे रस भाखे सपने नहिं नाम अमल मन मानी!
युगलानन्य फकीरी मुशकिल कोइ विरले पहिचानी ॥६॥

शब्दार्थः—तसवी (तस्वीह् अ०)=जपमाला। कर=हाथ। वदन=मुख। शवों रोज=रातदिन याद की माला=निरन्तर स्मरण। मेहर निशानी=कृपा का लक्षण । अमल=व्यसन। फकीरी= साधुता। मुशकिल=दुर्लभ। मनमानी=स्वछन्द रूप से।

भावार्थः—इस छंद में श्रीराम नाम के अजपा जप पूर्वक प्रियतम रूप के अखण्ड स्मरण की युक्ति बताई गई है।

स्वरचित श्री युगल वर्ण विलास नामक पुस्तिका में श्रीआचार्यचरण ने सुदीर्घ काल तक वैखरी जप करने का आदेश दिया। उससे मध्यमा जप बनेगा। पुनः मध्यमा के सुदीर्घ अभ्यास से पश्यन्ती, एवं पश्यन्ती के चिरकालीन अभ्यास से पराजप की जागृति होती है। पराजप से ही अजपा जप सिद्ध होता है। अजपाजप एवं भाव समाधि समकक्ष दशा है।

अजपा जप वाली सहजा वृत्ति में न तो जपमाला फिरती है, न माला फेरने वाला हाथ डोलना होता है, न वैखरी वाणी द्वारा मुख से नामोच्चारण होता है। किन्तु भीतर ही भीतर मनहरण प्राणप्यारे की मधुर स्मृति की मन्दाकिनी अजस्र रूप से प्रवाहित होती रहती है। इसे ध्रुवा स्मृति कहते हैं ऐसी सहजावृत्ति प्रभु कृपा की परिचायिका है।

ऐसे महाभाग निरन्तर नामामृत का रसास्वादन किया करते हैं। उन्हें लोकरंजन की स्पृहा नहीं होती, अतः अपनी अवस्था का ढिंढोरा नहीं पीटते फिरते। उन्हें रसास्वादन से अवकाश

भी तो नहीं है। आप स्वच्छन्द रूप से नाम रस की भांग घोटते छानते हुए प्रेमोन्मत्त बने रहते हैं। यह साधुता की परमोच्च दशा अत्यन्त दुर्लभ है। इस दशा का परिचय तो भुक्तभोगी को ही होगा। लाखों में, करोड़ों में, आपको विरले कोई ऐसे परमोच्च कोटि के नाम स्मरण करने वाले मिलेंगे।

"चढ़ी भक्ति रस धार मार सुख कहो किस तरह रुकती है।
चढ़ी चित्तवर वृत्ति व्योम बिच फेर न नीचे झुकती है॥
कढ़ी काम वासना दाह दिल रही कौन थल मुकती है?
युगलानन्य शरन सुमिरन निज नेह निशानी लुकती है॥

श्री भक्तिकान्ति, १३८।

॥ मूल छंद ॥

८—दायम याद शाद दिलवर दिल अन्दर रंग नोमायद।
कायम करम कवूल कहर हर हरसायत खुशतायद॥
सायं सुवह शवीह मधुर महवूव वदीदन आयद।
युगलानन्य शरन सुमिरन सब तौर गौर से वायद॥२८७

शब्दार्थः—दायम फा० = निरन्तर। याद = स्मरण। शाद फा० = आनन्द। नोमायद (नुमाइद फा० = प्रगट करावे। कायम करम = स्थिर कृपा। कवूल = मानने से। कहर हर = शोक नाशक। खुशतायद = प्रसन्न रहना। शवीह = रूप। वदीदन फा० = देखना। आयद (आइद फा०) = लगा रहे। गौर से = ध्यान तन्मय होकर। वायद फा० = चाहिये, मुनासिब है।

भावार्थः—अपने हृदय के भीतर, अपने हृदय विहारी का सुखद संस्मरण निरंतर करते रहने से, अपने हृदय में अनुराग रंग प्रगट होता है। सभी शोक संतापों को शमन करने वाली प्यारे की स्थायी कृपा सदैव हमारे ऊपर वनी रहती है। इस सत्य को यदि हमारा हृदय स्वीकार कर लेता है, तव तो हमें सदैव दिव्यानन्द का अनुभव होता रहेगा।

सायं प्रातः सदा सर्वदा, अपने परम प्यारे के मधुर रूप के दर्शनों में संलग्न रहना चाहिये। वन्दनीय आचार्यचरण का मंगलमय आदेश है कि मन को एकाग्र बनाकर, अपने प्रियतम हृदयेश का अखंड तैलधारावत् स्मरण सब प्रकार से उचित है।

"सुमिरन विन सिय श्याम सोहावन सुख कहाँ?
केवल काम कलेश कुदूरत जग जहाँ॥
निर्विकल्प चित भये विना नहि रंग है।
हरि हाँ, वदे विवेकी संत सतत प्रभु संग है॥ ६१॥

श्रीप्रेम प्रकाश

अवतरणिकाः—अगले छंदमें स्मरणाभ्यास के प्रारंभिक साधकोंके लिये विहित कर्तव्य का आदेश है।

॥ मूल छन्द ॥

९– जहँ जहँ जाय दिवाना मन निज सहज स्वरूप विसारी।
तहाँ तहाँ महबूब मनोहर रूप लखे लय धारी॥
आखिर खाहिश दफा सफा करि पावे प्रेम प्रचारी।
युगलानन्य शरन सुमिरन सें भेटत अवध विहारी॥२९६॥

शब्दार्थः—दिवाना=वासना व्याकुल। महबूब=प्रियतम श्रीअवधविहारी। लय=तन्मयता। धारी=सजा कर। आखिर=अन्तिम परिणाम। खाहिश=वासना, कामना। दफा (दफः अ०)= विनष्ट। सफा=बिल्कुल निर्मल बना कर। प्रचारी=साधन पथ पर सम्यक प्रकार से चल कर।

भावार्थः– विशुद्ध मन का स्वाभाविक स्वरूप है,अपने मन भावन के स्वरूपमें समासक्त रहना।

"जानक सुत पद कमल सुहाये। मुनि मन मधुप रहत जहँ छाये॥"

विविध लौकिक मनोरथों से उद्‌भ्रान्त बना मन, वाह्य जगत के राग द्वेषात्मक नानात्व देखने में व्यस्त रहता है। अपनी मनोरथ पूर्ति की जहाँ सम्भावना समझेगा, वहीं की घुड़दौड़ किया करेगा। वासना विक्षिप्त मन को ध्येय देश में स्थिर करना दुष्कर है। कृपालु आचार्य चरण मन की ऐसी क्षुब्ध दशा में प्रियतम संस्मरण संभालने की सुकर युक्ति बताने की कृपा कर रहे हैं।

श्रीचरण का आदेश है कि मन भागता है तो भागने दो। हमारे प्यारे सर्वत्र व्यापक हैं।

'देश काल दिसि विदिसहु माहीं। कहहुँ से कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥'

मन जहाँ जाकर रुके, वहीं हम अपने प्राण प्यारे श्रीकौशलेश राजदुलारे जू को देखें—

"स्वर्ग नर्क अपवर्ग समाना। जहँ तहँ देख धरे धनुवाना॥"

प्रभु के रूप में आकर्षिणी सक्ति है। मन को वरवश खींच लेंगे।

तनक मन को लगा दो वश तो आपहि खींच लेंगे वह।
नमूना इसका ऐ 'हरिजन' बना चुम्बक का चक्का है॥

लयधारी से तात्पर्य है कि वाह्य जगत की अन्य वस्तु पर दृष्टि न देकर, अपने प्यारे के भावमयी स्वरूप माधुरी में तन्मय हो जायँ।

इसी प्रकार प्रियरूप दर्शनों के अभ्यास से शनैः शनैः वासनाएँ क्षीण होते होते नष्ट हो जायेंगी। मन निर्मल हो जायगा। इस साधन क्रम से हम अनायास दिव्य प्रेम प्राप्त कर लेंगे।

प्रियतम रूपादि स्मरण अमोघ साधन है। इसी से प्रियतम अवश्यमेव मिल जायेंगे।

"सुमिरन सहज समाधि आधि विन मन गज अनत न जाई।
रूप अनूप स्वाद सुख सागर मगन रहे ललचाई॥

जैसे विरहिनि वाम, नदी घट, सूरत अचल टिकाई ।
युगलअनन्य शरन याही विधि सुमिरन सजन सदाई ॥"

—श्रीभक्ति कांति, १३।

"सुमिरन तजि जनि जाय, कतहुँ मन ।
बैठि एकान्त रहो अपने घर, सहज सुसेज सजाय ॥
सूरति सुभग सोहाग भरी तिय, तेहि सँग रँग रँगाय ।
उमगत अमल तरङ्ग सुधा निधि, नाम निरखि हरषाय ॥
प्याला प्रीति प्रतीति पियत रहुं, बेविश्वास बहाय ।
देखो जन्म अनेक कठिन सुख, जहँ तहँ गोता खाय ॥
मनोराज सुख साज विभव सब, सपन सदृश न सोहाय ।
अचल अमल थल वास रचित भल, अकल सकल समुझाय ॥
युगलअनन्य शरन थोरहि दिन, माँझ स्वरूप लखाय ॥

-- श्रीसंत सुख प्रकाशिका ।

* तीसरा अध्याय *

॥ इश्क की पृष्टि भूमि लगन ॥

प्रियतम की अखण्ड स्मृति सिद्ध होकर, परिपक्व एवं सुदृढ़ होने पर, लगन जगती है।
यथा—

"प्रति छन सुमिरन मित्र को, विन कीने जब होय ।
टरै न टारे सहज चित, लगन जु कहिये सोय ॥"

वन्द्य पादाम्बुज ग्रन्थकार ने स्वरचित 'प्रीति पचासिका' में लगन की दशा तक पहुँचने के लिए आठ भूमिकायें लिखीं। विस्तार भय से हम मूल महावाणी न लिखकर केवल उनका सारांश-मात्र यहाँ लिखेंगे।

१—पहली भूमिका है खेददा। प्रियतम के स्मरणाभ्यास में लगने वाले साधक को प्रारम्भ में शारीरिक रोग क्लेश, गृह, गृहसम्पत्ति, पुत्र कलत्रादि की हानि, जगत में उपहास, निरादर आदि की वृद्धि होने लगती है। इनकी परवा किये विना साधन पथ में अग्रसर होने वालों को दूसरा विघ्न व्यापता है।

२—दूसरी भूमिका का नाम है दुःखदा। इसमें मान बड़ाई बढ़ जाने से द्वार पर रंक से राजा तक सभी प्रकार के दर्शकों की भीड़ जुटी रहती है। विषय स्पृहा भी प्रबल हो जाती है। इससे बच कर भी स्मरण बढ़ाते गये तो, तीसरी भूमिका सामने आयेगी।

३—तीसरी का नाम है सिद्धि प्रदा। इस दशा में अनेकों सिद्धि के चमत्कार प्रगट होंगे। सिद्धि के वल पर पुजाने में लग गये, तो प्रगति वहीं रुक गई। यदि चमत्कार के चक्कर से बचकर आगे बढ़ते गये तो आप चौथी भूमिका पर पहुँचेंगे।

४—चौथी का नाम है अहंवासिनी। इसमें अभिमान बढ़ जाता है। जी समझने लगता है, देखो, मेरे समान भगवत्प्रेमी कौन होगा ? मैंने प्रेमके पीछे लोक-लाज, कुलकानि, जगत की प्रतिष्ठा सब छोड़ी। कितने साधन श्रम किये ? मेरे समान कौन होगा ?

ऊपर की चार भूमिकाओं तक पतन का भय रहता है। पाँचवी भूमिका के पश्चात् पतन की आशंका मिट जाती है। आवश्यकता है कमरकस कर, विघ्नों को कुचलते हुये स्मरण बढ़ाते हुये, आगे बढ़ते रहने की।

५—पाँचवी भूमिका का नाम है 'विरतिधारिणी'। इस दशा में संसार के भोग प्रलोभनों से चित्त अचाही हो जाता है। इष्ट दर्शन, स्पर्शन की विरहोत्कण्ठा जग जाती है। स्नेह वृद्धि के साथ संसार का भान भूलने लगता है।

६-छठीं भूमिका का नाम है 'छविदा'। इस अवस्था में इष्ट की छवि छटा हृदय में प्रगट होती है। ध्यान दर्शन क्षण मात्र भी अप्रत्यक्ष हो जाय, तो कल्प भर वियोग के समान तीव्रतम कष्ट का अनुभव होता है।

७- सातवीं भूमिका का नाम है 'प्रमुद रूपिणी'। हृदय में रूप प्रगट होने से, चित्तवृत्ति ध्येय रूप में तन्मय हो जाती है। पराभक्ति एवं इष्ट रूप में आसक्ति पाकर, शरीर का भान भूल जाता है। इसी स्पृहनीय दशा का नाम है इश्क। इसके आगे भी एक दशा है।

८- वह अन्तिम आठवीं भूमिका है 'विहार विलासिनी'। इस अवस्था में दिव्य युगल विहार के विचित्र दर्शन होने लगते हैं। अपने शरीर का भान मिट कर, पूरी विदेह दशा प्राप्त हो जाती है।

यहाँ तक श्री प्रीति पचासिका नामक ग्रन्थ रत्न के अनमोल वोल पर विमर्श हुआ। आगे हम प्रस्तुत ग्रन्थ श्रीइश्क कान्ति में वर्णित लगन तत्व पर विचार करेंगे।

॥ मूल छन्द ॥

१०—कुंजी लगन इश्क ताले का मुरशिद मुझे बताया।
मेहनत विना खोल के अन्दर, अद्भुत चमक लखाया॥
क्या तारीफ जवाँ से उसकी, अनिर्वाच्य झलकाया।
युगलानन्य शरन अँटका दिल उलटि फेर नहिं आया॥ ११७

शब्दार्थः—मुरशिद फा०=रसिक गुरुदेव। अद्भुत=जो नहिं देखा नहिं सुना, जो मनहू न समाय। सो सव अद्भुत देखेऊँ, वरनि कवन विधि जाय॥" चमक=प्रकाशमय दिव्य कनक महल के सहित सपरिकर श्रीयुगल महल विहारी जू की छविछटा। जवाँ फा०=जीभ। अनिर्वाच्य=अकथनीय। उलटि=लौट कर।

भावार्थः—परम मनभावन श्रीयुगल ललन जू के दिव्य विहार महल के भीतर घुस कर, आपकी प्रेमलीला माधुरी का समास्वादन करना था। देखा प्रवेश द्वार पर वज्र का किवाड़ लगा है। उसमें इश्क का सुदृढ़ ताला जड़ा है। कृपालु गुरुदेव से पूछा, देव! यह ताला कैसे खुलेगा? मैं खोल कर भीतर जाना चाहता हूँ।

दीनहितकारी आश्रितवत्सल श्रीगुरुदेव ने बताया, यह लो। लगन रूपी चाभी है। इसी से इश्क ताला खोल डालो। आदेशानुसार मैंने लगन रूपी चाभी सम्हाली। इसके द्वारा मैंने बात की बात में इश्क ताला खोल डाला। भीतर जाकर क्या देखता हूँ कि उस प्रेममन्दिर (श्रीकनक महल) में मणिमय दीपकों के प्रकाश अपनी न्यारी न्यारी छटा बिखेर रहे हैं। युगल प्रेम स्वरूप जू की छवि छटा और भी मनोरम रश्मि छिटका रही है। उनके मणिमय भूषणों की जगमगाहट बरबश चित्त को चुरा रही है। (कर मुद्रिका चोरिचित लेई) वहाँ का कुछ दिव्यालोक देखा, उसके सुख ये नयन ही जानते हैं॥ "प्रभु सोभा सुख जानहि नयना। कहि किमि सकहि तिनहि नहि बयना।" कोटि कोटि जीभ मिल जायँ, तौभी उस शोभाकी प्रशंसा नहीं बनने की! वह सुख वाणीका विषय है भी नहीं। मैं तो अपने कुंजमें वापस आ गई, किन्तु हमारा चित्त वहीं अँटक कर रह गया। लाखों समझाने बुझाने पर भी चित्त वहाँ से आने का नाम तक नहीं लेता॥ बताइये हम क्या करें?

देखा आपने लगन का प्रभाव? लगन लगाना हो, तो सरल युक्ति श्रीआचार्यचरण की अन्यत्र वाली महावाणी में पढ़िये:—

"आदि मध्य परिनाम नाम रस गाइ हैं।
हरिहाँ, युगलानन्य बिना शक लगन लगाइ हैं॥" —श्रीप्रेम प्रकाश-१

"लगनियाँ रे लागी सियपिय साथ।
रोम रोम रस रीति चहत चित, सोउ प्रीतम के हाथ।
उर उमंग छन छन नूतम नित, गावत गुन गन गाथ॥
कैसे दाह दहे नेही जन, जेहि सहाय सिर नाथ।
बसिये युगल अनन्य शरन मन, लिये कर सर धनुभाथ॥"

—श्री संत सुख प्रकाशिका।

अवतरणिका—अग्रिम छंद में श्री आचार्यचरण श्री मनहरण लाल जू से लगन लगाने पर अपना अनुभूत सुख बता रहे हैं।

॥ मूल छन्द ॥

११—लगन लगाय भगाय भरम भव-भार भावना भावी।
कुत्सित कुसुम रंग द्वै दिन तजि रंगिये रंग शहावी॥
विमल विहार विलोकि विभव वर वल्लभ मुख महतावी।
युगलानन्य शरन संतत दिलदार दरस दिल दावी॥ ११९

शब्दार्थः—भरम (भ्रम सं०)=मिथ्याज्ञान । भवभार=सांसारिक प्रपंचोंका बोझा । भावना=मानसिक अष्टयाम सेवा । भावी=भाईं, अच्छी लगी । कुत्सित=तुच्छ, घृणित । कुसुम रंग=कच्चा रंग । शहावी=गाढ़े पक्के लाल रंग का नाम । विभवबर=भोगैश्वर्य । महताव=चन्द्रमा । महतावी=चन्द्रमा के समान । दावी=अधिकार कर लिया ।

भावार्थः—प्रस्तुत छंद में लगन का प्रभाव बताया गया है । पूज्य ग्रंथकार कहते हैं कि श्रीजानकी रमण में लगन लगाने से, मेरे सारे संशय भ्रम नष्ट हो गये । सांसारिक प्रपंच के भार भी माथे पर से टल गया । अब साध है तो एक ही कि निरंतर मानसिक भावना में मगन रहें ।

यहाँ कुसुम रंग से तात्पर्य है इश्क मिजाजी का अर्थात् हाड़मांस के स्थूल शरीर धारी स्त्री पुरुषों में पारस्पारिक कामासक्ति । इसे घृणित ठीक ही कहा गया । यह मोहजन्य लगन टिकाऊ नहीं होती । स्वार्थ में बाधा पड़ते ही टूट जाती है । इसका परिणाम भी विषवत् है । अतः इसको त्यागने का आदेश है ।

ब्रह्म के साथ जीव का स्वाभाविक प्रेम सम्बन्ध है ।

"सुनहु नाथ कह मुदित विदेहू । ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू ॥"

अतः यह अनुराग रंग शहावी रंग के समान पक्का है । इसी रंग में अपने हृदय को अनुरंजित करना चाहिये ।

पुनः ग्रन्थकार कहते हैं कि इस पक्के रंग वाली लगन लगाने से मुझे क्या क्या नहीं मिला ? मैंने प्रियतम के मुखचन्द्र की झलक देखी । श्रीकनकमहल शयन कुंज की परमोत्तमभोग सम्पत्ति (विभवबर) देखी । श्री लड़ौती लाल जू के दिव्य विहार का दर्शनानन्द लूटा । परन्तु यह सब होने पर भी अभी तक तृप्ति नहीं हुई । अपने हृदयरमण का निरंतर दर्शन होता रहे, इसी मनोरथ ने हमारे हृदय पर अपना पूरा पूरा अधिकार कर रखा है ।

"विषयानन्द बिसारि भजन मुद मिलैगो ।
ता मधि ब्रह्मानन्द कमल खुलि खिलैगो ॥
परमानन्द सुगंध सरस पुनि पाइहौ ।
हरि हाँ, युगलानन्य लगन लय लाय लोभाइहौ ॥

—श्री प्रेम प्रकाश, ७६२ ।

"जानकी रमन पियारे, तुम सन लगन लगाया ।
कठिन गाँठ नहिं छुटत छुटाये, समुझि सनेह समाया ॥
रसिकन संग रंग पहिचान्यो, पाँचो वपुष भुलाया ।
मत मतांत सब देख चुकी सत, सुख सपनेहु नहिं पाया ॥
अब जनि स्याम और हिय भासे, रहे छोह छबि छाया ।
युगल अनन्य शरन वंदी प्रिय, सपदि कीजिये दाया ॥

श्री संत सुख प्रकाशिका ।

अग्रिम छन्द की अवतरणिका:—लगन में वह विलक्षण वशीकरण शक्ति है कि सर्वतन्त्र स्वतंत्र निरंकुश परात्परतम ब्रह्म श्रीजानकी विहारीजू को भी वश में कर ले।

❀ मूल छन्द ❀

१२—लाशा लगन लगाय अनूपम पत्री पीय वझावै।
परम प्रेम पींजरा माँझ रखि नाना भाँति रिझावै॥
प्रबल प्रतीति कपाट नेह नव द्वारा बंद करावै।
युगलानन्य शरन हरसायत स्वामिनि नाम पढ़ावै॥

शब्दार्थ:—लाशा = गोंद। पत्री = पक्षी। प्रतीति = विश्वास। हरसायत = सर्वदा।

भावार्थ:—चित्र-विचित्र रंग वाला सुग्गा पक्षी बड़ा प्रियदर्शी होता है। जी चाहता है, उसे अपने पास रखकर, मन भर देखते ही रहें। हमारे प्राण प्रियतम श्रीजानकीरमण उससे भी रंगीले अनुपम प्रियदर्शी पक्षी हैं। पूछो कि अनेक फलों का रस लोलुप जहाँ तहाँ स्वच्छन्द उड़ने वाला मेरे निकट कैसे सदैव बना रहे कि उसे नयन भर देखा करें? अजी, उस रंगीले पक्षी को भी फँसाने की युक्ति है। लगनरूपी लाशा लगाओ, उसके पखने में। पखने सट जायेंगे। अब कैसे उड़कर भागेंगे? चोंच से लाशा छुड़ा कर भाग जाय, तब क्या करेंगे? इसी से तो कहते हैं कि उसका क्या विश्वास? उसे पिंजड़े में बन्द कर रखो। कैसा पिंजड़ा? वह प्रेम परतन्त्र है। अतः परम प्रेमरूपी सुदृढ़ पिंजड़े में उसे बन्द कर रखो। उसे नानाभाँति से दुलराने को तरसते थे न? अब लो, तुम्हारे हाथ का खिलौना बन गया है। भाँति भाँति से लाड़ लड़ाकर रिझावो उसे। चोंच से पिंजड़े का द्वार खोल कर उड़ जाय तब? प्रबल विश्वास ही प्रेम पिंजड़ा को बन्द करने वाला फाटक है। उसमें नवलनेह की छिटकिली लगाकर उसे बन्द कर रखो। अब कैसे उड़कर भागेगा? प्रियतमरूपी सुग्गे को प्रेम पींजड़े में बन्द रख कर, उन्हें श्रीसियास्वामिनीजी का प्रेममय नाम पढ़ावो। श्रीसीता नाम में उन्हें ऐसा सुख स्वाद मिलता है कि वह फिर अन्यत्र निकल भागने का नाम भी नहीं लेंगे।

"जनक सुता को नाम सिय, कोउ उचरत सुख कन्द।
ता मुख के घा सहित हित, चितै रहत रघुचन्द॥"

—श्रीनेह प्रकाश।

"मोरी तोरी लागी लगन रघुवीर।
जानत जीव जहान जहाँ लगि, पगि रहिमति गति गीर।
सपनेहु शोक जौक दूजी नहिं, पल पल प्रिय पथ पीर॥
जोइ जीवन धन चाह चारु चित, सोइ सुख सुगुन गंभीर।
युगल अनन्य शरन घायल दिल, निरखत सरजू तीर॥

—श्रीसन्त सुख प्रकाशिका।

॥ मूल छन्द ॥

१३—लागी लगन लहरदारी अनुराग पीतपट वारे सें।
काम काज कुल कहर कलंकित समुझ्झ सहज सम्हारे सें॥
विन देखे दिलदाह आह कब मिलिहौं राजदुलारे सें।
युगलानन्य शरन तेरी तुम प्रीतम प्रान हमारे सें॥ १६७॥

शब्दार्थः—लहरदारी=जिसमें आनंद की लहर बराबर उठती रहे। कहर (कह्न फा०) =दुःखदायी। दिलदाह=हृदय में विरहाग्नि। आह=लम्बी उसास।

भावार्थः—अब उस पीतांबर धारी अवध विहारी से मेरी अनुरागमयी लगन लग गई है। सहजा वृत्ति से प्रियतम की मधुर मधुर स्मृति सम्हाल लेने पर, अब तो प्रियतम मिलन की धुन सदैव शिर पर सवार रहती है। उस धुन के मारे, जितने भी व्यावहारिक लौकिक कार्य हैं, सभी दुःखरूप प्रतीत होते हैं। उदर भरन के निमित्त लोक व्यवहार में व्यस्त रहना तो प्रेममें कलंक लगाना है। अब तो प्रियतम दर्शन विना रहा नहीं जाता। विरह की ज्वाला हृदय को तपा रही है। मुख से हाय प्यारे! हाय प्यारे!! की धुन मची रहती है। दुःख के श्वासोच्छवास निकलते रहते हैं। हा, वह नरेन्द्रनन्दन अवधेश लाडिला कब मिलेगा?

प्रियतम प्राणेश अब विलंब न लगावो। अब तो आपके साथ नीर छीर की भाँति एकत्व हो गया है। यह (श्री हेमलतिका) आपकी है और आप हमारे प्राणं सर्वस्व प्रियतम हैं। तब अन्तर क्यों?

"लागी लगन उदाग नाम महराज सें।
पागी मति गति प्रीति उसी समराज सें॥
चिज्जड़ गाँठी खुली खुशीसर राज सें।
हरिहाँ, युगलानन्य सहस गुन मोद मिजाज सें।"

श्री प्रेम प्रकाश, ६५।

* चौथा अध्याय *

॥ माशूक वरण समस्या ॥

इश्कबाज जब इश्क की राह पर पाँव रखता है, उसी समय उसके सामने एक समस्या उपस्थित होती है। 'हम अपनी प्रीति कहाँ कहाँ जोड़ें? उसी संभाव्य जिज्ञासा का समाधान प्रस्तुत प्रकरण में किया गया है।

॥ मूल छन्द ॥

१४—आशक इश्क मधुर मोहन माशूक एक ही करना है।
छकि छकाय मदहोश रहा कर क्यों किस ही से लरना है॥
जाल जाहरी बातिन यकसम भीर भार नहिं भरना है।
युगलानन्य इसी साधन से मिटे जनमना मरना है॥२७६॥

शब्दार्थ:—मधुर=सौन्दर्य माधुरी, लीला माधुरी, राजमाधुरी आदि अनन्त मधुराई विशिष्ट। मोहन=विश्वविमोहन (देखत रूप चराचर मोहा) माशूक=प्रेमास्पद, प्रणयपात्र। छकि=प्रेम नशे में चूर होकर। छकाय=अपने अन्तःकरण समेत समस्त इन्द्रियों को प्रेम तन्मय बनाकर। मदहोश फा०=सुधि बुधि विहीन। जाल=फँसाने की युक्ति। जाहरी=बाहरी। बातिन=वक्रवादी। लरना=वाद-विवाद करना।

भावार्थ:—इश्क सजने वाले आशिक को चाहिये कि वह अपना माशूक अर्थात् प्रेमपात्र किसी एक ही को मनोनीत करे। मन तो एक ही है। उसे कई प्रेमपात्रों में बाँट दो, तो कहीं भी प्रेम जम कर प्रगाढ़ नहीं हो पावेगा।

वह माशूक मधुर हो। उसके नाम, रूप, लीला, धाम, एवं गुणगणों में ऐसी मधुरिमा भरी हो कि मन-मधुर सहज ही उसमें समासक्त हो जाय। उसके रूप में मोहनी शक्ति हो॥ "जिन निज रूप मोहनी डारी। किन्हें स्ववस नगर नर नारी॥" उसकी चलनि, चितवनि, मुसक्यान में मन को मोहने का जादूजाल कमाल का होना चाहिये।

आप स्वयं ऐसे माशूक को खोजने में असमर्थ हों, तो लीजिये आपके लिये सर्वगुण सम्पन्न प्रियतम चुन कर, लाये गये हैं। अगले छन्द में आपको उनका परिचय पढ़ने को मिलेगा। आशा है आपको पसंद भी पड़ेंगे ही।

देखिये, बिना शोचे समझे किसी को अपना दिल मत दीजिये। दिल देना दिलदार को। दिल के साथ तन, मन, धन सर्वस्व भी उसीको समर्पण कर डालना।

अपनी इन्द्रियों की सारी वृत्तियों के साथ स्वयं अपने को भी उसी हृदय सर्वस्व के रूपगुणों में तन्मय कर दें।

वाह्य सुधि बुधि भी उसी में लीन हो जाय।

प्रारंभिक साधकों को खंडन मंडन वाले वाद विवाद में अधिक दिलचस्पी होती है। जैसे व्यवहार कौशल के प्रपंचजाल में भोली भाली जनता की भीड़ फसाँई जाती है, उसी प्रकार वाक्-जाल में श्रोताओं की भीड़ भी बटोरी जाती है। परन्तु भीड़ भार तो हर प्रकार से अन्तर्मुखी वृति का बाधक है।

पूज्य ग्रन्थकार का निदेश है कि इश्क हक़ीकी अर्थात् दिव्य स्नेहासक्ति ऐसा अचूक और अमोघ साधन है कि इसी के द्वारा जन्म मरण के चक्कर से भी छूट जायेंगे आप।

॥ मूल छन्द ॥

१५—श्री रसिकेश जानकी जीवन सम महबूब न कोई है।
जेहि रस रूप झलक झाईं लखि महामुनिन मति सोई है॥
रिपिते भये वाम विह्वल नहिं बात लोक में गोई है।
युगलानन्य शरन आशक प्रिय परिकर निकर निकोई है॥ ३०३॥

शब्दार्थः—रसिकेश=रसिक शिरोमणि। रस रूप=रसके साकार रूप। झलक=कांति। झाईं=छटा मात्र। सोई=मुग्ध हो गई। वाम=नायिका। विह्वल=कामकुला। गोई=छिपी। आशक प्रिय=रसिक जन प्राण वल्लभ श्री जानकीरमण। परिकर निकर=सन्निकट वासिनी रमणियाँ। निकोई=सुन्दरी हैं।

भावार्थः—"वेत्ता भोगस्य भोक्तुं वा समर्थः शील इत्यपि।
पुण्यश्लोकोऽनुरागी च रसिकोऽसौ प्रकीर्तितः॥"

अर्थात् जो भोग वस्तु का मर्मी हो, जिसमें भोगने की सामर्थ्य हो, जो शीलवान हो, यशस्वी हो, अनुरागवान हो, वही रसिक कहा सकता है।

रसिक शब्द की परिभाषा में आये हुये सभी गुणगणों की सुधोदधि, प्रीति रीति सुजान एक मात्र श्री जानकी जीवन प्राण जू ही हैं। उभय विभूतियों में ढूढ़ आइये, ऐसा महबूब आपको कहीं नहीं मिलेगा। रमणी हृदय तो रूप यौवन सम्पन्न गुणवान नायक पर फिदा हो ही जाता है। परन्तु श्री राघवलाल जू के रूप में इतना अधिक अपरिमेय रस है कि बड़े बड़े वीतराग इन्द्रीजीत योगीन्द्र मुनीन्द्र इनकी तनक सी छवि छटा देखकर, बुद्धि विभोर हो जाते हैं। दण्डकारण्य वासी परम हंसें की चर्चा पद्मपुराण, गर्गसंहिता, श्रीकृष्णोपनिषद् श्रीमहारामायण आदि आप्त ग्रन्थों में आई है। श्रीराम रूप देखकर ये ऋषि विग्रह वदल कर काम विह्वला रमणी रूप में आविष्ट हो गये थे।

"पुरा महर्षयः सर्वे दण्डाकरण्य वासिनः।
दृष्ट्वा रामं हरिस्तत्र भोतुमैच्छत् सुविग्रहम्॥ श्री पद्मे।

"नाना मुनि गणास्सर्वे दण्डकारण्यवासिनः।
ज्ञान योग तपोनिष्ठा जापका ध्यानतत्पराः॥
मुनिवेषधरं रामं नीलजीमूत सन्निभम्।
रमन्ते योषितो भूता रूपं दृष्टवा महर्षयः॥"

श्री महारामायण पूर। १४ १५।

जैसे प्रेमी वर्ग के प्राण सर्वस्व आप श्री अयोध्या विहारी लाल हैं, उसी भाँति आपकी परिकर भूता सखी, सहचरी किंकरी, वृन्दा भी हैं। सभी रूप, गुण, परिचर्या चातुर्य से युक्त एवं शीलवती, तथा स्नेहशीला हैं। तात्पर्य है कि महबूब बनाने योग्य सब प्रकार से आप ही हैं।

॥ मूल छन्द ॥

१६—मेरा मन मुश्ताक मधुर महबूब मनोहर पाया।
अशन वसन व्यवहार वासना दरया इश्क बहाया॥
बाँधा विमल विहार विषे चित चौगुन चैन चढ़ाया।
युगलानन्य शरन जाहिर जग जीवन जस सरसाया॥ २५३॥

शब्दार्थः—मुशताक (मुश्ताक् अ०)=अभिलाषी। अशन सं०=भोजन। वसन=वस्त्र। वासना=कामना। दरया फा०=नदी। विमल विहार=त्रिगुणातीत दिव्य प्रेमलीला। विषे=में। चैन=सुख। जाहिर जग=बाह्य जगत। जीवन=प्राण तुल्य प्रिय। जस=जैसा। सरसाया=सुशोभित हुआ, प्रतीत होने लगा।

भावार्थः—श्री ग्रन्थकार कहते हैं कि मेरा इश्कबाज मन चिरकाल से एक मनभावन माशूक की खोज में लगा था। अपने पसंद से भी अधिक प्रियदर्शी मन मोहक महबूब मुझे मिल भी गये। मैं तुरन्त इन पर फिदा हो गया। उनके प्रति इश्क के ऐसी वेगवती सरिता हृदय में बहने लगी कि जिसकी प्रबल धारा में मेरी बहुत सी वस्तुएँ दह गई। भोजन वस्त्र के निमित्त व्यवहार करना, लोक वासना, देश वासना और न जाने क्या क्या चीजें उसमें दह गईं?

"उर कछु प्रथम वासना रही। प्रभुपद प्रीति सरित सो बही॥"

इश्कबाजों को, माशूक के रूप में तन्मय हो जाना स्वाभाविक है। मुझे उस भाव समाधि में श्रीजानकीरमणजू की दिव्य विहार लीला के दर्शन होने लगे। अब तो मेरा चित्त उसी दिव्य विहार दर्शनों में आसक्त हो गया है।

"प्रेम रंग सों जो रँगे, उर नहिं आनत आन।
अद्भुत युगल विहार रस, तेई करिहैं पान॥३९॥"

—श्री प्रेम चन्द्रिका।

दिव्य विहार दर्शनों से मेरा प्रेमानन्द चौगुना बढ़ गया।

"युगल विहार अहार से, तृप्त होत नहिं जौन।
तिनके सुख वरनन लिये, शारदहू भई मौन॥"

वही, ६०॥

अब तो मुझे बाह्य जगत में भी सर्वत्र उन्हीं की विहार लीला दिखाई दे रही है। जो जगत मायामय प्रतीत होने के कारण शत्रुवत् प्रतीत होता था, उसी को अपने इष्टमय देखता हूँ। अतः वही जगत अब अपने जीवन के समान प्रिय भासित हो रहा है। दृष्टिकोण का तारतम्य जो ठहरा!

❋ दूसरा खण्ड, इश्क प्रकाश ❋

॥ प्रथम अध्याय, इश्क स्वरूप ॥

अवतरणिका:—इश्क स्वरूप समझने के लिये नीचे के छन्द में इश्क का अक्षरार्थ किया गया है।

॥ मूल छन्द ॥

१७–ऐन ऐन महबूब रूप निज नैन बैन में लाते हैं।
शरम लाज शरबत सम पीके तन मन सुख सरसाते हैं॥
करक करारी दरदिल हरगिज नेस्त अधिक तलफाते हैं।
युगलानन्य इश्क अच्छर वर तीन पीन मदमाते हैं॥ २७९॥

शब्दार्थ-ऐन = उर्दू लिपि का एक अक्षर, आँख। ऐन ऐन (अ०) = प्रत्येक आँख में। शरम = लोक लाज। साज = सामग्री। करक (कड़क) = प्रेम पीड़ा। करारी = उग्र। नेस्त (फा०) = नहीं है, मिटता है। हरगिज फा० = कदापि। दर फा० = में, भीतर। दिल फा० = हृदय। पीन = पुष्ट।

भावार्थ:—इश्क शब्द उर्दू लिपि में तीन अक्षरों से लिखा जाता है। १- ऐन, २- शिन, और ३- क़ाफ़।

१- प्रथमाक्षर है ऐन। ऐन अरबी भाषा में आँख को कहते हैं। सो प्रत्येक आँख की काली पुतली में मुझे अपने श्यामले सलोने प्रियतम श्री जानकीकांत का ही रूप भासित होता है। श्री आचार्य चरण की यह मान्यता श्रुति सम्मत है। छान्दोग्य उपनिषद ४।१५ में आचार्य सत्यकाम ने अपने ब्रह्म-विद्या जिज्ञासु ब्रह्मचारी उपकोस को बताया है कि नेत्रान्तर्वर्ती पुरुष ही ब्रह्म है।

"य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एषः........ब्रह्मेति।"

उसी नयन वासी प्यारे को मैं अपनी आँखों से देखता हूँ तथा वाणी से उसी का गुणगान करता हूँ।

२- इश्क शब्द का दूसरा अक्षर है शिन। शिन से शरम भी लिखा जाता है। अतः प्राण प्यारे को प्रत्येक नयन में व्यापक देखकर मैं (कवि) प्रेमोन्मत हो उठा। लोकलाज, कुलकानि को घोर कर शर्बत के समान पी गया अर्थात् त्याग दिया। अब तो वह प्रेमानन्द मेरे मन में, तन में, रग रग में समा रहा है।

३- इश्क शब्द का तीसरा अक्षर है क़ाफ़। क़ाफ़ ही के ककारादि शब्द से करक और करारी भी लिखा जाता है। इश्क की स्थिति में कलेजे के भीतर (दरदिल) एक तीव्र प्रेम पीड़ा बनी रहती है। उसे भुक्त भोगी ही समझते हैं। कुछ भुक्तभोगी के अनुभव उन्हीं के शब्दों में सुनिये।

"शायद इसी का नाम मुहब्बत है शेफ़ता।
एक आग सी है दिल में हमारे लगी हुई॥"० (गालिब साहब)

"हम तोरे इश्क से तो वाकिफ नहीं हैं लेकिन।
सीने में कोई जैसे दिल को मला करै है॥"— मीर साहब

पूज्य ग्रन्थकार कहते हैं कि हमारे हृदय में भी एक तीव्र वेदना कसक रही है। ऐसा कदापि नही होता कि वह कसक न रहे। इस कसक के मारे मैं अत्यन्त तड़पता रहता हूँ।

इस प्रकार तीनों सार्थक अक्षरों से लिखा जाने वाला इश्क सुपुष्ट नशे से परिपूर्ण हैं।

"सौदाई हो तो रखे बाजारे इश्क में पा।
सर मुफ्त बेचते हैं यह कुछ चलन है बाँका।।"—मीर

॥ मूल छंद ॥

१८—कुसुम रसिक जिमि भ्रमर समर प्रिय यथा शूर बड़भागी।
विद्यारथी यथा विद्याहित स्वर्ग अमर गन रागी॥
हंस मानसर घन मयूर जिमि, देश चाह नृप लागी।
ऐसेहि सतत सनेह सीयवर युगलानन्य सुमाँगी॥ २६७

शब्दार्थः—कुसुम=फूल। रसिक=रसास्वादी प्रेमी। शूर=योद्धा। अमर=देवता। रागी=आसक्त। घन=बादल।

भावार्थः—यह संसार भी प्रेम का एक प्रमुख विश्वविद्यालय है। यहाँ भी एक से एक धुरंधर प्रेमी अपने अपने प्रेमास्पद के प्रति प्रीति रीति प्रदर्शन द्वारा हम प्रेमार्थियों को क्रियात्मक प्रेमपाठ पढ़ाते हैं। छन्द १८ से २१ तक चार छन्दों में कुल पैंतीस प्रेमाचार्यों की विभिन्न प्रीति रीति प्रेमपाठ के रूप में वर्णित हैं। प्रस्तुत छन्द के सात प्रेमाचार्यों की प्रीति रीति नीचे लिखी जाती है।

१— भ्रमर एक विलक्षण आशिक है। वह अपने मन भावन सुरभित सुमन की खोज में वन वन की खाक छानता है। सुमन पाकर आनन्द मग्न हो जाताहै। अपनी गुंजार मई भाषा में उसका गुणगान कर उसे रीझता है। पुनः उसके परागपान में समाधिस्थ हो जाता है। रसपान से अघाकर पुनः उसी के गुणगान में तत्पर हो जाता है। हमारे प्राण सर्वस्व श्री जानकीनाथ को श्रुति "सर्वरसः सर्वगन्धः॥" कहतीहै। अनन्त रसकी खान, अपार सौरभदान श्रीजानकीजानके लिये हमेंभी लुब्ध मधुप बनना होगा

२— दूसरे प्रेमाचार्य है समरशूर। इन्हें युद्ध प्रिय होता है। इनसे सीखिये अथक उत्साह, मरने से लापरवाह और विना कृतकार्य हुये पीछे पाँव न देना। अन्तर इतना ही रहेगा कि ये हैं समरशूर, हमें बनना है इश्कशूर। इसी ग्रन्थ में कई जगह आशिकों की समता समरशूर से की गई है। ठीक ही है दोनों में बहुत से धर्मसाम्य हैं भी।

'आशक होके कतल न होवे जोवे जीव जहाना।
तिस के सम कमजरफ अधम नहि संत अनंत बखाना॥
शूर सदाना फेर डेराना ममता में मगनाना।
युगलानन्य शरन हर दो दिशि मसि मुख माँझ लगाना॥४८॥'

'बात बनाना शूर सदाना ख्वाहिश खाम खजाना है।
शिर दरदस्त करे अउअल तब मारू राग बजाना है ॥
जिस सायत रत सनमुख होना तब फिर क्या सरमाना है।
युगलानन्यशरन लाशक अब शिर कटाय मर जाना है ॥६१॥'

३—विद्या व्यसनी विद्यार्थी विद्योपार्जन के लिये कितना शिरतोड़ परिश्रम करते हैं। इनसे सीखना चाहिये काग समान नाम रटन, बगुले के समान ध्यान निष्ठा, कुत्ते के समान स्वल्प निद्रा, स्वल्पाहार करना, गृह त्यागी बनना आदि। तब हम प्रेमविद्या पा सकेंगे।

'काकचेष्टा बकोध्यानं श्वान निद्रा तथैव च।
स्वल्पाहारी गृहीत्यागी विद्यार्थी पञ्च लक्षणः ॥'

—चाणक्य नीति दर्पण।

४—स्वर्ग के रागी देवताओं से राग का पाठ पढ़ना है। 'अभिलाषातिशयात्मक स्नेहः रागः ॥' स्वर्ग के लिये अतिशय अभिलाषा होने से सुकृतार्थी बहुव्यय साध्य यज्ञ करते हैं, बहु कष्ट साध्य तप करते हैं बहुश्रम साध्य तीर्थ करते हैं आदि आदि। तब इन्हें स्वल्प कालीन स्वर्ग सुख प्राप्त होता है।

हमारा इश्क शाश्वत अपरिमित आनन्द देने वाला है। तोभी इसके लिये न उतना व्यय, न श्रम, न कष्ट।

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा ॥
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गई ॥'

श्री मानस ७। ४५

५—हंस से सीखना है मान सरोवर का निवास अर्थात् अपने हृदय रूपी अन्तर्जगत में श्रीसाकेत प्रमदावन का साज सजाकर, श्रीकनक भवन विहारिणी विहारीलाल जू को मन से सतत निवास कराना। वृत्ति अन्तर्मुखीं तभी संभव है, जब हम हंसके कुछ स्पृहणीय गुण सीखें। यथा—

१—'हंस जल से दूध अलग कर, उसी को पीता है।

जड़ चेतन गुन दोष मय, विश्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहर बारि विकार ॥'

हंस का स्वभाव है पराये अवगुणों पर दृष्टि न देकर, सबों में गुण ही खोजना और देखना। पुनः हंस मोती ही खाता है।

२—'जसु तुम्हार मानस विमल, हंसनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन गन चुनई, राम बसहु हिय तासु ॥'

हम केवल प्यारे के गुण गण रूपी मोती ही अहार करना सीखें।

६--अपने सजल जलद समान अंग कान्ति वाले श्याम सुन्दर श्री रघुलाल जू पर दृष्टि पड़ते ही, हमें भी मयूर की भाँति आनन्दोन्मत्त होकर नाचना सीखना होगा।

७--भूमि भोग के लोलुप नृपति गण, नये नये देशों को अपने राज्य में मिलाने के लिये, प्राणों की बाजी लगाकर, युद्ध करते हैं। हमें भी तो अपने प्रियतम के दिव्य देश की प्राप्ति करनी है। क्यों" न हम प्राणों की बाजी लगाकर, साधन संग्राम में कमर कस कर डट जायँ।

॥ मूल छन्द ॥

१३—ज्यों तस्कर चोरी चाहत, चित ज्वारी जूवा लोचे।
पतिव्रता ज्यों पति परदेशी निशवासर गुनि सोचे॥
तृषावंत जस नीर पीर पर औषध हित अति रोचे।
नूतन गुरु सिष सदृश प्यार पन युगल अनन्य न मोचे ॥२६६॥

शब्दार्थः—तस्कर=चोर। ज्वारी=जुआरी। लोचे=ललचाता है। गुनि=चिंतवन करती हुई। सोचे=वियोग में चिंतातुर रहती है। निशा=रात वासर=दिन। तृषावंत=प्यासा। नीर=जल। पीर पर=रोग पीड़ा से घबड़ाया हुआ। रोचे=रुचि होती है। मोचे=छोड़ना नहीं चाहता।

भावार्थः—अब हम इश्क महा विद्यालय के दूसरे विभाग में शिक्षा ग्रहण करने को प्रवेश करेंगे। इस विभाग में षट दर्शनाचार्य हमें अपनी रहनि द्वारा इश्क पाठ पढ़ायेंगे।

दृष्टान्त—१न चोर जुवारी से भी हमें इश्क विद्या सीखनी होगी। इनके कर्म निन्द्यहैं सही पर हमें इनके गुणों पर ही दृष्टि रखनी है।

नीति कहती है 'विष में भी अमृत पड़ा हो, अशुद्ध स्थान में भी सोना पड़ा हो, नीचकुल में भी उत्पन्न स्त्री रत्न किसी विवाहार्थी को मिल जायँ, तो ग्रहण कर लेना चाहिये। उसी भाँति उत्तमा विद्या नीच से भी प्राप्त हो, तो ग्रहण कर लेनी चाहिये।

'विषादप्यमृतं ग्राह्यममेध्यापि काञ्चनम्।
नीचादप्युत्तमा विद्या स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि॥'

—चाणक्य नीति दर्पण १।१६॥

चोर विद्या भी बड़ी कठिन है। चोर पहले अपने मनोनुकूल गुप्त सम्पत्ति का पता लगाता है। पुनः शुभ शाकुनिक समय देखकर चोरी करने चलता है, प्राणों की बाजी लगाकर। न उसे अँधेरी रात का भय, न कांटे कंकड़ों के चुभने की परवा। वह सर्प बिच्छुओं से भी भय नहीं करता। पकड़े जाने पर, जो उस पर मार पड़ेगी और जेल की दुर्दशा भोगनी पड़ेगी, यह भी उसे मालूम रहता है। फिर भी चसका ही तो ठहरा, चोरी करने का। हमें भी गुप्त इश्क माल हासिल करना है। चोरों की भाँति हमें भी प्राणों की बाजी लगाना, विघ्नों से लापरवा रहकर, परिणाम की चिंता त्याग कर इश्क प्राप्ति में जुट जाना चाहिये। प्राकृत चोरों का साधन दुःख परिणामी है। हमारा साधन चिरन्तन अमित परमानन्द में पर्यवसित होगा।

दृष्टान्त ६—जुवारी सर्वस्व हारने पर भी जूवा खेलने की लत नहीं छोड़ता। उसे जूवा खेलने का लालच दिनानुदिन बढ़ता ही जाता है। उसी प्रकार हम लोक सुख, पारलौकिक सुख, सब सर्वस्व हार भी जायँ, तौ भी इश्कबाजी नहीं छोड़ें।

"स्वारथ परमारथ सुख सारे। भरत न सपनेहु मनहि निहारे ।।
साधन सिद्ध रामपद नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू ।।"

दृष्टान्त १०—प्रकृति मंडल की प्रोषित भर्तृका नायिका अपने प्रवासी प्राणपति के वियोग में अहर्निश व्यथित रहती है। वह पतिप्राणा निरंतर अपने हृदय सर्वस्व पतिदेव का ही चिंतन करती रहती है। उस नायिका का, उसके पति का, स्थूल शरीर अपावन एवं नाशवान है। उसके अल्प-जीवन के साथ उसकी इश्कमिजाजी भी समाप्त हो जायगी। पर –

'हम विषयी दिलदार यार के विषय हमारा सच्चा है।'

हमारा सोहाग नित्य है। अतः इस लौकिक मानव जीवन में हमारी स्थिति भी तो प्रेषित भर्तृका की ही है। अतः हमें उसकी विरह दशा अपने हृदय में उतारनी होगी।

दृष्टान्त ११—तृषातुर प्राणी जल के बिना बेचैन रहता है। उसे उस समय जल के अति-रिक्त और कुछ नहीं सुहाता। कब जल मिले? छटपटाता रहता है।

(राग सोरठा)—हमारे दृगन बसे रघुवीर।
लोग लाज कुल की मरजादा, सब तजि भये फकीर।
भस्म रमाइ सुमिरनो कर गहि, डोलत सरजू तीर।
वनप्रमोद की कुंज गलिन में, ढूढ़त फिरत अधीर ।।
जुलफन जुत विधु वदन निरखि कै, कब मिटिहै उर पीर।
'रसमाला' उर प्यास बुझावो, प्याइ वदन छवि नीर ।।

एक आशिक की दर्शन प्यास ऊपर के पद में आपने देखी। सीखनी है यह दशा।

दृष्टान्त १२—दर्द से छटपटाता हुआ रोगी, दर्द निवारिणी दवा के लिये व्याकुल रहता है। कितना शीघ्र दवा मिले कि दर्द मिटे। हम पहले इश्क की टीस उत्पन्न करें, फिर तो मरहम पट्टी रूप प्रियतम के लिये छटपटी होगी ही।

'दरद दाह दिलदाह दरद दिलवर आराम करावे।'

दृष्टान्त १३—जब किसी जिज्ञासु को बड़ी ललकपूर्ण खोज करने पर कोई सुयोग्य गुरु मिल जाते हैं, तब वह सर्वस्व समर्पण कर, उन पर लट्टू हो जाता है। श्रीगुरु महाराज भी उसकी समुन्नत श्रद्धा पर रीझकर उसे दुलार करने लगते हैं। परन्तु प्रकृति मंडल के नियमानुसार यहाँ के गुरुशिष्य का पारस्परिक स्नेह पुराने पड़ जाने से शिथिल हो जाता है। उनका नवीन स्नेह ही अनुकरणीय होता है। वैसा ही स्नेह आशिक का होना चाहिये—

श्रीजानकीरमण जगद्गुरु में। देखिये श्रीमानसोक्त श्रीअत्रि स्तुति—

'जगद्गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलं ।।'

॥ मूल छन्द ॥

२०—छीर नीर ज्यों, धेनु वत्स कल, कमल सरोवर प्रीति।
जननी वाल बेहाल भोग से सिंह मांस सम रीति॥
लंपट वाम, दाम लोभी, कटु कृपिन यथा निज नीती।
नाद कुरंग, मनी ज्यों फनि रत युगलानन्य प्रतीती॥ २६५॥

शब्दार्थः छीर=दूध। नीर=जल। धेनु=नई व्याई गौ। वत्स=नवजात वछड़ा। जननी=माता। वाल=शिशु वच्चा। वेहाल=भोगातुर। लंपट=कामासक्त। वाम=सुन्दरी तरुणी। कटु कृपिन=पेट काटकर पैसे जमा करने वाला। नीती=प्रीति रीति। नाद=वंशी की मोहक ध्वनि। कुरंग=मृगा। फनि=सर्प। प्रतीती=प्रेम भक्ति का सुदृढ़ संकल्प।

भावार्थ:—अब हम लोग इश्क विज्ञान के क्रियात्मक प्रशिक्षण (Practical Training) के लिये इश्क की प्रयोगशाला (Laboratory) में प्रवेश करेंगे।

यहाँ क्रमशः ग्यारह प्रशिक्षक हमें इश्क का सफल प्रयोग सिखाने आयेंगे।

दृष्टान्तः—सर्व प्रथम नीरक्षीर (जल मिश्रित दूध) की वारी आई है। प्रयोग देखिये – जल दूध में मिलने चला। उसकी उत्कट अभिलाषा देखकर, प्रीति रीति निवाहने वाले दूध ने उसे आत्मसात कर लिया। अपना सा रूप रंग देखकर, उसे अपने में मिला लिया। दूध को अपना प्रभाव हल्का होने की परवा नहीं हुई।

अब दोनों को औटाने की वारी आई है। जल ने कहा मित्रवर दूध! जब तक मेरा अस्तित्व रहेगा, मैं आपको जलने नहीं दूँगा। आपके बदले मैं ही जलूँगा। हुआ भी यही। जल निश्शेष रूप से जल गया। इधर दूध ने देखा कि मेरा प्रेमी बिल्कुल गायब है, तो वह व्याकुल हो गया। वह भी जलने को छटपटाने लगा। सोचा, ताव से जलने में देर होगी। आग में कूदकर शीघ्र जल जाऊँगा। मित्र के वियोग से जल मरना अच्छा है। आग में कूदने को उफना उठा। इस पर उवालने वाले ने उफान पर जल का थोड़ा छींटा दिया। छींटे के साथ अपने मित्र जल का किंचित समागम पाकर दूध ने शांत होकर उफान कम कर दिया। हमारे प्यारे रघुराज दुलारे दूध से भी अधिक प्रीति के निवाहने वाले हैं। हम जल के समान उनके आगे तुच्छ हैं। तो भी उनसे प्रीति तो जमेगी ही।

दृष्टान्त १५—धेनुवत्स से इश्क प्रयोग सीखिये। बछड़े के जन्म लेते ही धेनु अपनी जीभ से उसके शरीर में लिपटे कचड़े चाटकर छुड़ाती है। यह कार्य उसे इतना प्यारा होता है कि उस समय उस कार्य को छोड़कर उत्तम से उत्तम चारा डालने पर नहीं पूछेगी। उस कार्य में वाधा डालने वालों को सिंह से मारने दौड़ेगी।

पश्चात् भी बछड़े की रक्षा में सदैव तत्पर रहती है। वच्चे को दुखाने वाले को बिना दंड दिये नहीं छोड़ेगी। बछड़ा भी मातृ मुखापेक्षी होता है। माँ के समीप ही रहना चाहता है। चरने

के लिये मां को अलग करो तो उसी के लिये रँभाता रहेगा। दिनभर भूख से व्याकुल मां की वाट जोहने में छटपटाया करेगा।

शरणागतवत्सल श्रीजानकीरमण धेनु से भी अनन्तगुणा शरणपाल एवं प्रपन्न रक्षक हैं। यहाँ श्रृङ्गार भावाविष्ट भावुक वात्सल्य रस का सांकर्य देखकर घबड़ायें नहीं। रसराज के सन्निकट अन्यान्य रस समय समय पर संचारी भाव बनकर आते और चले जाते हैं। यहाँ का स्थायी भाव तो मधुरारति ही है। ललना भी पतिदेव के द्वारा लाल्य एवं पाल्य बनती रहती हैं। पति शब्द का अर्थ ही है रक्षक।

दृष्टान्त १६ –कमल को अपने उत्पत्ति एवं आश्रय स्थान सरोवर में बड़ी प्रीति होती है। वहीं उसका जन्म, उसी में रहकर प्रफुल्लित होना, उसी में संपुटित होकर विश्राम करना उसका स्वभाव होता है। वहाँ से पृथक करते ही वह कुम्हिला जायगा और धीरे धीरे सूखकर निष्प्राण हो जायगा। हम भी अपने शुद्ध आत्म स्वरूप से कमलिनी नायिका ही है। अपने शीतल सुखद शान्त सरोवर श्रीयुगल छवि में भी हमारी आसक्ति कमलवत् ही होनी चाहिये।

दृष्टान्त १७--नवजात शिशु से हम आशिकों को सीखना है आशा भरोसा और निर्भरता। शिशु को मातृ गोद में ही सुख है, शान्ति है। जननी के हृदय में निरंतर चिपका रहना उसे पसंद है मातृ स्तन पान ही एकमात्र उसका जीवन है। किसी प्रकार की असुविधा या कष्ट होने पर, उसे निवारण का उपाय मातृ स्मरण ही दीखता है। माँ के लिये रोना, उसी की प्रतीक्षा में आतुर रहना, उसका स्वभाव होता है। प्राकृत जननी से अनन्त गुणा वात्सल्य स्वभाव परिपूर्णा जगज्जननी श्रीजानकी स्वामिनी का हमें उसी प्रकार भरोस होना चाहिये।

दृष्टान्त १८--भोगातुर प्राणी विषय भोग की वस्तु पाने के लिये आकाश पाताल एक कर देता है। भोग पाकर उसी में लिप्त हो जाता है। भोग से वियोग होते ही छटपटाने लगता हैं।

हम आशिकों का भोग्य है अपनी (माशूक) प्रेमास्पद श्रीवैदेहीवल्लभ की प्रीति प्रवर्धिनी एवं प्रेम रसास्वादिनी परिचर्या, महल टहल अर्थात् मानसिक अष्टयाम सेवा। इसी को पाने के लिये हमें भगीरथ प्रयत्न करना चाहिये। पाकर उसी में लिप्त रहें। छुट जाने पर छटपटी हो।

दृष्टान्त १९--सिंह को मांस से अनन्य प्रीति होती है। भूखे सिंह के आगे रखो हरी घास, तस्मई, मालपूवा नाना मिष्ठान्न पकान। एक भी नहीं पूछेगा। भूखों मर भले ही जाय, पर खायगा तो मांस ही। रसिकों का स्वाभाविक आहार है दिव्य युगलविहार का भावना में मानसिक दर्शन। सिंह से आहार नीति सीखनी चाहिए।

"प्रेम रंग सो जो रँगे, उर नहि आनत आन।
अद्भुत युगल विहार रस, तेई करिहैं पान॥" प्रेमचन्द्रिका॥

दृष्टान्त २०--कामाकुल लंपट सुन्दरी नवयौवना रमणी पर ऐसा कामांध होकर आसक्त

हो जाता है कि उसे न लोक लाज की परवा होती, न कुल कानि की। परलोक की परवा कौन करता है ? उसकी वह मोहान्धता है तो निन्द्य, परन्तु उसकी वह आसक्ति तो अनुकरणीय अवश्य है।

"कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभी प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम ॥"

दृष्टान्त २१—लोभी अर्थ संचय का लोलुप होता है। नीति से, अनीति से, भ्रष्टाचार से, काला बाजार से, जहाँ से मिले, हँसोत कर बैंक में जमा करते जाओ। क्या हम भी इश्क संग्रह में ऐसे तत्पर होंगे ?

दृष्टान्त २२—कटु कृपण पेट भर भोजन नहीं करेगा। अपनी अत्यन्त प्रयोजनीय वस्तुओं में भी खर्च करना उसे पसंद नहीं। रोग से मरणासन्न भले हो जाय दवा में, डाक्टर वैद्य में, खर्च न करेगा। चमड़ी जाय तो जाय, दमड़ी न जाने पावे।

हमें भी अपने संचित इश्क की सुरक्षा में कटु कृपण बनना है।

दृष्टान्त २३—मृग वेणु ध्वनि का प्रेम दीवाना होता है। वेणुध्वनि सुनते ही, रागोन्मत्त होकर, अपने प्राणों को राग की बलि वेदी पर निछावर करने को आ डटेगा।

अपने प्रेमास्पद की वीणा सकुचावनी वाणी सुनने को हमें मृगी बननी होगी।

'एक कहैं चलि देखिये जाय जहाँ सजनी रजनी रहि हैं।
कहि है जग पोच न सोच कछू फल आपन लोयन तो लहि हैं ॥
सुख पाइहैं कान सुनै बतियाँ कल आपुस में कछु तो कहि हैं।श्रीकवितावली २

दृष्टान्त २४—मणियार साँप को मणि मस्तक में छिपाने पर भी संतोष नहीं। मणि-घटित फन को सारे शरीर से कुंडलित कर सुरक्षित रखेगा। रात्रि में चारे की खोज में प्रकाश के लिये एकान्त निर्जन स्थान में निकालेगा भी, तो किंचित बाधक की आहट पाकर, उसे चट से निगल जायगा। किसी कारणवश मणि से विरहित हो जाय, तो छटपटा कर उसके बिना प्राण त्याग देगा। अपने प्राण वल्लभ श्रीरघुवंशमणिजू को अपने ध्यान में जोगाने के लिये हमें भी फणि-वृत्ति अपनानी होगी।

पूज्यपाद ग्रन्थकर्त्ता जू कहते हैं कि उपर्युक्त ग्यारहो इश्क प्रयोगी से सीखकर हम भी इश्क प्राप्त करने का सुदृढ़ संकल्प करते हैं।

॥ मूल छन्द ॥

२१—ज्यों अमली की प्रीति अमल में, मीन यथा पय प्यारा।
चंद चकोर, पतंग दीप, चकई ज्यों रवि दीदारा ॥
चातक घन, मृग बन, तन जीवहि, पीवहि प्रिया अधारा।
कोकिल आम, काम कामी, त्यों 'युगल अनन्य' सम्हारा ॥ २६९ ॥

शब्दार्थः—अमली = व्यसनी। अमल = गाँजा, भाँग शराब आदि पीने की लत। मीन = मछली। पय = जल। रवि = सूर्य। दीदारा = दर्शन करती है। घन = बादल।

दृष्टान्त २५—चाय, सिगरेट, पान, बीड़ी, गाँजा, भांग, शराब, अफीम आदि अमल सेवन कील त बड़ी बुरी होती है। इनके आदी न तो अपनी स्वास्थ्य हानि की परवा करेंगे, न धन बर्बादी की, न लोक निन्दा की, न राजकीय आबकारी विभाग के प्रतिबन्ध की। चुरा छिपाकर, जैसे बने अमल सेवन करते चलो। इन्हीं के समान हमें इश्क हकीकी का व्यसन होना चाहिये। इनका व्यसन विषवत दुःख शोक परिणामी है। हमारा लोक परलोक बनाने वाला है। इनका नशा कुछ काल के पश्चात् उतर जायेगा। हमारा नशा एक बार चढ़ जाय, तब कभी उतरने को नहीं। व्यसन कुकर्म में प्रवृत करता है, हमारा व्यसन सत्कर्म में।

दृष्टान्त २६—मछली की जल से प्रीति प्रशंसनीय है। जल के बिना तड़प तड़प कर मर जायगी। मछली के मृतक शरीर की दुर्गन्ध अपने प्रेमी जल से ही धोने पर छूटती है। मछली खाने पर अधिक प्यास लगती है, मानो मछली का शरीरांश भी पेट में जाकर जल ही की मांग कर रहा है।

"मीन काटि जल धोइये, खाये अधिक पियास।
'रहिमन' प्रीति सराहिये, मुयेहु मीत की आस॥"

इश्क करना हमें इनसे सीखना चाहिये।

दृष्टान्त २७—चकोर से प्रीति सीखनी चाहिये। दिन भर अपने प्रियतम चन्द्रमा के वियोग में छटपटाया करता है। रात्रि भर प्रियचन्द्र के दर्शनों में ऐसा तन्मय हो जाता है कि उसे पता नहीं कैसे रात बीत गई? चन्द्रोदय काल में पूरब ओर रुख कर बैठ गया। चन्द्रमा के साथ शिर घुमाते-घुमाते पश्चिम ओर तक गर्दन घुमाता गया। गर्दन टूटने की परवा नहीं। शरीर क्यों नहीं घुमाया गर्दन के साथ? अजी, शरीर घुमाने का होश भी तो रहे? नेत्र के साथ तो गर्दन आप ही घूमती गई, उसकी तन्मयदशा में।

"'तुलसी' ऐसी प्रीति कर, जैसे चंद चकोर।
चोंच झुकी गरदन लगी, चितवत वाही ओर॥"

दृष्टान्त २८—पतींगे दीपक को दूर से देखते ही, उससे लिपटने को दौड़ पड़ते हैं। लिपटने में शरीर जलने की परवा उन्हें नहीं होती। सोचते होंगे, ऐसा शरीर रखकर क्या होगा, जो अपने प्यारे से अलग रहा करता है। हमें भी अपना इश्क ऐसा ही सम्हालना चाहिये।

दृष्टान्त २९—चकई अपने पति चकवे से वियोग कराने वाली निशा और चन्द्रमा को देखकर कुढ़ती है। उदय कालीन सूर्य के दर्शन करते हीं वह अपने पति के संभाव्य संयोगानन्द में मगन हो जाती है। बड़ी ही हितभरी दृष्टि से सूर्य दर्शन करती है।

'ऐसो राम दीन हितकारी' को भी हमें उसी हितभरी, प्यार भरी दृष्टि से देखना चकई से सीखना चाहिये।

दृष्टान्त ३०--श्रीगोस्वामिपाद विरचित श्रीदोहावली ग्रन्थ के चातक चौंतीसा प्रसंग पढ़कर हमें चातक की आदर्श अनन्य प्रीति सीखनी चाहिये ।

"एक भरोसो एक बल, एक आस विस्वास ।
एक राम घन स्याम हित, चातक तुलसीदास ।।"

दृष्टान्त ३१:--मृग वन में रहना पसंद करता है। वहाँ खाने को हरी घास, हरे पत्ते उसे भरपूर मिलते हैं। व्याधों से, बाधकों से छिपने के लिये वन के झुरमुट बहुत मिल जाते हैं। उसे पकड़ कर बाँध रखो। छूट पावे, तो पुनः वन में जाकर ही दम लेगा। श्री साकेत प्रमदाव न में सतत निवास करने के लिये, हमें भी अपने मन को मृग बनाना पड़ेगा। इश्क सच्चा तभी मिलेगा।

दृष्टान्त ३२--अविवेकी पुरुष अपने स्थूल शरीर को ही आत्मस्वरूप मान कर, उसे नाना प्रकार के भोग सुख देने के प्रयास में रचता पचता रहता है। जीवाचार्य श्री लखन लाल से हमें सीखना होगा।

"सेवहिं लषनु सीय रघुबीरहिं। जिमि अविवेकी पुरुष सरीरहिं ।।"

मन से श्री युगल किशोर की सेवा में श्रीलखन लाल जी के समान सतत तत्पर रहिये और इश्क अनायास प्राप्त कर लीजिये

दृष्टान्त ३३—पतिप्राणा हिन्दू कुलांगना अपने आराध्य पतिदेव से प्रेमनिर्वाह के लिए अपनी जननी, जन्मभूमि एमं सभी प्रिय जन्य सम्बन्धियों को त्याग देती है। उसे अपना शरीर भी उतना प्यारा नहीं, जितना पति। पति के सुखार्थ ही उसका जीवन होता है। अपने शरीर के भरण पोषण, रक्षा आदि का पूरा पूरा भरोसा एक मात्र अपने पतिदेव पर ही उसे होता है। अतः इश्क का पूर्णतम विकाश जीवाशक्ति का अपने सच्चे पति रघुपति जी के साथ कान्ताभाव से ही संभव है।

दृष्टान्त ३४—कोकिल को आम से प्रीति होती। आमवृक्ष का ही वह सेवन करता है। आम में मंजरी लगते ही, वह उसकी गंध से प्रेमोन्मत्त होकर, साल भर का मौन भंग कर देता है। पंचम राग में बड़े उच्च स्वर से उसका गुणगान करने लगता है। काश, हम भी अपने रसालोपम रघुलाल ज के गुण गायक कोकिल होते !

दृष्टान्त ३५--कामी पुरुष को अभीप्सित भोग सुख प्रदायक काम से प्रीति होती है। तभी तो कामारि श्रीशंकर द्वारा काम जलाये जाने पर "समुझि काम सुख सोचहिं भोगी ।।" कविश्री इन सबों की प्रीति कणिकायें एकत्रित कर इश्कराशि प्रस्तुत करना चाहते हैं।

उपर्युक्त छन्द क्रमांक १८, १९, २०, और २१ के भावों के स्पष्टीकरण में हम पूज्य ग्रन्थकार जू की अन्यत्र उपलब्ध महावाणी उद्धत करते हैं।

"जो धारी जिय पन सरुचि, सो न टरे सिर जाय।
युगलानन्य सुहृदय थल, दृढ़ प्रतीत सरसाय ।।
दृढ़ प्रतीत सरसाय, काय मन बैन होय सुचि।
श्री सीतावर नाम धाम में बढ़ै विपुल रुचि ।।

चातक चारु चकोर मोर सम गति एकतारी ।
युगलानन्य न बीच परै अब दृढ़ जो धारी ॥"

श्री कुंडलिया विलास ।

नैन निहारो नित्त नीर मधि मीन है। छनिक बिछोह होत करत तन छीन है ॥
मृग मधुकर कुल कंज कुमोदिनि पेखिये । हरिहाँ, चीन कमल रविइन्दु निछावर लेखिये ॥
चतुर चोर सम सतत ताकिये नाम ही। पड़े न पावे पलक लहे अभिरामहीं ॥
लंपट ललना रूप विलोकत हीय में । हरिहाँ, योग धारना उचित ऐसेहि पीय में ।
परवाने से सीख इश्क व्यवहार को । अदा विलोकत जरत सवाद निसार को ॥
सनमुख होय न फिरत निशाने चोट है। हरिहाँ, देखि मजलिशी दशा लोट समपोट है ॥
पिय बिछुरन की पीर पपीहा पाइहै। जिय अन्दर हर रोज ललित लय लाइ है ॥
सीकर प्रेम पिपास आस घनस्याम की । हरिहाँ, युगलअनन्य न और तौर आराम की ॥

श्री प्रेम प्रकाश, १३४, १३५, १३३, २३३ ।

चातक चतुर चकोर मोर रति रस जस मयी लई है।
मीन अदीन फनीश कुपिन पन पीन सुप्रीति मई है ॥
नित्य नवीन नेह निशिदिन पल पात्र नहीं जुदई है।
युगल अनन्य कृपाल कृपा सें सुछवि सुछान छई है ॥

श्री भक्तिकांति ६३ ।

अवतरणिका:—उपर्युक्त चार छन्दों में जिन पैंतीस लौकिक प्रेमाचार्यों से इश्कबाजी सीखने का उपदेश आचार्यचरण ने किया है, उनमें कुछ प्रेमकलंक भी अगले छन्द में बतायेंगे । वह कलंक है स्वसुख का। इससे बचने पर ही दिव्य इश्कबाजी सही उतरेगी ।

॥ मूल छन्द ॥

२२–चातक चक्क चकोर मोर गन मीन कमल कल आशक हैं।
लेकिन हिये लिये लालच निज स्वारथ सँग रँग फाशक हैं ॥
दरजा दूर नूर संपूरन कूर न वाक़िफ़ लाशक हैं।
युगलानन्य शरन अकाम मन सियवर रहस उपासक हैं ॥ १११

शब्दार्थ:-- चक्क = चकई । मीन = मछली । कल = सुन्दर । फाशक अ० = त्रुटिपूर्ण । दरजा = पद । नूर = शोभा । कूर = कठोर हृदय वाले । वाक़िफ़ फा० = जानकार । लाशक फा० = संशय हीन ।

भावार्थ:—पपीहा, चकई, चकोर, मयूर, मछली और कमल अच्छे प्रेमी हैं। किन्तु इनके प्रेम रंग में कुछ त्रुटि भी हैं। क्योंकि इनके हृदय में अपने प्रेमास्पद से कुछ स्वार्थ सिद्ध करने का लालच बना रहता है ।

यथा—पपीहा अपनी प्यास बुझाने के लिये श्याम घन से प्रीति करती है। प्रेम की माँग है कि प्रेमी अपने प्रेमास्पद को सुख देवे। बदले में उससे कुछ न लेवे। चकई अपने प्रियतम चकवा के संयोग लोभ के कारण ही सूर्य से प्रेम करती है। चकोर चन्द्रमा को क्या सुख देगा? इसे तो अपना नयन सुख चाहिये। मछली भी अपने प्राणों की रक्षा के लिये ही जल से प्रीति करती है। जल को क्या सुख देती है, पूछिये इससे? मयूर अपने हृदयानन्द के लिये श्याम घन से प्रेम करता है, न कि घनश्याम को कोई सुख देता है इसे। कमल, तुम जल को कौन सुख देते हो? बल्कि जल को विकृत ही करना तुम्हारा स्वभाव है। तब तो अपना जीवन रक्षामात्र ही तुम्हारे प्रेम का कारण है न?

उपर्युक्त पैंतीस नकली प्रेमियों में केवल छः के ही भण्डाफोड़ किये गये हैं। उपलक्षण से शेष सभी मायिक लोकवासी आशिकों की यही स्वार्थ पूर्ण प्रेमदशा जानिये। इनसे बहुत ऊँचा शोभन पद है दिव्य आशिकों का। लौकिक पाषण हृदय उसको क्या समझेगा?

दिव्य आशिकी स्वार्थ शून्य होती है और होती है प्रियतम सुख प्रयोजनवती। किसी पतिने अपनी सतीस्त्री से कहा। देखो, तेल का कराह खौल रहा है तुम इसमें कूद जाओ। तुम्हें खौलते हुये तेल में उबलते देख मेरे नेत्रों को सुख होगा। वह हँसती हुई झट से उसमें कूदने को उतारू हो गई। अहा! प्राणेश, आज यह प्राण, यह शरीर आपको नयन सुख देंगे। इससे सुन्दर इनका क्या उपयोग होगा! पति केवल उसकी प्रीति परीक्षा कर रहा था।

स्वार्थशून्य सच्ची प्रीति पर अधिक रीझ गया। आचार्य चरण का भी यही मत है—
"जो मारे तरवार यार होशियार शीश तब देते हैं।" यही ग्रन्थ।

अवतरणिका:—

"वचन कर्म मन मोरि गति, भजनु करहिं निःकाम।
तिन के हृदय कमल महँ, करउँ सदा विश्राम॥"

सकाम भक्त के हृदय विहारी, सतत भक्त की मनोरथ पूर्ति में व्यस्त रहते हैं। उन्हें विश्राम करने की छुट्टी कहाँ? निष्कामी आशिक अपने हृदयविहारी के सुख शयन के लिये, अपने हृदय-निकुञ्ज में एक सुन्दर पर्यंक बना लें। कैसा पर्यंक? अरे, पढ़िये न अगले छन्द में।

॥ मूल छन्द ॥

२३—पाया परम प्रतीति प्रान पति परा प्रीति पन पाटी है।
सहज सनेह सोई सिरवा शुभ, सरस शौक दुख काँटी है॥
सेज बन्द विरही सुसंग नव रंग उमंग सुसाटी है।
युगलानन्य शरन प्रीतम हित प्रिय परयंक सुघाटी है॥१६७॥

शब्दार्थ:—पाया=पलंग का पावा। प्रतीति=विश्वास। पन=प्रतिज्ञा, संकल्प। पाटी=चारपाईमें लम्बाई वाली पट्टी। सिरवा=सिरहाने की पाटीपर रुकावट वाली रचना। काँटी=कील। सेजबंद=बिछावन की चादर। साटी=सटा दी है। सुघाटी=सुघटित किया, सुन्दर तयार किया है।

भावार्थः—प्रस्तुत छन्द में प्रेम के विभिन्न अङ्गों का रूपक पर्यंक से बान्धा गया है।

पावों के आधार पर ही पर्यंक का सम्पूर्ण ढाँचा टँगा रहता है। विश्वास के आधार पर ही भक्ति (अर्थात् इश्क) स्थित होती है। प्राणेश श्रीजानकीरमण ने अपनी विहार सेवा के लिये मुझे सद्गुरु प्रदत्त सम्वन्धानुरूप अङ्गीकार कर लिया है, इसमें सुदृढ़ विश्वास होना ही रूपक वाले पर्यंक के चारो पावे हैं। अब रूपक पर्यंक की पाटी चाहिये, पावों में जड़ने के लिये। पराप्रीति निर्वाह के लिये सत्य संकल्प करना ही पाटी होगी। पराप्रीति किसको कहते है ?

"अत्यन्त भोग्यता बुद्धिरानुकूल्यादि शालिनी।
अपरिपूर्ण रूपा या सा स्यात् प्रीतिरुत्तमा॥"

अर्थात् श्रीभगवद्गुण दर्पण में कहा गया है कि भावुक अपने स्वरूप को प्रियतम के अत्यन्त भोगभूत समझे। अतः उनके मनोनुकूल सुख सम्पादन में सतत तत्पर रहे। सुख प्रदान करते-करते तृप्ति न हो। इसी भाव को उत्तमा या पराप्रीति कहेंगे। यही रूपक पर्यंक की पाटी है।

प्रेमार्द्र हृदय को प्रियतम दर्शनादि से तृप्ति न होना स्नेह है। परिपक्व स्नेह जब स्वभाव सिद्ध हो जाता है, तब सहज सनेह कहाता है। सहज सनेह ही रूपक पर्यंक के सिरहाने की ओर वाली कलामयी रुकावट हैं। राग दशा में प्रियतम के क्षणिक सुख के निमित्त घोर से घोर कष्ट भी अपने को सहना पड़े, तो उसमें हर्ष होता है। दुःख सहने के इस शौक को ही कील (काँटी) समझिये। इसी कील से पर्यंक ढाँचे को जोड़ना है।

स्थूल शरीर ही साक्षात् दिव्य युगल सुख-सम्पादिनी सेवा में व्यवधान है। इस शरीर को कितनी जल्दी त्यागकर, हृदयेश की सेवा में जा जुटें। ऐसी विरह व्याकुलता, तब उत्पन्न होगी, जब विरहोत्कण्ठित आशिकों का सत्संग मिल जाय। ऐसी संगति ही बिछावन की शुभ्र दुग्ध फेनवत् चादर है। सुखद सेवा के निमित्त रंगमयी उमंगके द्वारा ही यह चादर बिछावनमें सटाकर बिछाई जायगी।

श्रीआचार्यचरण कहते है कि अपने प्राणवल्लभ के सुख शयन के लिये ही मैंने उपर्युक्त प्रकार का रूपक पर्यंक सुघटित किया है। बलिहारी !

अवतरणिकाः—अग्रिम छन्द में प्रेमांगों का रूपकमय हिडोरा बनाया गया है।

॥ मूल छन्द ॥

२४—नेह हिंडोरा डारा दरदिल षटरी प्रीति लगाई।
खंभा खाहिश मिलन मोहब्बत मरुवा खूब सजाई॥
लट्टू रंगदार लय लालन डोरी जिकर जमाई।
युगलानन्य हमेशे झूलें सिया सहित सुखदाई॥२३॥

शब्दार्थः—डारा=लगाया। दरदिल=हृदय में। पटरी =बैठक। ख्वाहिश=मनोरथ। मोहब्बत=मधुरा प्रीति। मरुया=दोनों खंभों के बीच वाली वल्ली के समान सजीली लकड़ी जिसमें झूला लटकाया जाता है। लट्टू=झूले के मेहराब में रँगी लटकन। रंगदार=प्रेम से रँगा। लय=तन्मयता। जिकर=तैलधारावत् अविच्छिन्न नाम जप।

भावार्थः—कविश्री कहते हैं कि हमने अपने हृदय रूपी हिंडोल कुंज में श्री युगल झूला विहारी के निमित्त नेह रूपी हिंडोरा लगाया है। श्रीयुगल प्रेमग्राहक सुकुमार के सुखद हिंडोलासन के निमित्त भोग्यत्व बुद्धि प्रधान प्रीति रूपी पटरो लगायी। युगल मन रंजन जू से मिलने के लिये विरहोत्कंठा रूपी दोखभे लगाये। मधुरा रति रूपी उसमें वल्ली लगाई। प्रेमानुरंजित चित्तवृत्ति की उनमें तन्मयता ही मानों झूले के मेहराव में रंग विरग के लट्टू लटक रहे हैं। श्वासेच्छ्वास से मिलित निरंतर नाम जप ही उस झूले में डोरी लगी हैं। ऐसे सनेह रूपी झूले पर परम सुखद अवधेश दुलारे जू श्री सिया लड़ैती जू के सहित निरन्तर झूलते ही रहते हैं। प्रातः मंगल सेवा वाले हिंडोल पर, अथवा प्रदोष कालीन झूले पर तो कुछछेक ही देर झूलने होंगे, किन्तु अविच्छिन्न नेह हिंडोरा तो सतत झूला विहार के लिये आपको ललचाता ही रहता है। नेह के लोलुप ग्राहक जो ठहरे !

* दूसरे खण्ड, का दूसरा अध्याय *

॥ इश्क प्याला ॥

इश्क में एक मस्ती है, एक नशा है। आशिक उस प्रेमानन्द की खुमारी में ऐसा मस्त हो जाता है कि उसे संसार की कोई सुधिवुधि ही नहीं रहती है। यह दशा मदिरा के नशे से मिलती जुलती है। अतः इश्क को शराव के प्याले से उपमित कर रूपक बाँधा गया है। इस सम्बन्ध के चार मनोरम मंजु छन्द पाठक आगे पढ़ें।

॥ मूल छंद ॥

२५—शीशा शौक जौक का कातिल दारू दरद दिमागी है।
मेहर मोहब्बत मुरशिद महरम मधुर छकाया रागी है॥
होश जोश अफशोश दूर नव नूर पूर अनुरागी है।
युगलानन्य आशकी साँची हरदम दरदिल जागी है॥ २॥

शब्दार्थः—शीशा (शीशः फा०)=शराव का बोतल। शौक अ०=लगन, व्यसन। जौक=स्वाद। कातिल फा०=शिर काटने वाला। दारू अ०=चिकित्सा। दरद (दर्द फा०)=पीड़ा। दिमागी अ०=मस्तिष्क संबन्धी, मानस। मेहर (मेह्र फा०)=दया। मोहब्बत=मधुरा प्रीति। मुरशिद (मुर्शिद अ०)=रसिक गुरु। महरम अ०)=मर्मज्ञ, भीतरी जानने वाले। छकाया=पिलाकर वुत कर दिया। रागी=स्नेहासक्त। होश=सुधि बुधि। जोश=उमंग। अफशोश फा०=पश्चात्ताप। नूर=शोभा। पूर=पूर्ण। दर=भीतर। जागी है=चमक उठी है।

भावार्थः—श्रीगुरुदेव दिव्य देश वाले दिव्य इश्क के मर्मज्ञ हैं। श्रीजानकीरमण जू के रागी होने के नाते, आप स्वयं भी इश्क दशा के भुक्तभोगी हैं। आपकी कृपा ही ने मुझे मधुरा प्रीति की सुस्वादु (जौक) लगन (शोक) रूपी इश्क मदिरा का बोतल पिला कर नशे में चूर चूर कर दिया। इश्क मद मानस रोग (दिमागी दरद) की दवा (दारू) है।

कामादि विकारों का पता (होश) भी नहीं है। मानसिक वेदना का अनुभव नशे में हो तो कैसे? न देह गेह की सुधि है, न भोग वस्तुओं के जुटाने का उत्साह (जोश)। नाना प्रकार के शोक संताप (अफशोश) सभी दूर भग गये। अनुरागमयी मस्ती की छटा (नूर) नित्य नवायमान रूप से दिमाग में भरपूर हो रही है। अब हमारे हृदय में सच्ची स्नेहासक्ति उदित हुई (जागी) है।

उपर्युक्त छंद की भाव प्रकाशिका महावाणी अन्यत्र से उद्धृत की जाती है।

"अजब अजूब उमंग तरंग उठाना है। इश्क महामय पान प्रेम सरसाना है॥
लता लहलही लगन लखत ललचाना है। युगलानन्य जमाजुग विधि खरचाना है॥

श्री प्रेम उमंग, ३४।

"दीजे दीनदयाल मधुरमय नाम मय। रहे एक रस नैन ऐन बिन बीज भय॥
अद्वितीय तन तीन जीय में रसि रहे। हरिहाँ, ऐसो अमल अजूब नशा लालन लहे॥"
'खाकी तन को पाय खाक हो जाना है। पाकी प्रीति सजाय सुधाम पयाना है॥
साकी सतगुरु पास पियाला प्रेम का। हरिहाँ, लही ललाई लाहच्छेम दुति हेम का॥"
"साकी सतगुरु खूब पिलाया प्रेम रस। बाकी रहा न रंच पंच अफसोस दस॥
घूमत रहे मोदाम मानसी मोदमें। हरिहाँ, हमा ने आमत पास बैठि वर गोद में॥"

श्री प्रेम प्रकाश

"रस बस होय गई मतवारी।
होश हवास न हिरस रही कछु लोक वेद ते न्यारी॥
सुनतन कान कही काहू की प्रीतम प्रीति अहारी।
युगल अनन्य अली अलबेली दशा नशा मतवारी॥

श्री संत सुख प्रकाशिका।

"करत मनोरथ जस जिय जाके। जाहि सनेह सुरा सब छाके॥
सिथिल अंग पगमग डगडोलहिं। बिहवल वचन प्रेमबस बोलहिं॥"

श्री मानस।

॥ मूल छन्द ॥

२६—शौक सुराही प्रीति सुप्याला प्रीतम प्यार सुधा है।
सुरति सनेह कलाल कला करि भरि भरि देत बुधा है॥
पीके मन मस्तान दिवाना चितवित लगत मुधा है।
युगलानन्य मेहर मुरशिद से रँग रस मिली छुधा है॥ २६३॥

शब्दार्थः—शौक=लगन। सुराही=पुराने ढंग का सुराहीनुमा शराव का वोतल। सुधा=रस। सुरति=प्रियतम स्मृति। कलाल=शराव बेचने वाला। कलाकर=युक्ति पूर्वक। बुधा=बुद्धिमान। मस्तान फा०=मतवाला। दिवाना फा०=तन्मय। मुधा सं०=व्यर्थ। मुरशिद=गुरु। मेहर=कृपा। रंग रस=विनोद विलास। छुधा (क्षुधा सं०)=भूख।

भावार्थः—प्रियतम का स्नेहपूर्वक स्मरण ही मानो प्रेममदिरा बेचने वाला कलाल है। उस चतुर सुरति रूपी कलाल ने मुझे लगन रूपी वोतल से प्रीति रूपी प्याले में युक्ति पूर्वक भर भर कर प्रीतम प्यार रूपी मदामृत पीने को दिया। वह प्यार-प्याला पीते ही मैं उन्मत्त हो गया। प्रियतम सुछवि में तन्मयता हो गई। उस नशे की तरंग में मुझे अपना मन, अपना सर्वस्व, सब व्यर्थ सा तुच्छसा प्रतीत हो रहा है। अब श्री गुरुदेव कृपा से युगल ललन जू के प्रति विनोद विलास बढ़ाने की भूख जग गई है। अगले छन्द में उपर्युक्त भाव प्रकाशित करने वाला उद्धरण पढ़ें।

"मतिवारी मुझे करि डारा रे।
प्याय शौक कल नाम रूप रस, सरस स्वाद सुख सारा रे।
नैन वैन चित चढ़ी खुमारी भारी दशा बिसारा रे॥
हाय करेजे उठे हमेशे तन मन विरह हजारा रे।
युगल अनन्य श्याम सूरत पर, हरदम नजर निजारा रे॥

श्री संत सुख प्रकाशिका।

❀ मूल छन्द ❀

२७—मम मन मधुर जाम महरम निज नैन निरखि मय दीया।
सो सनेह सुख सदन सही सब तौर समुझि के पीया॥
नशा नेहायत चढ़ी चित्त चख चँचपन हरि लीया।
युगलानन्य शरन शौकी सरशार शरावी कीया॥ २६६॥

शब्दार्थ:—मधुर=शराब का (मधु=शराव)। जाम फा०=शराव का प्याला। महरम=मर्मज्ञ। मय (मै फा०)=मदिरा। नेहायत (निहायत अ०)=अत्यन्त। चख=आँख। सरशार फा०=उन्मत। शौकी=व्यसनी। शरावी=शराव पीने वाला। निज नैन=प्रियतम नयन रुख। निरखि=संकेत समझकर।

भावार्थः—इश्क प्याले के सुस्वादु रस का जानकार तो अब मेरा अपना मन ही हो गया है। हृदय विहारी का नयन संकेत पाकर, मेरे मन ने मुझे इश्क मदिरा पीने को दी। मैंने अच्छी प्रकार से सोच समझ लिया कि लौकिक मदिरा, बुद्धि विनाशिनी, स्वास्थ्य विगाड़िनी, निन्द्य एवं त्याज्य हैं, परन्तु दिव्य इश्क मदिरा प्रेमानन्द सदन है। इसके पान से बुद्धि ब्रह्माकार वनने योग्य विशुद्ध हो जाती है। अतः मैं इसे चटपट पी गया। अबतो मेरे चित्त में, नयनों में अत्यधिक नशा चढ़ा। मेरी वर्हिमुखी चंचलता मिट गई। मेरे इश्क व्यसनी मन ही ने मुझे प्रेमोन्माद में चूर चूर कर दिया।

याद रहे पहली साकी (शराब पिलाने वाली) है गुरु कृपा, दूसरी प्रियतम की अखंड स्मृति, तीसरा है इश्क का व्यसनी मन।

भाव प्रकाशक उद्धरण—

"मधुर रस पीवत मन मस्ताना।
चौगुन चमक चतुर चित अंदर अनुपम रंग रँगाना ॥
नशा नैन वर बैन रैन दिन दुनियाँ दमक लुकाना।
आशिक इश्क एकताई जब दिल माशूक समाना ॥
हर इक तरफ नजर आया वह दिलवर नेह निशाना।
महरम मन मुरशिद सिखयो सुख सर्वस अरस हिराना ॥
महल माधुरी मोद महानिधि मगन रहस उरझाना।
युगल अनन्य शरन सावित सत शौक जौक गुजराना ॥" सं० सु० प्र०

॥ मूल छन्द ॥

२८—अय शाकी वाकी मै मुझको जरा मेहर करि प्याजा।
जिसके मखमूरी में दिलवर हासिल रुख तर ताजा ॥
मेहरवान मुतरिव गूनागूँ गान सुनाय समाय समा जा।
युगलानन्य असल अनुभव हित जस की घड़ी बजा जा ॥ २८२ ॥

शब्दार्थः—अय=हे। साकी अ०=शराब पिलाने वाले। वाकी=शेष। मै=शराब, (यहाँ इश्क से तात्पर्य है)। मखमूरी अ०=मदोन्माद। दिलवर फा०=दिल उड़ा ले जाने वाला, मनहरण, चितचोर। हासिल अ०=प्राप्त। रुख फा०=कपोल, मुख। तर फा०=तत्कालीन। ताजा फा०=नवीन। तरताजा=नित्य नवीन। मुतरिव=(मुत्रिब अ०)=गायक। गूनागूँ (गूना-गून फा०)=रंग बिरंगा, चित्र विचित्र। समा=आनन्दमय। अनुभव=साक्षात्कार का ज्ञान।

भावार्थः—हे इश्क मद पिलाने वाले कृपालु गुरुदेव, आपके कृपामय करकंज का प्रसाद रूप इश्क मद पीते पीते मेरा जी नहीं अघाता। नशे में चूर हूँ, फिर भी पीने की उमंग बढ़ती ही जाती है। अभी थोड़ा सा और शेष इश्कमद रह गया है। उसे भी थोड़ी कृपा करके पिला जाइये। इसी नशे की मस्ती में मुझे अपने चितचोर श्रीकौशलकिशोर की नित्य नवायमान झाँकी की झलक भासित हो जाती है। कृपालु गुरुदेव, आप प्रियतम के कुशल यशोगायक हैं। संगीत की चित्र-विचित्र तानों में अपने मनहरणलालजू की ललित गुणावली सुनाकर, मुझे भाव समाधि में छका जाइये। मुझे इससे अपने मनभावन के रूप गुणों का साक्षात्कार ज्ञान प्राप्त होगा। आपके सुयश का डंका बजेगा। उसका आनन्द लेते जाइये।

"इश्क महामद पी के छके ना।
है अजूब अद्भुत गाथा गुन, गाय जानकी जान जकै ना।
श्री सतगुरु सेवन सुमिरन सजि, परम मोद प्रिय पंथ थकै ना ॥
निरखि नेह निधि रूप नयन भरि, जगत जाल दिशि नेक तकै ना।
युगल अनन्य अली पल पल पर, पाय परा रति वचन वकै ना ॥" सं० सु० प्र०

-: तीसरा अध्याय, इश्क दशा :-

इस अध्याय में ग्यारह छन्दों में इश्क दशा का मनोरम वर्णन है।

॥ मूल छन्द ॥

२९—अपने अपने घर के भीतर अपनी गढ़ें बड़ाई है।
नई नई बातें अविहित करि अर्थवाद बहकाई है ॥
जो कोई संदेह करे तिस साथ जंग झमकाई है।
युगलानन्य शरन आशक की दशा जुदी दरसाई ॥ १६ ॥

शब्दार्थ:—घर=किसी धार्मिक मत का समाज। अपनी=अपने मत की। गढ़ें=कल्पित-बात कहें। अविहित=वेद विरुद्ध। अर्थवाद=मिथ्या प्रशंसा। बहकाई=सत्पंथ से विचलित करवाते हैं। जंग=वाद विवाद। जुदी=भिन्न।

भावार्थ:— आस्तिक जगत में नाना मत मतांतर फैले हैं। नई पन्थाई के लोग अपनी गोष्ठी में बैठेंगे, तो अपने मत की झूठी प्रशंसा में बहुत सी मनगढ़ंत बातें बका करेंगे। अपने मत के प्रचारार्थ वेद विरुद्ध बातें भी करेंगे। स्वमत की अतिरंजित प्रशंसा करके भोलीभाली जनता को बहकाया करेंगे। यदि कोई विद्वान् इनकी कपोलकल्पना में तर्क करे, तो उससे वाक् युद्ध करेंगे। वाद विवाद में हारने पर हाथापाई तक की नौबत आ पड़ेगी। आचार्य श्री कहते हैं कि निर्जन एकांत देश में बैठकर, दिव्य रस के पान करने वाले अलमस्त आशिकों की दशा इन सभी वाक् विडंबियों से सर्वथा भिन्न है। कैसी दशा है इनकी—

"झुकि झुकि मौज में मतवालन कैसी चाल।
इतके उत पग धरत धरनि धुनि निकसत नेह निहाल ॥
नैन बैन राते माते मद सुमिरत नाम रसाल।
युगल अनन्य शरन जन की गति जानत सियवर लाल ॥ सं० सु० प्र०

॥ मूल छन्द ॥

३०—बातिल लगन मगन जन सिगरे बिगरे बगरे वादी हैं।
अव्वल अति उत्साह बादजाँ ख्वाहिश खर मत लादी है॥
क्या जानेगा गाह निवासी शहर स्वाद सुख शादी है।
युगलानन्य शरन नौबत नित साँचे सदन अबादी है॥ १०॥

शब्दार्थः—बातिल अ० = असत्य। लगन = आसक्ति। मगन = लीन। सिगरे = सब। बगरे = फैले हुये। बिगरे वादी = पथभ्रष्ट वक्ता, उपदेशक। अव्वल = प्रारंभ में। बादजाँ = पीछे चलकर। ख्वाहिश (ख्वाहिश फा०) लालसा, कामना। खर = गधे। गाह = गँवई, भदेश। शहर (शह्र फा०) नगर। शादी फा० = आनंद, मौज। नौबत = आनंद बधावा। साँचे सदन = पक्के प्रेमियों के हृदय भवन में। आबादी फा० = चहल पहल।

भावार्थः—अधिकांश जागतिक लोग असत मार्ग में समासक्त हो रहे हैं। अधिकतर उपदेशक भी ऐसे ही चारों ओर नजर आते हैं जो स्वयं बिगड़े हुये हैं, औरों को उपदेश से क्या सुधारेंगे? ऐसे मिथ्या मतावलंबी पहले तो आरंभ में खूब उत्साह पूर्वक अपने मार्ग पर चलते दिखाई देंगे। पीछे असत मार्ग में रस न मिलने के कारण, उनका उत्साह ढीला पड़ जायेगा। रह जायगा उनका हृदय नाना प्रकार की वासनाओं से बोझिल। मानो गधे की पीठ पर बेसम्हार बोझ लदा हो। असत मार्गावलंबियों का हृदय मानों भदेश हैं। सच्चे आशिकों का हृदय दिव्य अयोध्या नगर है। बेचारे भदेश के रहने वाले नगर के सुख स्वाद को क्या जानेंगे? सच्चे आशिकों के हृदय सदन में नित्य नवायमान आनंद बधावा बजता रहता है, क्योंकि उन्हें नये नये युगल विहारानंद के अनुभव होते रहते हैं। सच्चे सदन का दर्शन कीजिये—

"शौक में जब कभी दिल आता है, आप में फिर नहीं समाता है॥
स्याम सूरत के सजन के यादों में अश्क को खूब बहाता है।
डूबि के शौक सरोवर अन्दर मोती नव रंग रहस लाता है॥
बेखबर होके उसी लज्जत में दीन औ दुनियें को भुलाता है।
'युग्म' इस भेद को छपाना भला ख्यात करने में खौफ खाता है॥

सं० सु० प्र०

॥ मूल छन्द ॥

३१—नेह निशोत दशा नाजुक निज रसिक पारखी महरम है।
जिसको जान जहान मान मद वाद साद सब बहरम है॥
वाकिफकार हुये सब ही विधि त्यागि लोक कुल कहरम है।
युगलानन्य शरन अद्भुत सुख सरसत संतत शहरम है॥ २३५॥

शब्दार्थः--निसोत (निः संयुक्त सं०)=कर्म, ज्ञान योगादि पुरुषार्थ घटित साधनों की मिलावट से विरहित। नाजुक फा०=कोमल। महरम अ०=भेद जानकार। जहान फा०=लोक। जान=जीवन। मान=प्रतिष्ठा। मद=अहंकार। दाद=प्रशंसा। बहरम=बाहरी वस्तु। वाकिफकार=जानकार। कहरम=विपत्तिजनक। सरसत=बढ़ता है। शहरम= (श्रीअयोध्या) शहर वाला।

भावार्थ:--ज्ञानयोगादि पुरुषार्थ घटित साधनों से मिश्रित नेह सुकुमार नहीं होता। विशुद्ध नेह की दशा बड़ी सुकुमार होती है। रस तत्व के मर्मी इस भेद को जानते हैं। रस मर्मी के अन्तर्जगत में अखंड रूप से दिव्य युगल विहार का रसानुभव होता रहता है। उनके लिये लौकिक जीवन, लोक प्रतिष्ठा, वाग्विलास आदि सभी लौकिक वस्तुएँ अन्तर्जगत से बाहर की चीजें हैं, अतः नीरस हैं। लौकिक समस्त विपत्ति मूलक मायिक सुखाभास को त्यागकर, जब आप अन्तर्जगत के दिव्य रस के समास्वादन में तत्पर हुये, तभी तो आप नेह रस के जानकार हो पाये हैं। ऐसे रसिकों के हृदय में निरंतर दिव्य अयोध्या नगर का लोक विलक्षण रसानन्द निरन्तर उमगता रहता है। ऐसे हृदय का चित्र दर्शन कीजिये।

"सब स्वाद सुख सलोने का सतसँग में पाया।
आनन्द सुधा सिंधु में मन मीन समाया॥
काढ़े न कढ़ेगा कभी रस स्वाद लोभाया॥
कौड़ी से भी कमतर मुझे दिन लोक देखाया।
अन्दर न रही चाह चपल चाँदनी माया॥
सब साधना आराधना धोखा नजर आया।
दिलदार की परप्रीति सुमति माँझ सोहाया॥
धन भाग गुरु सोहाग—मजा महरमी पाया।
सब तर्फ से छुड़ा के 'युगल' पास रखाया॥ सं० सु० प्र०

॥ मूल छन्द ॥

२२—लैल निहारि निहारि यार रुख माहताब बलिहारी है।
नूर पूर सद शरद अनूठी माधुरता हिय हारी है॥
आतश जान जुदाई जालिम मधुर मयूख निसारी है।
युगलानन्य हमेशे आशक चश्म चकोर दिदारी है॥ २२३॥

शब्दार्थ:--लैल अ०=रात। निहारि निहारि=गौर से देख देख कर। यार=प्रियतम श्री जानकी रमण जू। रुख=मुख। माहताब फा०=चंद्रमा। नूर=छटा। सद=उत्तम। अनूठी=(चन्द्र से भी) विलक्षण। आतश फा०=आग। जान=समझकर। जालिम=निठुर। मधुर मयूख=शीतल किरण। निसारी=छिटकाई है। चश्म=आँख। दिदारी=देखने वाला। माधुरता=क्षण क्षण में नवायमान होने वाली छवि छटा।

भावार्थः— आशिक के नयन जब प्रियतम मुखचन्द्र में चकोर बन जाते हैं तो वे क्या देखते हैं कि—शारदीय पूर्णचन्द्र अपनी षोडश कला की शोभा से संपूर्ण है। अचानक पूर्णचन्द्र की दृष्टि श्रीरामचन्द्र के मुखचन्द्र पर पड़ी। तब तो सारी रात चन्द्रमा को प्रियमुखचन्द्र देखते देखते बीत गई। इन मुखचन्द्र की क्षणक्षण में नव नवायमान छटा माधुरी पर, चन्द्रमा स्वयं न्यौछावर होगया।

अपने आशिकों के हृदय में प्रबल विरहाग्नि को प्रज्वलित देख, प्रियतम मुखचन्द्र ने अपनी शीतल ज्योत्स्ना छिटकाई, जिससे आशिक हृदय जुड़ा जाय। प्रकृतचन्द्र, तुम तो अपनी किरणों के द्वारा बिरहियों के हृदय को और भी जलाते हो। यही कारण है कि आशिक अपने नयन को प्रिय मुखचन्द्र निरंतर दर्शन करने वाले चकोर बनाये रहते हैं।

॥ मूल छन्द ॥

३३—नाजुक नेह नवीन नैन निज निशदिन नवल निवाही है।
निखिल उपाधि निरस्त सुस्त करि मस्त दुरुस्त सिपाही है॥
फिकिर फकत दिलदार दरस की जिकिर नाम चित चाही है।
युगलानन्य शरन बैठे घर आई शाहनशाही है॥२६२॥

शब्दार्थः—नाजुक=सुकुमार। निखिल=समस्त। उपाधि=विघ्न। निरस्त सं०=नष्ट कर। दुरुस्त फा०=संपूर्ण होकर। सिपाही=योद्धा। फिकिर=चिन्ता। फकत=केवल। जिकिर=जप। शाहनशाही=साम्राज्य सुख।

भावार्थः—हमारे नयन ने नवोदित सुकुमार स्नेह को दिनरात सर्वदा नये ढंग से निवाह लिया है। नयन नेह का स्वरूप है प्रियमुखचन्द्र में चकोरी वृत्ति धारण करना। पुनः हमारे नयन रूपी प्रेम दिवाने वीरयोद्धा ने अपनी चकोरी वृत्ति के मार्ग में आने वाले सारे विघ्नों को या तो नष्ट कर दिया (निरस्त) या निकम्मा (सुस्त) बना दिया। बस, नयनों को चिंता है तो एकमात्र यही कि अपने मनहरण प्राणप्यारे के दर्शन बने रहें। चित्त प्रिय नाम का निरन्तर स्मरण करते रहना चाहता है। इस वृत्ति की बदौलत हमको घर बैठे अर्थात् बिना अन्यान्य साधन श्रमों के ही साम्राज्य सुख हाथ लग गया।

॥ मूल छन्द ॥

३४—मारे हुवे इश्क तीरों दे जींदे नहीं जिवाँ दें।
कीता लखब उपाय तबीबाँ दारू दरक दिवाँ दें॥
दूनी दाह चाह दरदिल पल पैदा शुदन पिवाँ दें।
युगलानन्य शरन मरहम मक़शूद मोहब्बत छाँदें॥२८१॥

शब्दार्थः—दें (पंजाबी)=से। जींदे पं०=जीते नहीं। जिवाँ दे=जिलाने पर भी। कीता-लखब=कितने लाख। तबीबाँ फा०=चिकित्सक। दारू=दवा। दरक (दर्क अ०)=जानकारी।

दिवाँ दें (पं०)=देने पर भी । दाहचाह=विरहोत्कंठा । पल=क्षण क्षण । दरदिल=हृदय में। शुदन फा०=हुआ। पिवाँ दे (पं०)=पिलाने पर भी। मरहम=मल्हम । मक़सूद=मन चाहा। छांदे=लगाने पर भी।

भावार्थः—जिसके कलेजे में इश्कवाण चुभा, वह मनो संसार के लिये मर ही गया। वह जिलाने पर भी नहीं जीने को।

'प्रेम बान जेहि लागिया, औषधि लगत न ताहि।
सिसकि सिसकि मरि मरि जिये, उठे कराहि कराहि ॥' श्रीकबीरजी।

उसके जिलाने के लिये, रोग निवारण के लिये, चाहे जानकार मर्मी चिकित्सक उसे लाखों दवा देवें, वह पुनर्जीवित होगा नहीं।

"मरज बढ़ता ही गया, ज्यों ज्यों दवा की"

दवा पिलाने का परिणाम यह हुआ कि जलन क्षण क्षण में दुगुनी बढ़ती गई। कविश्री चाहते हैं कि मधुरा प्रीति के उद्देश्य रूप प्रियतम दर्शन ही उपयुक्त मल्हम हमारे घाव पर लगाया जाय।

"मैं लखि पाई ज्ञान, करि राख्यौ निरधारु यह।
वहई रोग निदानु, वहै वैद औषधि वही ॥"

"इश्क दा मुझ पै बान चलाया।
अजब अनोखी अदा यार की, बचन बीच नहिं आया ॥
बेधत दिल अंदर अशंक सर, नेक दरद नहिं लाया।
मदन मरोर करोर भाँति रचि, बरबस भवन भुलाया ॥
कौन कबूल करै अरजी, गरजी सब जग दरसाया।
'युगल अनन्य शरन' घायल की, आह वही बुझवाया ॥ सं० सु० प्र०

॥ मूल छन्द ॥

३५—बुलबुल सवल अमल लालन वर वाग अदाग रसीले हैं।
जीवन जस जौहर सुदुर्ज दुति, दाग दिमाग गसीले हैं॥
अदन अदाग राग रस मय फल, काम कदंब कसीले हैं।
'युगलानन्य शरन' आशक हर वखत सुरंग रँगीले हैं॥ २३१

शब्दार्थः—बुलबुल फा० अ०=फारस देश की सुप्रसिद्ध गाने वाली चिड़िया, जो यहाँ के बुलबुल से भिन्न है। सबल=सुदृढ़। अमल=व्यसन। अदाग=निर्दोष। जीवन जस=द्वि अर्थक (१) जीवन के जैसा मान कर। (२) प्राण संजीवन का सुयश। जौहर अ०=जवाहरात । दुर्ज=पिटारी। दिमाग=ध्यान,चिंतन। गसीले=पकड़े हुए। अदन सं०=भक्षण। कसीले=कषाय स्वाद का अरुचिकर । कामकदंब=कामना समूह। हरवखत=सदासर्वदा । दाग=वेदना (यथा दागे-हिज्र=विरह वेदना।

भावार्थः—इस छंद में आशिक की उपमा बुलबुल से देकर, रूपक बाँधा गया है। आशिक अपने युगल प्रियतम (लालन) की दिव्य रमणीय प्रेम वाटिका (लालन वर वाग) के निष्कलंक (अदाग) प्रौढ़ (सबल) बुलबुल हैं। वहीं का रस आस्वादी (रसीले) है। प्रश्न बुलबुल के माथे पर का यह रंगीला भाग (दागदिमाग) क्या है ? अर्थात् आशिक के सहस्रार (मस्तिष्क पद्म) का ध्यान लक्षण विशेष ?) जानते नहीं, विरह वेदना (दाग दिमाग) को अपने मस्तिक पर ग्रहण किये हुये है। यहाँ दाग दिमाग भी द्विअर्थक है, एक एक अर्थ दोनों पक्ष में लगेगा। उसी विरह वेदना को अपना जीवन मान पर, उसी की रस पिटारी माथे पर रख ली है। अथवा श्रीप्राण संजीवन युगल ललन जू के सुयश रूपी रत्न पिटारी माथे पर है, उसी का प्रकाश है। जैसे बुलबुल पक कर रँगाया हुआ (राग) रसीला (रसमय) फल खाता है, उसी भाँति राग़ (स्नेहासक्ति) और युगल विहार का रसीला फल ही इन आशिकों का आहार है। बुलबुल मीठे छोड़ कसैले फल नहीं खाते। उसी भाँति लौकिक कामना समूह इन आशिकों के लिये कसैले फलवत् त्याज्य हैं। कविश्री की मान्यता में रंगीन बुलबुल पक्षी की भाँति आशिक भी अनुराग के पक्के रंग में सदा अनुरंगित रहते हैं।

तात्पर्य यह कि आशिक का जीवन प्रेममय होता है। विरहाविष्ट होकर माशूक का गुणगान करना इनके जीवन का अवलंब होता है। भोग समुदाय इन्हें अरुचिकर प्रतीत होता है। ये केवल प्रेम रस के आस्वादी होते हैं। निरंतर प्रेम की मौज में मस्त रहते हैं।

अगले छन्द में नेह नगर की नेह नीति और प्रीति रीति पढ़िये।

॥ मूल छन्द ॥

३६—दिल जानी दर खाक पाक मानिंद अबीर लगाये हैं।
शरम सकोच पोच दूरी करि आतश योग जगाये हैं ॥
जिस वजह से खुशी यार की सोई जतन जमाये हैं।
'युगलानन्य' विश्व से फारिग् फंद फ्याल भगाये है ॥ २३० ॥

शब्दार्थः—दिलजानी = प्राणसंजीवन। दर फा० = द्वारा। खाक फा० = धूलि। पाक फा० = पवित्र। मानिंद फा०=समान। शर्म फा०=लज्जा। सकोच=लाज के मारे सिकुड़ जाना। पोच (पूच फा०) = क्षुद्र, निकृष्ट। आतश = विरहाग। फारिग् अ० = अलग। फंद = छलकपट का जाल। फ्याल = व्यावहारिक कार्य।

भावार्थः—आशिक अन्यत्र के केशर कर्पूर मलय आदि का सुगन्धित अनुलेप अपने माथे में लगाना नापसंद करते हैं। उन्हें अपने प्राण संजीवन लाडिले लाल के द्वार का रज चाहिये। माशूक द्वारे का रज इश्क धर्मशास्त्र में परम पावन माना गया है। माथे पर अबीर की शोभा सजेगा।

'रज सिर धरि हिय नैनन्हि लावहिं। रघुवर मिलन सरिस सुख पावहिं ॥"

लोक लाज कुल कानि आशिकों की दृष्टि में क्षुद्र एवं त्याज्य हैं।

"हमारे दृगन बसे रघुवीर ।
लोक लाज कुल की मरजादा, तब तजि भये फकीर ॥"
"लोक लाज कुल कानि तबै लौं, जौलौं प्रीति रसीन फसीगर ।
'प्रेम सखी' बलि झगरो कौन है, यह तन बेच्यो अवध छयल कर ॥"

आशिक विरहाग के प्रयोग में लगे रहना पसंद करते हैं। हमारे प्यारे जिस बात से प्रसन्न होंगे, उसी को पूरा करने के यत्न में लगे रहेंगे ।

"भला रघुनंदन राजी रहना ।
मैं तो तुम्हारी खुशी में खुशी हौं, और नहीं कछु चहना ॥"

आशिक संसार के छलकपट पूर्ण व्यवहार से हटकर, अपनी स्थिति का देश अलग बनाये रखते हैं ।

नेह नगर का अटपटा न्याय भी आशिकों को रुचता है। अगले छन्द में पढ़ें ।

॥ मूल छंद ॥

३७—बधिर अंध पंगू गूंगे सम करत लगत नहिं देरी ।
छन में रंक राव पल अंतर विरह देत हिय हेरी ॥
अटपट चाल हाल महरम किस तरह हूजिये येरी ।
'युगलानन्य शरन' कहिये क्या पड़ी प्रीत पग बेरी ॥ ६५

शब्दार्थ:—बधिर=बहरा । अंध=अंधा । पंगू=पैरों का लूंज । गूंगा=बोलने में असमर्थ । रंक=दरिद्र । राव=राजा । महरम=जानकार ॥ पग=पैर । बेरी=कैदी भागने न पावे, इस उद्देश्य से पैरों में पहनाने वाले लोहे के कड़े या जंजीर ।

भावार्थ:—इश्क की लीला बड़ी विचित्र है। कभी तो कान रहते बहरा, कभी आँख रहते अंधा, कभी पैर रहते लंगड़ा लूला, कभी वाचा शक्ति रहते गूंगा बना देने में इन्हें देर नहीं लगती है। (भाव समाधि लगने पर, बाह्य इन्द्रियाँ निष्क्रिय हो जाती हैं।)

विरह व्याकुल दशा में प्रियतम की क्षणिक झाँकी में इतना अपरिमित आनन्द मिलता है कि मानों तीनों लोक की सम्पत्ति एकत्र हाथ लग गई हो। कभी प्रियतम की अदर्शन दशा में आशिक अपने को चौदहों भुवन में सबसे बड़ा कंगला मानने लगता है ।

जिन इश्कदेव की ऐसी अटपटी लीला है, उनके मर्म को कोई समझना भी चाहे तो कैसे समझे ? हमारे मन में आया कि चलो छोड़ो इन अटपटे का देश। अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग पकायेंगे। किन्तु इश्क देव ने हमारे पैरों में बेड़ी डाल कर, कैद कर लिया है। इनसे पिंड छुड़ाना कठिन है।

"लगन लगी नहि छूटै राम सो।
कोटि जतन कोई भरमावे, प्रीति गाँठ नहि खूटै ।।
अगन जरावौ जल मैं बोरो, सर्वसु मेरो कोइ लूटै ।
टूक टूक तन के करि डारे, तऊ न हरि सों टूटै ।।
लागी मोरी राम पिया सों, जगत भलै सब रूठै ।
मैं प्यासी रस प्रेम सुधा की, छाछ जगत कौन घूटै ।।
प्रेम कटारी मनुवा छेद्यो, कसक सकल तन ऊठै ।
जाके लागी सोई जानै, मूरुख भावै झूठै ।।
ऐसी प्रीत करै सोइ विरहिन, गुरु दूती जब तूठै ।
'कृपा निवास' लगी रघुवर सों, चरन कमल रस लूटै ।।"

।। मूल छन्द ।।

३८—भली बुरी कोइ कोट कहे पर अपने सुख में उरझे हैं ।
गली मिली संकेत कुंज कल, तहँ वसि फेर न सुरझे हैं ।।
कली अनूप खिली दिल अन्दर तेहि सुवास लहि मुरझे हैं ।
युगलानन्य शरन पल बिछुरत हो रहे पुरझे पुरझे हैं ।।४३।।

शब्दार्थः—कोट=करोड़ोंवार । संकेत कुंज=प्रेमी प्रेमिका का पूर्व निश्चित गुप्त मिलन स्थान, सहेट । सुरझे=सुलझना, फँसाव से छूटना । सुवास=सुगंध । मुरझे (मूर्च्छे)=वेहोश हो गये है। पुरझे=पुरजे पुरजे, टुकड़े टुकड़े ।

भावार्थः—प्रेमदीवाने अनेकों प्रकार की लोकनिंदा स्तुति (भली बुरी) की परवा नहीं करते । प्रेमानन्द मगन वाले को सुनने की छुट्टी भी तो मिले ! अपने हृदय देश के ही प्रियतम मिलन के संकेत कुंज में पहुँचने वाली गोप्य गली मिल गई है। संकेत कुंज में पहुँचने पर तथा रहने पर वहाँ प्रियतम के रूपजाल में ऐसे उलझ गये कि वहाँ से सुलझकर छूट निकलना कठिन हो गया । प्रियतम दर्शन से हृदय की आनन्दकली प्रफुल्लित हो गयी ।

"तुलसी मिटै न मोहतम, किये कोटि गुन ग्राम ।
हृदय कमल फूले नहीं, बिनु रवि कुल रवि राम ।।"

आनन्दकली का आमोद (सुगन्ध) आघ्राणकर, मैं तो गन्धोन्मादित हो गया । बाहर से देखने वाले समझते हैं कि मैं मूर्च्छादशा में प्राप्त होगया हूँ । प्रियतम दर्शन में ऐसी आसक्ति होगई है कि क्षणमात्र के वियोग में कलेजे टूक टूक होने लगते हैं ।

॥ मूल छन्द ॥

३९—चरचा चित्त चलाक दफे करि चिंतामनि गुन भीने हैं।
परचा प्रीत पुनीत पाय पाखंड पंच तजि दीने हैं॥
अवध किशोर स्वरूप रंग रस अंतर नित लयलीने हैं।
'युगलानन्य शरन' दोनों दुख रूप वासना छीने हैं॥ ४२॥

शब्दार्थः—चरचा=संकल्प विकल्प। चलाक=चंचल। दफे अ०=जमीन में गाड़ कर। परचा फा०=परिचय, परख। पुनीत प्रीत=निस्स्वार्थ प्रीति। पाखंड=ढोंग,ढकोसला। पंच—पांच भौतिक जगत का। लयलीने=ध्यान मग्न। रंग रस=प्रेमानन्द। दोनों=लोक परलोक की। वासना=सुखेच्छा। छीने=क्षीण हो गई।

भावार्थः—इश्क हासिल होने पर मेरे चंचल चित्त की संकल्प विकल्प वाली वृत्ति मिट गई, मानो भूमि में गाड़ दी गई हो। प्रियतम के गुणगण, चिंतामनि के समान, सभी मनवांछित सुख प्रदायक हैं। "चिंतामनि गुन ग्राम राम के"। उन्हीं गुणगणों के चिंतन से हृदय प्रेमरस से भीजा रहता है। निष्काम प्रेम के सुख स्वाद की परख मिल जाने पर, अब मैंने पाँच भौतिक जगत व्यापी एवं पांच भौतिक शरीर के लिये अभ्यस्त छल पाखंड को अनायास छोड़ दिया है। कारण यह है प्रियतम मेरी रुचि क्षण क्षण जोगाते रहते हैं। तब प्रयोजनीय वस्तुओं के जुटाने के निमित्त पाखंड क्यों करूँ ? श्रीअवधेश राजदुलारेजू के रूप दर्शन जन्य प्रेमानन्द में मेरा हृदय सतत तन्मय रहता है।

स्वसुख वासना चाहे इस लोक की हो या परलोक की, दोनों ही के परिणाम दुखदायक हैं, एवं इश्क देश के लिए कलंक कालिमा है। अतः सोच समझकर इन्हें नष्टप्राय (छीने) कर दिया है।

* चौथा अध्याय *

❁ इश्क सहचर विरह ❁

अब हम द्वितीय इश्क खंड का चौथा अध्याय प्रारंभ करते हैं। इसमें आशिकों की विरह दशा का वर्णन होगा। इश्क के साथ विरह की स्थिति किसी न किसी रूप में रहती है। यथा संयोग दशा में भी मान, प्रेम वैचित्ती आदि विरह दशा होती है। वियोग पूर्व राग का तथा प्रियतम प्रवास का है। अतः विरह को हम इश्क का सहचर मानते हैं। अगले छन्द में आप विरही आशिकों की प्रशंसा पढ़िये।

॥ मूल छन्द ॥

४०—सीताराम रूप आशक अलबेले अधिक अदागी हैं।
भीताराम गहे गरिमा गुनसागर मगन सुभागी हैं॥

जीता काम काल काहिल कुल काफिर रहित विरागी हैं।
युगलानन्य शरन' अन्तर घट जरत विरह की आगी है॥ १०॥

शब्दार्थः- रूप आशक=सौन्दर्य में आसक्तचित्त। अलबेले=अनोखे। अदागी फा०=निष्कलंक। भीताराम (भीत+आराम)=भोग विलास से भयभीत, अतः निर्लिप्त। गरिमा=महत्व। मगन=डूबे हुये। सुभागी=बड़े भाग्यवान्। काहिल=आलसी। काहिलकाल=कलिकाल। कुल काम=सभी कामनाएँ एवं कामदि विकार। काफिर=नास्तिक। काफिर रहित=नास्तिकता के बिना, अर्थात् प्रभु में पूर्ण विश्वासी। अन्तर घट=हृदय।

भावार्थः- युगल अवध विहारी जू की रूप माधुरी में आसक्तचित्त आशिक बड़े अनूठे होते हैं। जिनके चरण रज के क्षणिक संस्पर्श से कलंकित अहल्या भी निष्कलंक बन गई, उनके सम्पूर्ण स्वरूप को सतत हृदय में रखने वालों में कलंक कहाँ? वह तो ऐसे निष्कलंक (अधिक अदागी) हैं कि कलंक के कलंक को भी मिटा दें। ये लौकिक शोक परिणामी भोगों से बड़े भयभीत रहते हैं। क्योंकि?

"जहाँ काम तहँ राम नहिं जहाँ राम नहिं काम।
तुलसी कबहुँ न रहि सकें, रवि रजनी इक ठाम॥"
"रमा विलास राम अनुरागी। तजत वमन इव जन बड़ भागी॥"
"जिन्ह रघुबीर अनुरागे। तिन्ह सब भोग रोग सम त्यागे॥"

यद्यपि ये आशिक सदैव नीचानुसन्धान धारण किये रहते हैं, तौभी इनमें बड़प्पन आप ही आकर इकट्ठे हो जाते हैं। अपने निर्गुणी प्रेमास्पद में भी गुण ही गुण देखना, प्रेमियों का सहज स्वभाव होता है। अनन्त कल्याण गुणगण निलय श्री जानकी रमण के गुणामृत सिन्धु में आपके आशिक क्यों न मगन रहेंगे? श्री राघवेश गुण चिंतक से बढ़कर सौभाग्यवान् होगा ही कौन?

"होहिं सहस्र दस सारद सेषा। करहिं कलप केटिक भरि लेखा॥
मोर भाग्य राउर गुन गाथा। कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा॥"

आशिकों के हृदय में सदैव श्री सीताकान्त जू की सुछबि वसती रहती है। उस प्रभाव से कामादिक विकार स्वयं पराजित होकर भाग जाते हैं।

"तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मच्छर मद माना॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटिभाथा॥"

आशिकों के हृदय वाली प्रेम उमंग में आलस्य प्रमाद स्वममेव दह जाते हैं। इन्हें इष्ट में इतनी अधिक प्रीति प्रतीत होती है कि उनके हृदय में कभी नास्तिकता टिक ही नहीं सकती। श्रीराम रूप में राग होने से प्रकृति विलास से स्वतः विराग हो जाता है।

ऐसे निर्मल निष्कलंक विशुद्ध हृदय में प्रियतम से साक्षात् मिलन के लिये तीव्र छटपटी जगना स्वाभाविक है। अतः ऊपर से भले आप स्वस्थ दीखें, परन्तु इनके हृदय के अभ्यन्तर विरहोत्कंठा की ज्वाला धधकती रहती है।

"सखी री पिय पाये बिनु सुख कौन ?
सुनत सुजस सत वचन बिसद तउ, मिटन न दिल दुखदौन ॥
मिलन रहित रस उदय होय किमि, सब साधन गुन गौन ।
विषय विलास कुवास सुमन सम, सदा समुझ विष वौन ॥
लागत अंग सरस सीतल प्रिय, सियपिय परसित पौन ।
युगल अनन्य शरन प्रीतम हित, धरि रहिहौं मन मौन ॥"

सं० सु० प्र०

विरह विना आशिकी दुश्वार है । यदि विरह प्रगट न हो तो येन केन प्रकारेण विरह उपजाना अनिवार्य आवश्यक है ।

"प्रथम विरह बल सब विधि होय विशेष । अष्टयाम सुखसागर फुरे अशेष ॥
विरह बिथा बिनु बालम मिलन न होत । याते विशद विरह गुन रहस उदोत ॥
जो चाहो चित पेखन प्रीतम प्रान । तो जिय विरह सजावो तजि सब सान ॥
विरही संत समागम सुमिरन नाम । युगलानन्य मिलन वर बीज अनाम ॥"

श्री भावना रहस्य विलास ।

विरह बढ़े बिन प्रान प्रिय, परा प्रीति दुशवार ।
येन केन विधि विरह हित, कटि कसिये एकतार ॥
विरह पराग पुनीत मलि, दिल दरपन करु साफ़ ।
जिहि महँ मुख महवूब दुति, दिव्य भव्य औ साफ़ ॥
विरह वनस्पति बीच ही, बसत अनल परमेश ।
संघरपन अनुछन करत, प्रगटत नहि शकलेश ॥
विरह विना बहु साधना, सेमर सुमन समान ।
ऊपर अरुन अजूब फल, भीतर भुवा उड़ान ॥

विरह परत्व प्रबोध ।

अगले छन्द में निरन्तर बनी रहने वाली विरह व्यथा को पावसकालीन बाढ़ से उमगी हुई वेगवती तरंगिणी के साथ सांग रूपक बाँधा गया है ।

॥ मूल छन्द ॥

४१—दरया दरद हमेशे दर दिल खिल के खूब बहा है ।
पलपल प्रेम मौज के मानिंद आनंद कंद महा है ॥
उभय कूल प्रतिकूल मूल तरु सहज विनाश लहा है ।
युगलानन्य शरन नूतन नौ प्रीतम मिलन गहा है ॥ ११० ॥

शब्दार्थः—दरया (दर्या फा०)=नदी। दरद (दर्द फा०)=विरह व्यथा। दरदिल=हृदय में। खिल के=चौड़ी धार बनाकर। मौज। द्विअर्थक)=तरंग, आनंद। मानिंद फा०=समान। कंद=बादल। उभय=दोनों। कूल=नदी तट। प्रतिकूल=प्रेम विरोधी। मूल=जड़। तरु=वृक्ष। सहज=अनायास, विना परिश्रम के। विनाश लहा है=ढहकर बह गये। नूतन=नई अतः मजबूत। नौ=नाव। गहा=पकड़ी है।

भावार्थः—श्रीराघव विरहिनी के सुकोमल हृदय देश में निरन्तर बनी रहने वाली विरहव्यथा ऐसी लगती है, मानों बाढ़ से उमगी हुई बरसाती नदी चौड़ा पाट बना कर वेग से बह रही हो। उस विरहव्यथा के साथ हृदय में एक प्रकार का विलक्षण सुख स्वाद ऐसा उथल पुथल मचाये हुये है, मानों उस विरह नदी प्रवाह में ऊँची ऊँची लहरें उठ रही हों। साथ साथ बाहर से भी बादल के समान महान सुख (जल) मूसलाधार बरस रहा है। आप पूछें कि दर्द के साथ सुख स्वाद कैसा ? तो सुनिये—

"अति विचित्र गति प्रेम की, कह्यो कौन पै जाय।
दुखही में सुख पाइये, ज्यों मिरचा मुख खाय।।"
"जो सुख स्वाद विरह सेवन बिच विरही जन जिय छावे।
सो मुद दमक लोक लोकपपति पास न पाव समावे।।" यही ग्रंथ

विरह नदी के इस पार किनारे किनारे मायिक सुखेच्छा रूपी विशाल वृक्ष गण खड़े हैं। उसपार के तट पर युगलविहार देश में स्वसुख चाहरूपी वृक्ष हैं। दोनों ही प्रकार के वृक्ष इश्क के बाधक (प्रतिकूल) हैं। विरह व्यथा के तीव्र प्रवाह में ये उभय तटवर्ती प्रतिकूल वृक्षगण जड़ सहित आप ही आप उखड़कर बह गये। इनके हटाने का अन्य कोई श्रम (सहज) न करना पड़ा। अब प्रश्न यह रह गया कि विरह नदी के पर पार (दिव्यविहार देश) में रहने वाले प्राण प्रियतम से मिलन कैसे हो ? इतने ही में समझ में आ गया कि श्रीयुगलकिशोर जू की अनन्य शरणागति ही नवीन सुदृढ़ नाव है। इसी को पकड़ कर पार पहुँच जायेंगे। यहाँ कविश्री की छाप भी सार्थक है। शरणागत को कृपा का भरोसा होता है। कृपा ही नाव है।

अगले छंद में विरह को बहुविध उपद्रव प्रगट करने वाले रोग से उपमित किया गया है।

॥ मूल छन्द ॥

४२—विरह व्याध व्यापे जाके मन तन मिलि वचन समावे।
मोह प्रमाद मूर्च्छादिक दुख दारुन दरद दहावे॥
विह्वल बैन चैन चरचा चलदल सम चपल चलावे।
युगलानन्य शरन घायल हिय हाय हमशे हलावै॥ ६८॥

शब्दार्थः—व्याध (व्याधि०)=रोग। मोह प्रमाद मूर्च्छादिक=विरह की दश दशाएँ हैं—१-लालसा (मिलनोत्कंठा), २-उद्वेग (व्याकुलता), ३-जागर्या (निद्रा का क्षय), ४-तानव (शरीर-

कृश हो जाना), ५-जड़िमा (हिताहित ज्ञान शून्यता), ६-वैयग्र (व्यग्रता), ७-व्याधि (रोग), ८-उन्माद (पागलपन), ९-मोह (चित्त की विपरीत गति), और १०-मृति (मरणप्राय दशा)। दारुण=घोर। दरद=व्यथा, पीड़ा। दहावै=हृदय को जलाती है। चैन=सुख। चर्चा=वार्तालाप। चलदल=पीपर पात। चपल=चंचल। घायल=जख्मी।

भावार्थः—विरह रोग का समारंभ मन में होता है। मन में भरपूर होकर न अँटने पर, रोग प्रभाव शरीर पर प्रगट होते हैं। अन्त में वचन में भी रोग व्याप जाता है।

सर्व प्रथम विरहाग हृदय को जलाती (दहावे) है। तत्पश्चात् हृदय को विदीर्ण करने वाली (दारुण) विरह पीड़ा उत्पन्न होती है। पीछे बढ़ते बढ़ते विरह की क्रमशः शास्त्रोक्त दश दशाएँ प्रगट होती हैं ? (इनकी सूची शब्दार्थ प्रकरण में ऊपर दे आये हैं) वाणी में व्याकुलता मिल जाने से शान्ति पाने की चर्चा भी करता है, तो पीपर पत्ते के समान चंचल। अर्थात् क्षण क्षण में प्रसंग बदले वाली बेतुकी बातें बकेगा। श्री आचार्य चरण का अनुभव है कि हाय प्यारे ! हाय प्राण-सर्वस्व !! आदि की रटन विरही के हृदय को मसोसती रहती है।

अगले छन्द में विरह की उग्र दशा का वर्णन है। उग्रावस्था में अपनी कमजोरी पीछे पैर खींचती है।

॥ मूल छन्द ॥

४३—हिम्मत हरसायत हित हिमरितु जिगर जाड़ डर भारी है।
आतश आह चाह चित चमके झमके कहर करारी है॥
शाल साल बेहाल हमेशे दरपेशे खर ख्वारी है।
युगलानन्य शरन प्रीतम बिन भेंटे हाय हजारी है॥३॥

शब्दार्थः- हिम्मत=उत्साह। हर सायत (साअत अ०)=प्रत्येक समय। जिगर फा०=हृदय। आतश फा०=आग। कहर (कह्र अ०)=आफत। करारी (कर्क सं०)=घोर। झमके=छाया है। शाल=दुशाला, ऊनी कामदार चादर। साल=खटकता है। बेहाल=व्याकुल। हमेशे=निरंतर। दरपेशे फा०=सामने उपस्थित। खर फा०=महान। ख्वारी फा०=दुर्दशा। हाय=कष्ट। जाड़ (जाड्य सं०)=जड़ता, ठंढक।

भावार्थः—पूर्वराग विह्वला मिथिला कुमारियों के मनोनीत रघुवर वर अगहन मास की हिम ऋतु में ही आकर मिले थे। अतः पूर्वराग जन्य स्वस्वरूप की उद्भ्रान्त दशा में ऐसा लगा कि आने दो हिमर्तु। यह पति मिलाने वाली प्यारी ऋतु अपने मनभावन से मुझे अवश्य मिला देगी। अतः हिमर्तु को न्योता देकर बुलाने का उत्साह उमड़ पड़ा। स्वागत है हिमर्तु ! आइये। निरन्तर (हरसायत) बने रहिये। आपके समय काल में ही मेरे प्यारे मुझसे स्वयं आकर मिलेंगे।

पुनः हिमर्तु के समागम में एक बड़े भय की संभावना प्रतीत हुई। ऊपर ठंढी लगे तो कोई हर्ज नहीं, कहीं हृदय में ठंढक व्यापी और प्रियतम मिलन उत्साह ही ठंढा पड़ गया तो गजब ! सब गुड़ गोबर हो जायगा। ऐसा न हो कि—

'अड़ता जाड़ विषम उर लागो । गयहु न मज्जन पाव अभागी ॥'

हिमर्तु के स्वागतोत्साह का एक कारण और है। चित्त में प्रियतम मिलन की तीव्र चाह ही विरहाग बनकर धधक रही है। मुख से आह निकल रही है। तीव्र विरह विपत्ति मची हुई है। हिम ऋतु के प्रभाव से हो सकता है विरहाग का संताप कुछ कम पड़ जाय।

पुन. सोचा आने दो हिमऋतु। ठंढी व्यापेगी तो दुशाले ओढ़ लूँगी। अरे! यह क्या सोच लिया? विरहिनी के लिए दुशाले का श्रृङ्गार! दुशाला तो हृदय में सालेगा। क्या करूँ? कुछ करते नहीं बनता। महान् दुर्दशा सामने उपस्थित है। प्रियतम मिलन के अभाव में हजारों संकट माथे पर गरज रहे हैं।

अगले छंद में विरह की ललित दशा का वर्णन है। ललित का लक्षण—

शुभ स्वरूप को ध्यान अरु, शुभ विचार मन आव।
विषयों से वैराग्य यह, ललित दशा को भाव॥

— श्री हरिजन प्रेम तरंग पृ० २३।

॥ मूल छन्द ॥

४४—होके बेपरवाह हमेशे चाह आह दिल दरते हैं।
खोके ख्याल खराब खाक नापाक ताक नहि करते हैं॥
बोके विरह बीज विह्वल वपु बानी धीर न धरते हैं।
युगलानन्य अशंक अंक बिनु अंतक से नहि डरते हैं॥ ९९॥

शब्दार्थः—बेपरवाह (बेपर्वा फा०)=निर्भय। हमेशे (हमेशः फा०)=निरंतर। चाह=लोक सुख की इच्छा। दाह=विरह संताप। दरते=चूर चूर करते। खोके=नष्ट करके। ख्याल (खयाल अ०)=विचार। खाक फा०=धूलिवत् तुच्छ। नापाक फा०=अपावन। ताक=खोजना, विह्वल=व्याकुल। वपु=शरीर। अशंक=निडर। अंक बिनु=निश्शेष रूपसे। अंतक सं०=मृत्यु।

भावार्थः—हम तो इश्क की मस्ती में हैं। हमारे लोक सुख मिट जायँ, परवाह नहीं। हमारे हृदय में विरह वाली आह की चक्की चल रही है। उसी में लोक परलोक की सभी चाहनाओं को पीसकर नष्ट कर रहे हैं। विषय चिंतन आदि बुरे विचार को मिटा रहे हैं। यहाँ की सारी भोग वस्तुएँ धूलि के समान तुच्छ एवं अपावन प्रतीत होती हैं। अतः उनकी ओर आँख उठाकर देखते भी नहीं। अपने हृदय में विरह के बीज बोते हैं। विरह की अंकुरावस्था से ही सारे शरीर में व्याकुलता बढ़ने लगती है। कुछ प्रियतम चर्चा करना चाहते हैं, तो धैर्य धारण करने की शक्ति न होने के कारण, कर भी नहीं सकते, क्योंकि कंठावरोध के मारे वाणी रुक जाती है। यह विरह की उप्त दशा है।

श्री आचार्य चरण का अनुभव है कि विरह की तीव्र दशा में मरने का भय मिट जाता है। काल से भी भय नहीं होता।

"मौत यह मेरी नहीं मेरी कजा की मौत है।
क्यों डरूँ इस से कि फिर मर कर नहीं मरना मुझे॥"

अगले छन्द में विरह का प्रभाव दिखाया गया है।

॥ मूल छन्द ॥

४५–विरह आँच जब साँच लगे तब काँच न चित रहि जावे।
पाँच प्रपंच असंच होत पल पाव न बीच बतावे॥
खाँच खचाय कहौं नेही घट फेर न फूटन पावे।
युगलानन्य शरन सीतावर कृपा–सुधा सरसावे॥ ७२

शब्दार्थः—आँच=ताप। साँच=सही सही। काँच=कच्चा, कमजोर। पाँच प्रपंच=पंच भौतिक दृश्य जगत (का भान)। असंच=मिट जाता है। पलपाव=क्षण का चतुर्थांश। बीच=विलंब से तात्पर्य। खाँच खचाय=रेखा खींचकर, प्रण पूर्वक। (नेही) घट द्विअर्थक=१-हृदय, २-घड़ा। सरसावे=रस टिकता है।

भावार्थः—साधनावस्था में आशिक का दृढ़ प्रतीति हीन हृदय मिट्टी के कच्चे घड़े के समान कमजोर होता है। विरह ताप मानों मिट्टी के बर्तन पकाने वाला अवा है। सच्चे विरह की सही सही आँच जब उस कच्चे हृदय घट में लगती है, तब तो वह हृदय घट ऐसा परिपक्व हो जाता है कि उसका कोई भी अंश कच्चा नहीं रह जाता। परिपक्व हृदय में प्रियतम छवि बस जाती है। आशिक रूप समाधि में मगन हो जाता है। पंच भौतिक जगत का भान उसके लिये मिट जाता है। अथवा जगत (असंच=असाँच) मिथ्या प्रतीत होने लगता है। इस दृश्य परिवर्तन में क्षणांश की भी देर नहीं लगती। श्री आचार्य चरण तीन रेखा खींचकर प्रण पूर्वक आश्वासन देते हैं कि उस परिपक्व हृदय वाले आशिक का हृदय घट फिर कभी फूटने को नहीं, मिट्टी का पका घड़ा भले फूट जाय। हृदय का प्रियतम प्रीति प्रतीति से विरहित होना ही, फूटना है। आशिकों के ऐसे ही परिपक्व हृदय घट में श्री जानकी रमण जू की कृपा रूपी सुधा भरपूर होती है।

आवश्यकता है विरह ज्वाला जगाने की उपाय ?

"विरह बिसाहे नहिं मिले, सतगुरु दत्त विचारु।
ताते तजि साधन सकल, सजु सतगुरु पद प्यारु॥
बार बार सतगुरु सुमुख, शब्द सुने तजि जाल।
तब उपजे वर विरह रति, पोषन करन निहाल॥
संत समागम गुरु दया, सियवर कृपा सुपाय।
विशद विरह बाढ़त हिये, नासत रुग समुदाय॥ श्रीप्रेम परत्व प्रभा दोहावली।

मूल छन्दः— ४६–विरही विरह गिरह के माफिक गाढी गाँठ न दूजी।
शबोरोज चित चोंज अनूठी नेह अँगूठी पूँजी॥

चाह अथाह जाह—आली तर वेहतर शान असूजी।
युगलानन्य शरन दरजा इह क्या जाने खल मूजी ॥ ११५ ॥

शब्दार्थः—गिरह = गाँठ। गाढ़ी = पक्की, न खुलने वाली। माफिक (मुआफिक फा०) = समान। शवो रोज = रात दिन। चोज = चमत्कारपूर्ण उक्ति। जाह = सत्कार। आलीजाह = महामान्य। वेहतर = उससे भी उत्तम। शान = श्रेष्टता। असूजी = अपार। मूजी = आततायी, जालिम।

शब्दार्थः—विरहिनी विरह के प्रभाव से अपने प्रियतम के साथ दाम्पत्य सम्बन्ध का सुदृढ़ गठबन्धन कर लेती है। ऐसी वज्र गाँठ अन्यत्र दुर्लभ है। विरहिनी के चित्त में उसकी संचित धनराशि (पूंजी) होती है, उसकी नेह अँगूठी। सुहागिनी अपने दाहिने हाथ के अँगूठे में एक रत्न का कटोरी नुमा शीशा जड़ा छल्ला पहनती है। यह अँगूठी आरसी कहाती है। लज्जावती कुलवधू लोक लाज से अपने प्रियतम की मुख छवि प्रत्यक्ष न देख पावे, तो इसी आरसी में उनके मुख प्रतिविंव देखा करती है। विरहिनी भी इसी नेह अँगूठी में अपने प्राण प्यारे की छवि निहारा करती है। न देखे, तो प्राण नहीं रहेंगे। इस नेह अँगूठी से भी बढ़कर (वेहतर) प्रशंसनीय (आली जाह) और अधिक (असूजी) महत्व (शान) है उसको प्रियतम से प्रत्यक्ष मिलन की चाह में। मिलने पर किस प्रकार अपने प्रियतम से ऐकान्तिक प्रेम संभाषण करेगी, इसके निमित्त दिन रात (शवो रोज) उसके हृदय में उक्ति वैचित्रो की स्फुरणा होती रहती है। विरहिनी के इस स्पृहनीय पद के महत्व को दुष्ट प्रकृति वाले आततायी क्या समझेंगे? भोगासक्त होकर अपना सर्वनाश स्वयं कर रहे हैं। आततायी नहीं तो क्या हैं?

"सखी री केहि विधि विरह बुझावों, प्रीतम दरश न पावो।
शिथिल रहत अँग अँग विरह वश, दरद भरी अकुलावों।
औचक उठि वेहोश दीवानी पिय पिय कहि विलखावों॥
कबहुँ अचानक हाय हिये करि, जीवत मृतक कहावों।
कहुँ सुधि पाय झरोखन झाँकति पथिकन ते बतरावों॥
ना जाने कौने विरमायो इहि गुनि हिय पछतावों।
युगल अनन्य धारि धीरज कहुँ ललन ललित गुन गावों॥" सं० सु० प्र०

॥ मूल छंद ॥

४७—दर दिल दरद जरद तन अजहद गरद समान हुवा है।
पानिप परद शरद दुनियाँ, दुचिताई अरद कुँवा है॥
प्रीतम पीर धीर नहि हरगिज जगमग विरह धुवाँ है।
युगलानन्य शरन वेखुद अब नहि कछु साप दुवा है॥ २८६

शब्दार्थः—दरदिल = हृदय के भीतर। दरद = विरह वेदना। जरद = पीला। अजहद फा० = अत्यधिक

गरद फा०=धूल । पानिप=शोभा, रमणीयता । परद=धोखा । दुचिताई=दुविधा । छरद=पुष्पों से ढका धोखे में डालने वाला कूआँ । हरगिज फा०=कभी नहीं । वेखुद फा०=निस्पृह । दुवा फा०=आशीर्वाद ।

भावार्थः—विरहिनी स्वात्म दशा का वर्णन करती है। मेरे हृदय के भीतर विरह की उत्कट पीड़ा भरी है। शरीर विवर्ण होकर पीला पड़ गया है। उस पर भी अपना शरीर धूल के समान तुच्छ मालूम पड़ता है। लौकिक शारदीय शोभा के समान रमणीयता भ्रामक (परद) है। शरद के वाद हिमऋतु अपनी ठंढक लेकर आवेगी और मेरी विरह ज्वाला ही ठंढीकर देगी। अर्थात् भोगासक्त होने पर इश्क मंद तो पड़ ही जायगा। श्रेय पारलौकिक या पारमार्थिक कल्याण प्रयास को कहते हैं। प्रेय है विषयाकर्षण। लौकिक रमणीयता, श्रेय और प्रेय के बीच दुविधा उत्पन्न करने वाली है। इसकी उपमा देते हैं कि फूलों से ढके हुए कूएँ का मुँह देखकर लोग उसको पुष्प शय्या समझकर, जैसे उस पर बैठेंगे कि कूएँ में गिर जायँगे। उसी प्रकार भोगों की रमणी-यता में पड़े कि पतन हुआ। विरहिनी भोगों से बचकर चली है। इसी से उसे प्रियतम मिलन की विरह वेदना इतनी बढ़ गई है कि धैर्य तो कभी होता ही नहीं। विरह की ज्वाला जगमगा रही है। अब संसार से ऐसी अचाह हो रही है कि न तो किसी पर अप्रसन्न होकर, उसे श्राप देना है, न किसी पर रीझकर उसे आशीर्वाद देना है।

॥ मूल छन्द ॥

४९—आह शाह के मुल्क रहन चित चहन चवाव बहा है।
ज्वाला जहर जहान विलच्छन दर दिल दून दहा है ॥
किस से कहूँ हाल यह अपना चुप करि जुलुम सहा है।
युगलानन्य शरन लाशक आशक आराम कहाँ है ॥१६८॥

शब्दार्थः—आह=विरह व्यथा। शाह=वादशाह, नृपति। मुल्क=देश, राष्ट्र। चवाव=लोक निन्दा। जहर=विष। जहान फा०=लोक, संसार। विलच्छन=भिन्न प्रकार का। दरदिल=हृदय में। दून=दुगुणा। दहा है=जलाता है। चुपकरि=मौन पूर्वक। जुलुम (जुल्म अ०)=अत्याचार, कमजोर को सताना। लाशक=निस्सन्देह। आराम=शान्ति, चैन।

भावार्थः—विरह के प्रति मेरी आसक्ति बढ़ गई है। यह देखकर लोक में निन्दा फैल गई है कि अजी, इस विरहिनी की दयनीय दशा पर हम लोगों को तरस आता है। हम लोग इसके कष्ट मिटावें भी तो कैसे? विरहिनी तो स्वयं विरह महीप के देश में ही बसना चाहती है। लोगो! तुम क्या समझो? मेरा कष्ट लौकिक होता, तो तुम्हारे लौकिक उपाय से मिट भी जाता। यह लोक विलक्षण विष के समान असह्य विरह ज्वाला हृदय को दिन दूने, रात चौगुने रूप से जला रही है। परन्तु मेरी दशा मुक्त भोगी बिना समझे कौन, जिससे कहने जाऊँ? लोगो, तुम्हारे जी में आवे कहा करो। मुझे विरह देव के इस जुल्म को चुपचाप सहने दो। अजी, आशिकों के भाग्य में चैन कहाँ?

॥ मूल छन्द ॥

४९—विरह भूप के कलित कंज कर विरहिन सुमति बिकानी।
दाम दून दिल दरद दई उन लेत न रंच सकानी॥
बैठी खोय खलक, ख्वारी लखि खौफ न कोन लुकानी।
युगलानन्य शरन पाई पिय प्रीति प्रतीति पुरानी॥६७

शब्दार्थः—विरह भूप=महाराज विरहदेव। उत्तर रामचरित नामक खंड काव्य रचयिता महाकवि भवभूति ने विरह जन्य करुणा को ही रसराज माना है। उनकी दृष्टि से विरह रसों का भूप है ही। कलित=आदरणीय। कंजकर=हस्त कमल। सुमति=सुबुद्धि। रंच=तनक भी। सकानी=हिचकी। खलक (खल्क अ०)=संसार। ख्वारी फा०=हानि। खौफ=भय। कोन-लुकानी=डर कर घर के कोने में छिपने नहीं गई। पुरानी=सनातन, अनादि सिद्ध।

भावार्थः—महाराज विरहदेवके, मनोज्ञ कर कमलों में विरहिनी ने अपनी सुबुद्धि बेच दी। विरहदेव मुफ्तखोर नहीं है कि विना दाम दिये उसकी सुबुद्धि ले लें। उन ने मुनाशिव से दुगुणी कीमत दी। मोल में दी पहले की अपेक्षा दुगुनी हृदय पीड़ा। विरहिनी ने भी लेने में आनाकानी नहीं की। उस हृदय वेदना के मारे वह सारे लोक सुखों से हाथ धो बैठी है। इससे उसे कोई ऐसा भय नहीं हुआ कि घर के कोने में डर के मारे छिपने जाय। वह तो इस से भी बढ़कर कष्ट-कर दारुण यंत्रणा झेलने को कमर कसे बैठी हैं। आचार्यचरण कहते हैं कि विरहदेव की कृपा से मुझे एक बहुत बड़ी पुरानी खोई हुई सम्पत्ति मिल गई। वह सम्पत्ति है प्रियतम श्री अवधेश-लाडिलेलालजू के प्रति हमारी अनादि सिद्ध सनातन प्रीति प्रतीति।

विरहदेव ऐसे जालिम हैं कि विरहिनी की सुबुद्धि लेकर भी उन्हें संतोष नहीं। इन्हें राजस्व (राजकर) भी चाहिये अलग से। राजकर में क्या लीजियेगा, देव? अगले छंद में पढ़िये न।

॥ मूल छन्द ॥

५०—विरह आह सतशाह जाह आलीतर तख्त बिछावे।
नेही नजरबंद हरदम करवाय कलाम कहावे॥
दिये विगैर शीश कौड़ी कोउ भाँति न छूट न पावे।
युगलानन्य शरन कोशिश हित कृपा वकील बनावे॥६८

शब्दार्थः—विरह आह=विरह व्यथा। सत=सैकड़ों। शाह फा०=राजा। जाह फा०=प्रतिष्ठित पद। आली अ०=उच्च। तख्त=राज्यासन। कलाम अ०=करार। विगैर=विना। कौड़ी=राजस्व, राजकर।

भावार्थः—विरह देव तो राजा मात्र है, किन्तु भगवती विरह व्यथादेवी का पद तो सैकड़ो नरपालों से भी ऊँचा है। यह विरह महाराज से भी ऊँचा शानदार राजसिंहासन अपने बैठने को

विछ्वाती है। साधारण प्रजा से राज्यकर वसूल करते हैं इनके कर्मचारीगण, परन्तु धन कुबेरों से ये स्वयं कर उगाहती है। श्रीराम स्नेही को सनेहधन से मालोमाल देखकर सर्व प्रथम इन्हीं की गिरफ्तारी हुई। सामने हाजिर होने पर, इनसे राजस्व देने के लिये कौल करार करने के लिये वाध्य किया गया। करार जब तक नहीं करे, इसे नजरबंद रखो। राजकर (कौड़ी) में इसे अपना शिर ही देने को विवश किया गया। जब तक शीश न दे, नजरबंदी नहीं हटेगी। महाराज श्री कहते हैं कि सनेही ने छूटनेके लिये, अपनी ओरसे कानूनी वहस करनेके निमित्त, एक वकील रखा। इस दयालु वकील ने सनेही के साथ सहानुभूति पूर्वक बिना फीस के वहस करना कबूल किया। वकील साहव का नाम जान लीजिये। जरूरत हो, आप भी इन्हीं को वकील बनाइयेगा। आजकल स्त्री जाति भी ऊँचे ऊँचे राजपद पर बैठी हैं। वकावल भी करती है। आपके वकील का नाम है "भगवत्कृपा"।

"साहिवी विरह व्यथा बाँकी। लूटत लोक लाज लायकपन धन न बचत बाँकी।
भिरे रन सनमुख गति काकी। मारत भाव दाव से हिलिमिलि अजब कला याकी।
पिये प्रीतम मद छवि छाकी। होश न रहन देत निज पर की, ज्ञान ध्यान ढाँकी।
चलावत आह तीर ताकी। युगलानन्य शरन घायल दिल करत रहत टाँकी॥" सं०सु०प्र०

॥ मूल छन्द ॥

५१—जो सुख स्वाद विरह सेवन बिच विरही जन जिय छावे।
सो मुद दमक लोक लोकपपति पास न पाव समावे॥
परम ईश अवधेश तासु तर तंत्र संत श्रुति गावे।
युगलानन्य शरन छन छन अनुराग सिंधु लहरावे॥ ७३॥

शब्दार्थः- जिय=हृदय। छावे=व्यापता है। दमक=चमत्कार। लोक=देश। लोकपपति=लोकपाल। पाव=चतुर्थांश। समावे=प्रवेश करता है। परम ईश=अचिन्त्य ऐश्वर्य सम्पन्न। अवधेश=श्रीकौशलेन्द्र जू। तरतंत्र=पराधीन।

भावार्थः ऐसी बात नहीं कि दिव्य विरहमें केवल कष्ट ही कष्ट का अनुभव हो। विरहावस्था में प्रियतम की परमानन्द दायिनी मधुरस्मृति अधिक प्रगाढ़ हो जाती है। उस स्मरणदशा में प्रियतम की प्रीति रीति का अनुभव होता है। इस अनुभूति में विलक्षण सुख स्वाद भरा रहता है। लोकपालों के यहाँ स्वर्गाधिक भोग सुख भरपूर रहते हैं सही, परन्तु कहाँ आपात रमणीय वैषयिक सुख, कहाँ भगवत्प्रीति जन्य निरतिशय सुस्वादु परमानन्द! आकाश पाताल का अन्तर! इसीसे तो कहते हैं कि विरहियों के सुख स्वाद का चतुर्थांश भी इन लोकपालों को मयस्सर नहीं होने को। विरहानन्द में सबसे विलक्षण चमत्कार (दमक) भरा है। सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि श्रुति सम्मत असीम ऐश्वर्य सम्पन्न सर्वतंत्र स्वतंत्र श्री अयोध्याधिपति सीतारमण जू ही विरही आशिक के वशीभूत (तासुतरतंत्र) हो जाते हैं। उसके हाथ बिना मोल बिक जाते हैं। देखा न आप ने

विरह का प्रभाव ? परमप्राप्य है न विरह ? दूसरा बड़ा लाभ यह है कि प्रेम की परमोच्चावस्था जो अनुराग है, वह समुद्र वत अपार अथाह बनकर दिव्यानन्द की लहरियों के साथ, विरही के हृदय देश में आलोड़ित होता रहता है।

"बहुत दिवस बीते सुधि पाये, नव नेह मेह झर लाये।
बहत विरह वर बात घात सम, विह्वलता दरसाये।
सुरपति धनु उर उदित मदन चित, चौगुन चाप चढ़ाये।
चातक रसनि रटनि पिय पिय धुनि, ध्यान ज्ञान बिसराये।
युगल अनन्य शरन नाचत मन, मधुर मयूर रमाये॥ सं० सु० प्र०

मूल छन्दः— ५२–अनलहुँ ते अति प्रबल विरह ज्वर रैन दिवस दिल दाहै।
बारह मास निवास खास उर पल भर जुदा न जा है।
ऐसी दशा समे प्रीतम सुधि लेत न चख चित चाहै।
युगलानन्य शरन एतेहु पर विरहिनि विरह सराहै॥ १४६

शब्दार्थः—अनलहुँ ते = आग से भी अधिक। अतिप्रबल = बढ़ चढ़कर प्रचंड। ज्वर = आँच, ताप। दिल = हृदय। दाहै = जलाता रहता है। बारहमास = नित्यनिरन्तर। खास निवास = अपना निजी घर। जुदा फा० = अलग। जा है = जाता है। समे = समय, अवसर पर। चख = नयन। सराहै = प्रशंसा करती है, अर्थात् पसंद करती है।

भावार्थः—लौकिक आग की आँच से कहीं अधिक बढ़ चढ़ कर प्रचंड होती है विरहाग। यह विरहिनीके हृदय को दिन रात सदा सर्वदा जलाती रहती है। इस विरहाग का खाश निवास स्थान होता है विरही-हृदय। यहाँ वह बारह महीने, तीसों दिन, निरन्तर छाई रहती है। कोई क्षण ऐसा नहीं जिसमें वह विरही हृदय से पृथक होवे। इस स्थिति में विरहिनी के नयन मन अपने प्राण संजीवन लाडिले लाल श्री जानकी बल्लभ जू से मिलने को छटपटाते रहते हैं। परन्तु वह निठुरराज शिरताज विरहिनी की सुधि भी नहीं लेता। (यह विरहदशा का उन्मत्त उद्गार हैं) सच्ची बात तो यह है "को रघुवीर सरिस संसारा। सील सनेह निवाहनि हारा॥") तो क्या विरह यंत्रणा असह्य होने पर प्यारे के निठुरपन देख विरहिनी विरह को त्याग देगी ? नहीं जी, वह तो विरह ही की सराहना करती है। और चाहती है कि प्यारे की स्मृति कराने वाली यह दशा सदैव बनी रही।

"विरह की अगिया बेगि बुझैहो हो।
सरस सुयोग बूंद बरसा कै, सुगति सजन सुझैहो हो।
युगल अनन्य सनेह समर सनमुख कब मोहि जुझै हो॥" सं० सु० प्र०

"काहे नहि लेत खबरिया हो, दशरथ नृप लाल।
पहिलेइ किये करार कृपा करि, अब क्यों करत जबरिया हो।

जीवन जान अधार एक तू, दूजो नाहि उवरिया हो।
जैसे दिये दिमाग वाग सुख, सुन्दर वास नगरिया हो।
वैसेहि युगल अनन्य ओर पिय, चितवहु नेह नजरिया हो।।"वहीं

मूल छन्दः— ५३—क्यों वेनाहक समुझाते हो मुझे मरम तो जानो।
हम तो रोग शोग से संयुत विरह वियोग पछानो।
जो अच्छे करने की खाहिश तो दिलवर को आनो।।
युगलानन्य शरन सवही विधि अव तो असल दिवानो।।५८।।

शब्दार्थः—बेनाहक अ० फा०=अकारण, व्यर्थ। मरम=यथार्थ बात। रोग=शारीरिक अस्वास्थ्य। शोग=मानसिक वेचैनी। विरह=विछुड़ना। वियोग=सयोग सुख वंचित। पछानो=पहचानो। खाहिश फा०=इच्छा। असल=सच्चे। दिवानो (दीवानः फा०)=पागल, आशिक।

भावार्थ—प्रियतम विरह में अधीर होकर, विलख विलख कर, रोने वाली, तड़पने वाली, विरहिनी को कोई सुहृदसखी सान्त्वना देने आई है। उसके प्रति विरहिनी कहती है, "सखि, तुमने मेरे हृदय की व्यथा का भेद तो जाना नहीं, आई हो सात्त्वना देने। तुम्हारे हितोपदेश वृथा हो रहे हैं। मेरी यथार्थ वस्तु स्थिति समझना चाहो, तो लो मैं बताये देती हूँ। मेरे शरीर में जो रोग लक्षण देख रही हो, जो मानसिक बेचैनी लख रही हो, उसका निमित्त कोई लौकिक आधि व्याधि नहीं है। यदि तुमने कभी विरह भोगा हो, तो लो पहचानो। मेरी यह सारी दुर्दशाएँ इसलिये हो रही हैं कि मेरे प्राण रंजन प्रियतम श्री रघुलाल जू मुझ से विछुड़ गये हैं। उनके संयोग सुख से यह पतिप्राणा वंचित हो रही है। यदि तुम्हें मेरे प्रति बड़ी सहानुभूति हो रही हो, और मुझे स्वस्थ करना चाहती हो, तो जाओ, मेरे चितचोर श्री अवधकिशोर को ढूढ़ लाओ। मैं क्या करूँ? वस्तुतः विरह वावरी हो रही हूँ। मेरे मन, मति, चित्त मेरे कावू में नहीं है। सव उसी मन हरण लाल के पास चले गये हैं।

"मोहि देहु मिलाय छवि निधि मोरी सखियाँ।
तपित रहत आकुल पलपल पर, पिय भेंटे बिनु अखियाँ।
हौं अवला अति हीन खीन इमि, जिमि पंखी विनु पँखियाँ।।
भाई दशा ज्यों नशा महामद मधुर मोद मन मखियाँ।
युगल अनन्य शरन आशा गहि, जियत रहत असु रखियाँ।।"

श्री रूप रहस्य पदावली, १३१।

मूल छन्दः— ५४—मानस मरज तरज के ताईं दवा तवीव बतावे।
चढ़े चौगुनो हरज न रंचक वंचक मरम न पावे।।
दरज दाह दिल आह दरद दिलदार अराम करावे।
युगलानन्य वरज औषध सब, अरज औषधी खावे।। ११२

शब्दार्थः—मानस=मन में व्याप्त । मरज़ अ०=बीमारी। तरज (तर्ज अ०)=लक्षण। ताईं=अनुरूप। तबीब अ०=वैद्य। हरज=कम। रंचक=तनक भी। वंचक=ठग। मरम=तत्त्व। दरज (दरज़ अ०) =दुर्गति, बुरी दशा। दाह=जलन। आह फा०=हृदय से निकलने वाला आर्तनाद। दरद=पीड़ा। दिलदार=चित्तचोर। बरज=रोक कर। अरज (अर्ज अ०)=प्रार्थना।

भावार्थः—विरह व्यथा मन में व्यापती है। तन में भी रोग लक्षण प्रगट होते हैं। लौकिक रोग के पारखी वैद्य ने बाह्य रोग लक्षणों को देखकर, निदान किये बिना अटकल से दवा बताई है। उससे विरह तनक भी कम न हुआ, प्रत्युत् पहले की अपेक्षा चौगुना बढ़ गया है। पैसे ठगने वाले लौकिक वैद्य बेचारे इस विरह रोग के भेद क्या जानें ? अतः उनका रोग निदान गलत हुआ। मेरी दुर्दशा, मेरे हृदय की तपनि, मेरी मनोवेदना, सबों को चंगा करने वाला एकही व्यक्ति है। वह है, हमारा मनरंजन श्रीजाककी जीवन प्राण प्यारा। अतः मैंने सारी दवाओं की तिलांजलि दे दी है। हमारी महौषधि है अपनें प्राणनाथ से गिरगिराकर आर्त प्रार्थना करना। वह रीझ गया, द्रवित हो गया, तो मेरे सारे कष्ट काफूर हो जायेंगे।

॥ मूल छन्द ॥

५५—सिय वल्लभ से जाय हकीकत कहो कोई अब मेरी।
मनि बिनु फनि जलहीन मीन त्यों दशा हमारी घेरी ॥
जो आवे दिलदार यार तो उपजे मोद घनेरी।
युगलानन्य शरन तेरे हित राह रैन दिन हेरी ॥९॥

शब्दार्थः- हकीकत अ०=यथार्थ दशा। फनि=सर्प। मीन=मछली। दिलदार=चितचोर। यार=प्राण प्यारा। मोद=आन्तरिक सुख। घनेरी=निरतिशय। हित=वास्ते। हेरी=प्रतीक्षा करती रहती हूँ।

भावार्थः-यदि कोई मेरी सच्ची हितैषिणी है, मेरे प्रति हार्दिक सहानुभूति रखने वाली है, तो वह शीघ्रातिशीघ्र श्रीजानकीजीवन हृदयेश के सुमधुर दरबार में जाकर, मेरी यथार्थ दशा उनसे निवेदन कर दे। मेरा संदेश इस प्रकार सुनाना—मेरे नयन सुखद ! तुम्हारे बिना हमारी ठीक वही दशा हो रही है जो मणि से बिरहित होने पर सर्प की व्याकुलता संपूर्ण होती है। जल के बिना मछली तड़प तड़प कर प्राण देने को प्रस्तुत हो जाती है। ठीक वही दशा हमारी भी है। सखि, अब कुछ और भाता नहीं। वही जीवन सर्वस्व मनरंजन आकर गले लगावे, तो हृदय को निस्सीम सुख होवे। मेरे दुःख निवारण का कोई दूसरा उपाय नहीं है।

सखि, प्राणनाथ से कहना कि हे प्राणवल्लभ यह विरहिनी आपके आगमन पथ पर, पलक पावड़े बिछाकर, दिन रात आपही की प्रतीक्षा में आतुर हो रही है।

"कहाँ अब विलम लगाये रसीले।
देखे बिन मुखमाह दाह दिल कित छवि रस बरसाये छबीले।

दश दिशि तम गम सम भासत मोहि, काहे न द्रुति दरसाये रंगीले।
युगल अनन्य अली विरहिन हिय जानि बूझ तरसाये हठीले। सं० सु० प्र०

॥ मूल छन्द ॥

५६—अतिहि निठुरता धारि कवन विधि बसत न हृदय हुलासे।
निकट रहे दिलजान न बोले हाय कहो दुख कासे॥
श्रुति सत कहत रहत सब अंतर इह मत साँच न भासे।
युगलानन्य विरहिनी तलफत निश दिन नैन पियासे॥१४५॥

शब्दार्थः—हुलासे=आनंदित होता है। दिलजान=अन्तर्यामी। श्रुति=वेद। सतकहत=प्रामाणिक सत्यसार वादी। भासे=प्रतीत होता है। पियासे=दर्शन प्यास।

भावार्थः—आनन्द का संवेदन करने वाला हृदय है। आनन्दसिंधु सर्व सुखदाता श्रीजानकीरमणजू, सम्पूर्ण आनन्द का खजाना लेकर, अन्तर्यामी रूप से, हृदय में ही रहते हैं। तब हृदय आनन्द का अनुभव क्यों नहीं करता है? उस करुणा वरुणालय में निठुरता का लेश भी नहीं सुना गया है! न जाने केवल हम विरहिनी के लिये ही निठुरता कहाँ से माँग लाया है? अन्तर्यामी क्या नहीं जानता कि विरहिनी उससे प्रेम वार्तालाप करने के लिये छटपटा रही है? दूर होता तो संतोष था कि निकट आने पर, मीठी मीठी प्रेमपूर्ण बातों का शर्वत पिलायेगा। वह तो सबसे समीप, हृदय देश में ही रहता है। एक स्नेहातुरा पतिप्राणा पतिव्रता से उसका हृदय रंजन पतिदेव ही रूठ बैठे, निकट रहते हुए भी बोलना बन्द कर दे, तो उस सती के हृदय पर कितनी गहरी चोट लगेगी? सहृदय अनुमान कर सकते हैं। हम अपनी मर्मव्यथा कह भी कौन समझेगी? श्रुति वचन ध्रुव सत्य है। उसके कथन के अनुसार आनन्दरूप ब्रह्म घट घट का वासी है। मेरा प्यारा ऐसा स्नेहशील है कि हृदय में होता, तो मुझसे अवश्य बोलता। श्रुति वचन में और प्राण प्यारे के स्नेहशील स्वभाव में संगति नहीं बैठती। तो क्या हमारे प्राणेश के स्नेहशील होने में संदेह है? नहीं नहीं, हो सकता है श्रुति वचन ही साँच न हो। प्यारे की प्रीति में तो मेरी सुदृढ़ प्रतीति है। परम आस्तिक श्रीआचार्य चरण को श्रुति वचन में अविश्वास नहीं है। उपर्युक्त उद्गार भावुकता पूर्ण हृदय से निसृत विरह उद्भ्रान्त मानसिक दशा का प्रेमप्रलाप है।

"विन दरस परस सुख कैसे, धन हीन मनोरथ जैसे।
सुनि सुनि श्रवन सुगुन सुन्दर वर, उर अकुलात अवै से।
रुचत न चित चरचा सजनी सुख दुख सम सहत सुरै से।
साँची लगन लाल जानत नहि, समुझि परत बुधि लै से।
युगल अनन्य शरन नेही की, सुधि कछु करिये समै से॥ सं० सु० प्र०

अगले छन्द में विरह की धर्षित दशा का उदाहरण पढ़िये।

मूल छन्दः— ५७—सरस सुभाव सुनी कोमल कल सो कहँ ललन भुलाई ?
सीखी कहाँ कठोर कला इह कसक विहीन कलाई ॥
ऐसी उचित नहीं तुमको पिय तिय सन जोर जनाई।
युगलानन्य शरन नाता वश कही कछुक रुख पाई ॥ ६७४

शब्दार्थः—सरस=मधुर। कोमल=नवनीत समान कोमल एवं द्रवणशील। कल=मन भावन। ललन=लाडिले। कसक=सहानुभूति। कलाई=चतुराई। रुख=श्रवणोत्सुकता।

भावार्थः—मन भावन लाडिले लाल जू! मैंने वेदपुराण तथा आपके मिलापवंत संतों के द्वारा सुना है कि आपका शील सनेह सम्पन्न मधुर स्वभाव वड़ा ही द्रवणशील सुकुमार है। किन्तु मेरे प्रति आपका व्यवहार उस वहुश्रुत सुमधुर स्वभाव के अनुरूप नहीं हो रहा है। ऐसी निर्मम निठुराई एवं सौहार्द शून्य चातुर्य आप में स्वभाव सिद्ध नहीं है। यह आगन्तुक दोष किसी हृदयहीन से सीख आये होंगे। प्राणधन, अपनी आश्रिता अवला के प्रति इतना जोर जुलम आपके लिये कथमपि उचित नहीं। इस उपालंभ में ढिठाई जरूर हैं, परन्तु हमने देखा कि आप वड़े चाव से उलाहना सुन रहे हैं। तो हम भी दाम्पत्य सम्वन्ध के हिसाव से कह गये। अनौचित्य क्षमा करेंगे ही। क्षमा सिन्धु जो हैं।

"निठुर पन प्यारे उचित न लागे।
तुम विन छिन छिन छैल छवीले मिलन मनोरथ जागे॥
दृग देखत ही दरद दिवानी दिल दुशमन दिन लागे।
युगल अनन्य अपनी लखि, केहि कारन तृन त्यागे॥" सं० सु० प्र०

मूल छन्दः— ५८—कहर के ताव विचारि वहुत बेताव हुआ दिल मेरा।
लाजवाव बेहोश जोश वश फहम रहम मुख फेरा॥
हाल ज्वाल पैठी अंदर दिल बैठी कर उर डेरा।
युगलानन्य शरन बेशक फन फकर कहकहा घेरा॥ ७१॥

शब्दार्थः—कहर (कह्र अ०)=कोप। ताव=तेज। बेताव=व्याकुल। लाजवाव=कुछ कहते नहीं बने। वेहोश=संज्ञाशून्य, अचेत। जोश=उद्वेग। फहम=मिथ्या ज्ञान। रहम फा०= करुणा, दया। हाल=उसी समय, तत्काल। ज्वाल=चिन्ताग्नि। बेशक=निस्सन्देह। फकरपन= साधुता। कहकहा=ठहाके की हँसी।

भावार्थः—नासमझी के कारण मुझे लगा कि मेरे अपराधों पर मेरे प्राणेश मेरे ऊपर कुपित हो गये हैं। श्रीमुख परकोप का तेज देख कर, मेरा हृदय भयाकुल हो गया। उस समय मुझे अकवक कुछ नहीं फुर रही थी। उस घवड़ाहट भरे उद्वेग (जोश वश) दशा में मेरी समझ में यह भी गलती हुई कि मेरे प्रियतम ने मुझ पर कृपा करने से मुख मोड़ लिया है। तत्काल मेरे हृदय में चिन्ताग्नि प्रविष्ट हो गई, और वहीं स्थायी रूप से स्थित हो गई अर्थात् चिंता दीर्घ व्यापिनी बन गई। उस समय मेरी भोलापन भरी साधुता पर, चारों ओर के प्रेमी समाज ठठाकर हंसने लगे। हंसी का कारण

भी था। "सिसुपन ते पितु मातु बंधु गुरु सेवक सचिव सखाऊ। कहत राम विधु वदन रिसोहैं, सपनेहु लखेउ न काऊ॥ श्रीविनय। प्रेमी अपने प्रेमास्पद के अवगुण देखने में अन्धा होता है। मैं अपने सर्वथा निर्दोष एवं हँस मुख स्वभाव वाले प्यारे में ही कोप और अकृपा देखने लगा। साधु के वेष पराये अवगुण भी नहीं देखते और मैं साधु होकर अपने ही आत्मीय में, प्राणनाथ में अवगुण देखने लगा। इससे बढ़कर हँसी की बात और क्या होगी ? कहकहा मचे क्यों नहीं ?

विरहावस्था की दिव्योन्माद दशा में विरहिनी अनेक प्रकार के प्रलाप करती है। उनके निरर्थक वचनों के रस शास्त्र में दश भेद माने गये हैं। १- प्रजल्प २- परिजल्प, ३- विजल्प, ४- उज्जल्प, ५- संजल्प, ६- अविजल्प, ७- अभिजल्प, ८- प्रतिजल्प, और १०- सुजल्प। स्थानाभाव के कारण सवों के लक्षण और उदाहरण नहीं दिये जा रहे हैं। ऊपर वाले छन्द में कविश्री की प्रजल्पना है।

मूल छन्दः— ५१—मीच चाह चित बीच निरंतर करत विशेष प्रचारी।
तऊ नहीं मारत हारत उह विरह बलाय विचारी॥
विष खाने खातिर राचत जब छीन लेन भ्रम डारी।
युगलानन्य शरन विरहिनि क्यों जीवे बिन बनवारी॥ ६४॥

शब्दार्थः—मीच=मृत्यु। प्रचारी=प्रगट होना। बलाय=आफत। खातिर=लिये, वास्ते। राचत=तयारी करती हूं। बनवारी (बनमाली)=बनमाला धारी।

भावार्थः—असह्य विरह व्यथा में प्रियतम दर्शन में आशातीत विलंब देख कर विरहिनी के चित्त में मरने का विचार बराबर आता रहता है। औरों के पास मौत बिना बुलाये आती है। यहाँ आरत प्रार्थना पर भी नहीं आती है। सोचती होगी विरह की आफत में कौन उलझने जाय ? जब मर जाने के लिये विरहिनी विष पीने की तयारी करती है, तब विरह विरहिनी के मन में भ्रम उत्पन्न कर विष का कटोरा छीन लेता है। अब आप ही लोग बतावें कि विरहिनी अपने बनमाला धारी अवध विहारी लाडिले प्राणनाथ के बिना किस प्रकार प्राणधारण करे ?

"बालम हौ बरती हूँ विषम बयानन
जानत जिय जाहि कीजिये किमि, निज गति निकट अयानन।
नेह निधान मृदुल मोहन पन, कठिन न मन दरम्यानन।
युगल अनन्य अली आतुर उर, रुचि चित बीच, पयानन॥" सं० सु० प्र०

॥ मूल छन्द ॥

६०—दिल बहलाय रहों काहू विधि गाथा गुनन बिचारी।
रैन रंज रोवत सोवत बहु बसन भिजोवत वारी॥
नींद नीच कर जोरि निहोरत सपन सनेह सम्हारी।
युगलानन्य शरन आवे क्यों वैरिन वैर निहारी॥ ६३॥

शब्दार्थः—गाथा गुनन=गुणात्मक चारुचरित। विचारी=चिंतन करके। रैन=रात। रंज=व्यथा। खोवत=व्यर्थ गँवाती हूँ। वसन=वस्त्र। वारी=आँसुओं से। सपन सनेह=प्रियतम के स्वप्न दर्शन के लोभ वश स्वप्न से भी स्नेह। सम्हारी=सजाकर। बैर=निंद और विरह में पारस्परिक बैर है।

भावार्थः—विरहिनी दिन का समय, अपने प्राणाधार कौशल कुमार के गुणात्मक चरित्र चिंतन करते करते किसी प्रकार काट भी लेती है, परन्तु रात हो जाती है पहाड़। ऐसा लगता कि 'जुग समय भयउ सिराति न राती" रात भर विरहावे में फूट फूट कर रोती हूँ। रोने ही रोने में सारी रात गँवा देती हूँ। आसुओं से कटि वस्त्र, उपरना, बिछावन सभी तरवतर हो जाते हैं। तमोगुणी निद्रा है तो नीच, परन्तु गर्ज पड़ने पर नीचों के भी पाँव पकड़ने पड़ते हैं। निंद को हाथ जोड़ती हूँ कि तू थोड़ी देर के लिये आ जा। निद्रावस्था में अपने चितचोर के क्षणिक स्वप्न दर्शन भी हो जायँ, तो कुछ काल सुख जीवन बन जायेगा। प्रियतम स्वप्न दर्शन लालच से स्वप्न से भी सनेह हो गया है। सज्जन तो हाथ जोड़ते ही प्रसन्न हो जाते हैं, परन्तु दुर्जन क्यों मानने लगे? निंद और विरह में ठहरा पारस्परिक बैर। जहाँ निंद वहाँ विरह कहाँ? जहाँ विरह वहाँ निंद नहीं।

"रजनी रे पिय बिन कैसे हू नहि बीतत।
पल पल पीर प्रमाद याद नहिं, रूप रंग रस रीतत।
युगल अनन्य ललित लालन लहि, मदन जंग जिय जीतत॥ सं० सु० प्र०

मूल छन्दः— ९१—शहर बजार बीच व्याकुल दिल होत विपिन लै जावों।
कानन कठिन उदास रास रस रंच न पेखन पावों॥
कौन ठौर कहिये प्रीतम जहँ जाय जीव विरभावों।
युगलानन्य शरन पल पल प्रति शोक समुद्र समावों॥ ९२॥

शब्दार्थः—विपिन=वन। कानन=वन। कठिन=कठोर स्वभाव का। उदास=शोकान्वित। रास (राशि सं०)=ढेर। रस=आनन्द। रंच=तनक। पेखन=देखने। ठौर=जगह। जीव=मन। विरमावों=लगाऊँ। समावों=डूबती हूँ।

भावार्थः—कानों को प्रियतम चर्चा सुनने का चस्का लगा है। नयनों में प्रियतम छवि दर्शनों की बेचैनी भरी हैं। शहर बाजार में इस लालच में जाती हूँ कि कहीं मेरा सैरपसंद प्यारा अवध शहर में मनोविनोद के लिये निकल आया हो, तो दर्शनों से नयन शीतल करूँगी। परन्तु वहाँ का वातावरण बिल्कुल विपरीत देखने में आया। श्री प्रमोद वन में मन बहलाने गई। किन्तु वहाँ भी कहाँ सुख? प्रियतम शून्य वन लगा कि काट खाने को दौड़ा आ रहा है। सुना था वहाँ नित्य रास होता है, किन्तु मुझ विरहिनी के भाग्य में कहाँ रास की किंचित भी झलक? मेरे जीवन धन, प्राण प्रियतम, अब आप ही बताइये कि हम कहाँ जाकर मनको रमावें? (प्राननाथ तुम बिन जग माही। मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥" श्री आचार्यचरण कहते हैं कि प्राणप्यारे के बिना क्षण प्रतिक्षण शोक रूपी समुद्र में डूबता रहता हूँ।

—: मूल छन्द :—

६२—खान पान बतलान मान में हान प्रान पहिचाना है।
गान तान विष खान भान भव शान गुमान भुलाना है॥
विरह वान खरसान वेधि उर इश्क शहर गुजराना है।
युगलानन्य शरन सतगुरु सतसंग मिले मसताना है॥८३॥

शब्दार्थः—बतलान=गपशप। मान=आदर,सत्कार। हान=नाश। भवभान=वाह्य जगत की चेतना। शान अ०=श्रेष्टता। गुमान=गर्व। खरसान=अति तीक्ष्ण। मसताना=प्रेमोन्मत्त।

भावार्थः—श्री युगलकिशोर की अनन्य शरणागति एवं सतगुरु सत्संग प्राप्त होने पर, मैं प्रेमोन्मत्त हो गया हूँ। खान पान का सुख, गपशप का मनोविनोद, मान बड़ाई आदि सभी प्राकृतिक विलास, प्राण तुल्य इश्क के नाशक हैं। विषय सम्बन्धी गान तान तो विष की खान के समान है ही। वाह्य जगत की चेतना से लेकर, अपने महत्व के गौरव तक सभी भूल जाना चाहती हूँ। अब एक ही लालसा रह गई है कि विरह का तीक्ष्णवाण अपने कलेजे में चुभोकर, अपने जीवन का शेष भाग (इश्क) नेह नगर में गुजरा देवें। कालक्षेप की सर्वोत्तम विधि यही है।

'विरह वान उर वेधि विशद पद पास में। गिरह खुले जड़ अजड़ कठिन अनयास में।
शरा सखुन भुलवाय धर्म पर धारिये। हरि हाँ, पुन्यापुन्य समूह नाम पर वारिये॥
श्री प्रेम प्रकाश, ११०।

॥ मूल छन्द ॥

६३—हाय हमेशे हरदम निकसे विकसे वदन पियासे हैं।
प्याला शौक जौक जालिम का कहर मेहर सम भासे हैं॥
आब अजूव खूब प्रीतम रुख सो सुख सहज प्रकासे है।
युगलानन्य सजीवन जीवन वेगम हृदय हुलासे है॥ २२०॥

शब्दार्थः—हाय=हाय प्यारे! हमेशे (हमेशः फा०)=निरंतर। हरदम=प्रत्येक श्वास के साथ। विकसे=आनन्द से खिलना। पिया से=प्राण प्यारे के दर्शनों से। प्याला=प्रेम मदिरा कटोरा। शौक=लगन। जौक=रसानुभव। जालिम=जुल्मकर्त्ता। कहर (कह्र अ०)=कोप। मेहर (मेह्र फा०)=कृपा। भासे है=प्रतीत हो रहे हैं। आब=कान्ति। अजूव (अजूबः अ०)=अनोखा। खूब फा०=सुन्दर। रुख फा०=मुख। सजीवन जीवन=प्राणों को जिलाने वाला। वेगम फा०, अ०=निश्चिन्त। हुलासे=आनन्दित।

भावार्थः-आचार्य चरण का आदेश है कि आशिक को उचित है कि विरहाविष्ट होकर हाय प्यारे! हाय प्यारे!! की रटन पपीहे की भाँति लगावे। यथा—

'हाय हमेशे रहे यार के वास्ते। जाय जीव विन पीव सोच नहि नास ते॥

जलद मिलो महबूब चलन की वार में। हरि हाँ, सुयश होय भरिपूर सुजन टकसार में॥

श्री प्रेमप्रकाश, २३२।

विरहिनी के मुखपर बराबर उदासी छाई रहती है। उनका निश्चय होता है कि मुख कमल प्रफुल्लित (विकसे वदन) तभी होगा, जब प्रियतम दर्शन (पिया से) रूपी भानु के उदय होंगे। (विरहिनी की दृष्टि से) जुलमी हृदयेश के सुस्वाद लगन (जौक शौक) का मद भरा प्याला पीकर मतवाली हो गई हूँ। उस नशे की खुमारी में उनका कोप भी कृपा ही के रूप में भासित होता है। इस प्रकार विरह जगाने का सुमधुर फल यह हुआ कि—

'खुले सखि आज हमारे भाग।
आये मन भाये छाये सुख, दरसाये अनुराग।
निवछावर करिहौं प्रीतम पर, लोक लाज जग वाग॥
विरह व्यथा बीती बहु दिन की, सरस्यो सरस सोहाग।
युगल अनन्य अली सफलित सब, जप तप व्रत सुरयाग॥' सं० सु० प्र०

प्राण प्यारे के श्री मुखपर अत्यन्त अनोखी कान्ति छा रही है। विरह की बदौलत उनके दर्शन का सुख अनायास (सहज) प्राप्त हो रहा है। (प्रकास) है। प्राण सर्वस्व तो हमारे प्राणों को अनुप्राणित (सजीवन जीवन) करने वाले हैं। उनके दर्शनों से हृदय में आनन्दोल्लास (हुलासे) उठ रहा है। लौकिक आनन्द में दुःख शोक का भी कुछ न कुछ सम्मिश्रण होता है, किन्तु दर्शनानन्द शोक की सन्धि से बिल्कुल विरहित (बेगम) है।

आशिकों के विरह दो प्रकार के होते हैं। एक पूर्वराग वाला, अर्थात् साक्षात् दर्शनों के पूर्व वाली मिलनोत्कंठा। दूसरा प्रकार होता है दर्शनों के पश्चात् विहृत दशा अर्थात् मिलन के वाद की बिछुड़न। प्रस्तुत विरह प्रकरण में अब तक पूर्वराग वाले विरह का वर्णन हो रहा था। आगे आप विहृत दशा वाले विरह के उदाहरण पढ़ेंगे।

॥ मूल छन्द ॥

६४—जब से चाह चढ़ी चितवनि चित बीच और ना भावे।
बैठत उठत चलत सोवत दिलदार याद ही आवे॥
वातिल वात नहीं तिल भर दिलवर उर प्रीति सोहावै।
युगलानन्य शरन मायल मन पायल लोभ लोभावै॥७४॥

शब्दार्थ:—चितवनि=प्राणप्यारे की रसभरी चितवनि। ("मो पै रस की चितवनि डारी हो दशरथ नृप लाल॥" (रसिकेन्द्र श्रीयुगल प्रियाजी)। चाह=चटपटी। भावे=सुहाता है। वातिल अ०=व्यर्थ। मायल (माइल अ०)=आसक्त।

भावार्थ:—प्रियतम के दर्शन होने के पश्चात् उनकी रसभरी चितवनि अवलोकन करने का

रसास्वाद मिल चुका है। अब उनकी अदर्शन दशा में पुनः उसी चितवनि के अवलोकन करने की चटपटी जगी है। मेरे चित्त में अन्य वस्तु रुचती ही नहीं। चलते फिरते, सोने जागते, उठते बैठते, प्रत्येक स्थिति में, उसी मनहरण प्यारे की याद आती रहती है। अन्य व्यर्थ वार्ता तिलमात्र भी अरुचिकर प्रतीत होती है। रुचती है केवल चितचोरजू का प्रीति विषयक प्रसंग। प्रियतम की वीण विनिन्दिनी नूपुर ध्वनि का मजा कान को मिल चुका हैं। सुनकर मन उसी में समासक्त हो गया है। पुनः वही सुनने का लोभ मन को ललचा रहा है।

"ले गयो चित चारु चखन में।
अजब अदा अलबेली देखा के, डारि दियो दिलदार दुखन में।
साँची बात समुझ सजनी नहिं, काम रह्यो कुल कान रखन में॥
सुन्दर स्याम राम दरशन बिनु काज न तिल निकसे री झखन में।
युगल अनन्य शरन निवछावर होय गई ललचौहैं लखन में॥" सं० सु० प्र०

॥ मूल छंद ॥

६५—चितवनि चलन चमक खेलन सरजू किनार सुधि कीने।
बोलन हसन लखन जुलफन छबि छोरन छैल छबीने॥
हरसायत दिल लाय ललकि पुनि सुरसहीन मति भीने।
युगलानन्य शरन विरहिनि प्रिय प्रान निछावर कीने॥ ६६॥

शब्दार्थः—चमक=लचक कर। लसन=फबना, शोभित होना। छोरन=श्रीमुख पर छिटकाना। छैल=सजीला, शौकीन। छबीने (छबीले)=शोभायुक्त। हरसायत=निरंतर। दिल लाय=याद-करके। सुरसहीन=शुष्क हृदय। रसभीने=प्रमोद होता है।

भावार्थः—आचार्यश्री को प्रियतम के दर्शन कहाँ हुये? किन किन अदाओं पर आप विशेष रूप से फिदा हो गये? इन्हीं बातों का दिग्दर्शन आप प्रस्तुत छन्द में करायेंगे। श्रीआचार्यचरण कहते हैं कि मैंने सरयू पुलिन पर मनहरणवललाल को विनोदमयी केलि क्रीड़ाओं में आसक्त देखा। कभी नायिकाओं की ओर रसीली चितवनि से देखकर, उन्हें कामविह्वला बना रहे हैं। कभी लटकीली चाल से दर्शनार्थी को प्रेमोन्मत्त बना रहे हैं। कभी गेंद, पतंग आदि खेल में चंचलता दिखा रहे हैं। वे सभी पूर्व दर्शित दृश्य सिनेमा फिल्म की भाँति स्मृति पथ में बारी बारी से प्रगट होते रहते हैं। मनभावन अलबेले छबीले लाल की मृत संजीवनी सुधा सानी वाणी, हृदय में आह्लाद जगाने वाली मीठी मुसकान, श्रीमुख पर टकाये जुल्फों की छहरन, सभी बातें अधिकाधिक लालायित होकर (ललकि) याद करता रहती हैं। इन संस्मरणों से मरुभूमि तुल्य नीरस हृदय में भी रस की मधुर मंदाकिनी प्रवाहित होने लगती है। ऐसे रसमग्न करने वाले को क्या क्या न दे डालें। चलो 'देह प्रान तो प्रिय कछु नाहीं।" प्राण ही आप पर न्यौछावर कर दें।

"मारत नैन को बान कौन सी पड़ी पिय बान।
रहन न देत चाह उर अंतर, जप तप पद निर्वान।
तापर चोट चलावत तकि तकि, मंद मधुर मुसक्यान॥
कौन सम्हार करे सजनी अब, वेद लोक कुल कान।
युगल अनन्य अंग परसन हित तलफत पल पल प्रान॥"

–श्री रूप रहस्य पदावली, १३३

मूल छन्दः— ६६–चोज चतुर चौगुनो चाह चित चमक चटक चय चालें।
चामीकर सम अंग अंग दुतिदायक दमक निराले॥
ज्ञान ज्ञेय ज्ञाता गुरुजन गुन गहर गंभीर दुशाले।
युगलानन्य शरन सोचत दिन रात सुगुन नृपलाले॥ ७०॥

शब्दार्थः—चोज=व्यंग पूर्ण नर्म हास। चतुर=वाक्य चातुरी। दमक=लटक चाल। चटक=फुर्तीसे डेग भरना। चय=समूह। चामीकर=सोना अंग भंग=अंगमोड़ने की अदा। दुतिदायक =कांतिमय। दमक=लुनाई। निराले=विलक्षण। ज्ञेय=जानने योग्य। ज्ञाता=जानने वाला। गुरुजन=महापुरुषोचित। गहर=गूढ़। गंभीर=अथाह। दुशाले=हृदय मसोसना। नृपलाले=श्री कौलेन्द्रनन्दन।

भावार्थः—विरही जीवन का संवल होता है प्रियतम गुणचिंतन। आपके वाचिक गुणों में आपके चातुर्य पूर्ण नर्म हासविनोद सुनकर, सुनने की ललक चौगुनी बढ़ जाती है। उसी प्रकार आपके कायिक गुणों में आप की मस्तानी लटकीली मजेदार चाल है, जिसमें नाना प्रकार की अदा प्रगट होती रहती है। कभी हंस गति से, कभी गज गति से, कभी वृषभ गति से चलते हैं, तो कभी नृत्योचित पाद विक्षेप से नूपुर की संगीतमयी ध्वनि प्रगट करते हैं। कभी आप नृत्य अदा में अंग हार नामक हाव प्रगट करते हैं। इस हाव में सोने के तार के समान लचीले अंगों को चाहे जहाँ से, जिस प्रकार मोड़ना चाहें, मरोड़ कर कामिनियों के हृदय में मदन मरोड़ जगाते हैं। उसी प्रकार आप की कान्ति संपूर्ण लुनाई भी विलक्षण ही निराली है। प्राण प्यारे की सर्वज्ञता (ज्ञान). आप के गोप्य रहस्य एवं निगूढ़ मर्म भी जानने योग्य (ज्ञेय) है। पुनः आप के समान सभी मर्मों के ज्ञाता (जानकार) भी आप ही हैं। कहाँ तक गुण गिनाये जायँ ? आपके महा-पुरुषोचित अथाह एवं गूढ़ गुणगणचिंतन करने से आप से मिलने की छटपटी (दुशाले) अधिकाधिक बढ़ती है। विरही के सारे दिन इसी प्रकार से श्रीकौशलेन्द्रनन्दन जू के मनोज्ञ गुण गण चिंतन करने में बीतते रहते हैं।

"मिलन क्या इस को कहते हैं ?
ध्यान धरूँ नित सजन तुम्हारा, दृग भरि रहते हैं।
हे दिलदार रसिक चूड़ामनि, दिल की कहते हैं॥

जब लगि भुज भरि लिपटि मिलौ नहिं, दिल नित दहते हैं।
यह तो है मजबूरी मेरी जो गुन गुनि रहते हैं।' अज्ञात

॥ मूल छन्द ॥

६७—सखी वसंत वसंत कियो अब विरह व्यथा तन छाई है।
छन छन स्वाँस उसास उठे नित नैन नीर झरि लाई है॥
रैन ऐन माशूक़ दरद दिल जुलुम जहान जलाई है।
युगलानन्य विरहिनी तलफत पेखत पिय निठुराई है॥२२२॥

शब्दार्थः—वसंत=ऋतुराज वसंत। वसंत कियो= निवास किया। श्वास=नासिका द्वारा वायु भीतर भरना। उसास=वायु बाहर निकालना। नीर=आँसू। रैन=रात। ऐन (अह्न सं०)=दिन। माशूक़=प्रेमास्पद। जुल्म=जालिम विरह। जहान=संसार। तलफत=तड़पतीहै। पेखत=देखकर।

भावार्थः—हे सखि, ऋतुराज वसंत का सुहावना समय आ गया है। संपूर्ण प्रमदा वन में इस ऋतु ने अपना निवास सजाया है। प्रियतम संयोगसुख प्राप्त वन की सभी द्रुमलताएँ प्रफुल्लित हो रही हैं, परन्तु विरहिनी के लिये तो यह दुखदायिनी हो रही है। मेरे हृदय की विरहव्यथा संपूर्ण ऊपरी शरीर पर भी प्रगट हो गई है। प्रियतम वियोग में क्षण क्षण लम्बे श्वासोच्छ्वास भरती रहती हूँ। आँखों से अश्रुओं की झड़ी लगी रहती है। हृदय में दिनरात विरहातुरता प्रदीप्त होती रहती है। मेरी विरह ज्वाला मालूम पड़ता है संपूर्ण विश्व को जलाकर भस्म कर देगी॥

'डहकु न है उजियरिया निसि नहि धाम। जगत जरत अस लाग मोहि बिनु राम।'
श्रीबरवा रामायण।

मेरे मनभावन प्राणसंजीवन हैं तो परम कारुणीक, परन्तु केवल मेरे ही लिये आपने निठुराई धारण करली है। करुणामय में निठुराई देख देखकर तड़पती रहती हूँ। अबला करे भी तो क्या?

॥ मूल छन्द ॥

६८—जादू जाह निगाह नेहायत कलित कटाक्ष कटारी है।
प्रेम फितन पूजन प्रीनन पन मन आसेव विहारी है॥
राहत रंज रंग वरधन तन आफत जान बहारी है।
युगलानन्य अनूपम दिलवर दर दिल दया निवारी है॥२८८॥

शब्दार्थः जादू=मोहने वाला टोना। नाह=प्राणनाथ। निगाह=चितवनि। नेहायत अ०=अत्यन्त। कलित=युक्त, विभूषित। कटाक्ष=तिरछी चितवनि। कटारी=एक बालिश्त का छोटा, तिकोना, दुधारा हथियार। फितन (फ़ित्नः अ०)=दंगा फसाद। प्रीनन (प्रीणन् सं०)=रिझाना। पन=प्रतिज्ञा, संकल्प। आसेव फा०=प्रेतावेश के समान, किसी धुन का माथे पर सवार होना।

राहत अ० = सुख शान्ति । रंज फा० = दु.ख शोक । रंग = भोग विलास । आफत फा० = विपदा । बहारी फा = मनोविनोद संबंधी । दरदिल = हृदय से । निकारी = हटा दी है ।

भावार्थः – प्राणनाथ श्रीजानकीकांतजू की रसीली चितवनि में मनमोहनी शक्ति सम्पन्न जादू भरा है । "जादू भरी राम तोरी नजरिया । जेहि चितवत तेहि वस करि राखत सुन्दर श्याम राम धनु वरिया ॥"–(श्रीयुगल प्रियाजी) वह जादू भी साधारण नहीं है । उसमें बहुत बड़ा (नेहायत) प्रभाव है । उस चितवनि के साथ जो तिरछी चितवनि है वह तो कलेजे को आर पार करने वाली दुधारा कटारी है । जिसके कलेजे में घाव करती है, वही जानती है । मुझे तो उस गजब के कटाक्ष ने प्रेम दीवानी बना दिया है । अब तो मेरे जीवन के सारे व्यापार प्रेम से ओत–प्रोत हो गये हैं । यदि लड़ाई दंगे की नौबत आई, तो प्रियतम से प्रणय कलह चलने लगा । प्रियतम पूजन है तो प्रेममय । प्यारे को रिझाना है तो प्रेम ही के द्वारा । प्रियतम विहार दर्शनों की धुन का भूत माथे पर सवार रहता है । मनभावनजू के वियोग में विनोद विलास की सारी सामग्री दुःख स्वरूप प्रतीत होती है । वासंती शोभा विपत्ति जनक है। मेरे हृदयेश क्या रूप में, क्या गुणगणों में, अद्वितीय ही हैं। परन्तु मेरे प्रति जब करुणा करने की वारी आई, तो अपने हृदय से दया को ही हटा दिया । औरों के लिए तो परम दयालु हैं। मेरा दुर्भाग्य है कि मेरे प्रति निठुर वन गये हैं ।

"बालम मोरा मेहर दरसा जा ।
जीवन जान प्रान निवछावर, आके चितवनि रस प्या जा ॥
रोम रोम रग रग गहैं गुन, गन वर वचन सुना जा ।
युगल अनन्य अली लोनी छबि, बूंद विमल वरसा जा ॥ सं० सु० प्र०

॥ मूल छन्द ॥

६९—निर्मोहिया निज नाह आह हिय दायक कासें कहिये ।
सुमिरि सुमिरि गुन जाल ख्याल मन माँझ मौन ह्वै रहिये ॥
कठिन कलंक पंक अंतर गुनि खेद विवध सिर सहिये ।
युगलानन्य शरन प्रीतम हित अनल प्रवल युत दहिये ॥११॥

शब्दार्थः—निर्मोहिया = मोह ममता दया से विरहित । निज नाथ = ख़ाश अपने प्राणनाथ । आह = वियोग व्यथा । जाल = मन को फँसाने वाला फंदा । ख्याल = केलि क्रीड़ा । कलंक = दोष । पंक = कीच । अंतर = हृदय में । गुनि = विचार कर । खेद = अन्तर्व्यथा । प्रवल अनल = प्रचंड विरह ज्वाला । दहिये = जला करती हूँ ।

भावार्थ—मुझमें अपार ममत्व प्रियत्व रखने वाला, प्रेमसिंधु अपना स्वकीय प्राणनाथ ही आज मेरे लिये निठुर बन बैठा है । वह स्वभाव से है मनरंजन, परन्तु मेरे हृदय में असह्य विरह वेदना दायक बन गया है । अपने घर की लाज भरी बात एक कुलांगना पराये से कैसे कहेगी ?

जब मैं उसके दयादाक्षिण्य, प्रेमचातुर्य आदि असंखेय गुणगणों का स्मरण करती हूँ, तो मन उन्हीं मंगलमय गुणगणों के जाल में फँस जाता है। उस चतुर चूड़ामणि की भूतपूर्व केलि क्रीड़ाओं की, विनोदमय सुखद स्वभाव को, याद करती हूँ, तो प्रेमासक्त मन उससे पृथक होना ही नहीं चाहता। क्या करूँ ? चुपचाप सहती रहती हूँ। विचारने से समझ में आया, उस सुखद का कोई दोष नहीं। अपना कलुषित हृदय ही बड़े बड़े अक्षम्य अपराधों के कीचड़ से लथपथ हो रहा है। अतः शिर पर आये हुये भाँति भाँति के कष्ट सहते ही बनेंगे। सब होते हुये भी वही है मेरा मन भावन जीवन सर्वस्व उसके बिना मैं रह नहीं सकती। प्रचंड बिरह ज्वाला हृदय को दग्ध कर रही है।

"ऐसी कौन भई मोसे तकसीर सोऊ कहि दीजे।
नातो जान निकसता अय दिलदार खुशी दिल कीजे॥
तेरे लिये जहान हान सब तौर सही कर मीजे।
युगल अनन्य दयाल लाल बिन देखे किस विधि जीजे॥" श्री भक्ति कांति।

मूल छन्दः— ७०—धूनी नेह जलाई हमने शबोरोज दिल अन्दर।
आतश आह हमेशे निकसे जले जिस्म मन मंदर॥
याद यार का हरदम माला फिरे कहर के कंदर।
युगलानन्य नजर में मेरे आता नहीं सिकंदर॥ २४॥

शब्दार्थः—शबोरोज-फा०=रात दिन। आतश फा०=आग। जिस्म अ०=शरीर। मंदर=मन्दिर। कहर (कह्र अ०)=संकट। सिकन्दर, वथ प्राचीन विश्वविजयी यूनान सम्राट।

भावार्थः—प्रस्तुत छन्द में धूनी का सांग रूपक नेह के अवयवों के साथ बाँधा गया है। तपस्वी लोग पर्वत कंदरा में धूनी जला कर बैठते हैं। उसमें लकड़ी जला करती है। धूनी के समीप बैठ कर तपस्वी माला फेरते रहते हैं। ऐसे तपोधन लौकिक धनियों को तुच्छ दृष्टि से देखते हैं।

कविश्री कहते हैं कि हमने भी धूनी जला रखी है, किन्तु नेह के जाज्वल्यमान स्वरूप ही हमारी धूनी है। यह हमारी नेह धूनी दिवा रात्रि अखंड रूप से जलती रहती है। धूनी से आग की लपटें निकला करती हैं, हमारी आह आह कराहना ही नेह धूनी की लपट है। धूनी में सूखी लकड़ी जलती है। हमने भी वासनाओं को निराहार द्वारा सुखा लिया है सूखी वासनाओ का कोश, कारण शरीर इस नेह धूनी में लकड़ी की भाँति जलता रहता। "राम मिलन विरहानल छाई। तब कारन सरीर जरि जाई॥" संकट रूपी पर्वत कन्दरा में बैठ कर, हम अपने प्रियतम की बार बार अविच्छिन्न स्मृति रूपी माला फेरते रहते हैं। अरे सिकन्दर ! तू हमारे सामने तृण से भी तुच्छ है। तैंने देशो पर तो विजयी पाई सही, किन्तु यह तो बता कि तैंने अपनी इन्द्रियाँ जीतीं या नहीं ? और तुम्हें कितने जीत के माल हाथ लगे ? नही तो तेरी सारी बाहरी विजय व्यर्थ है। देख, हमने इन्द्रियों के समस्त माया देश पर विजय पाई और माल लूट लाये हैं भगवत्प्रेम।

"बिरति चर्म, असिग्यान, मद लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइये सो हरि भगति, देखु खगेस बिचारि।।"

❋ पाँचवाँ अध्याय ❋

।। इश्क दरयाव अर्थात् नेह नदी ।।

स्नेह दशा में चित्त की वृत्ति प्रियतम की सुछवि की ओर प्रवाहमान रहती है। अतः उस प्रवाहमान मनोवेग के लिये नदी का रूपक बड़ा ही समीचीन है। भोग त्यागी और निर्भीक प्रेमार्थी ही नेह नदी में डूबने का अधिकारी है।

❋ मूल छन्द ❋

७१—आशक नाम धराय खाय फिर खौफ फजीहत तिस की हैं।
हुवे बिना मनशूर नूर निज नेह न यार हिरस की हैं।।
नाहक तरक किया लज्जत दुनियें की खूब हवस की हैं।
युगलानन्य शरन डूबें दरयाव—इश्क गति किस की है।। ६०

शब्दार्थः—खौफ=भय। खौफ खाना=भयभीत होना। फजीहत (फ़ज़ीहत अ०)=निंदा। मनशूर=अनलहक नाम जप के हठके कारण सिर कटाकर मर जाने वाला) नूर=शोभा। हिरस (हिर्स अ०)=लोभ। तरक (तर्क अ०)=त्याग। लज्जत अ०=स्वाद, भोग सुख। हवस अ०=लालसा, लालच। गति=भाग्य।

भावार्थः—जब इश्क-शूर बनने चले हैं, तब शिर कटाने में क्या भय? भय करने से नेह नगर में उसकी सर्वत्र निंदा होगी। प्रेम पथ पर डटे रहने का पाठ मनशूर से सीखना चाहिये। मनशूर अनलहक् मंत्र का जापक था। विरोधियों ने उसका शिरकाट लिया। कटे हुये शरसे भी उसी मंत्र का जोरों से उच्चारण होने लगा। कटने मरने पर भी अपने संकल्प से विरत नहीं हुआ। अतः जब तक निर्भयता पूर्वक इश्क राह पर डटे रहने की वृत्ति नहीं बनी है, तब तक प्रियतम के प्रति स्नेह लोलुपता (नेहहिरस) फबती नहीं। नेह नगर में आने पर भी लोक सुख के लिये लोभ लालच बना ही है, तब संसार के भोगा स्वादन को छोड़ इस तीव्र वैराग्योचित इश्क पथ पर व्यर्थ आना हुआ तुम्हारा। कविश्री कहते हैं कि इश्क दरयाव में, नेह नदी में कूद कर, उसी में डूब जाय ऐसा भाग्य विरलेही किसी का होता है।

हाय न पैठ्यो मोर मन, कबहुँ इश्क दरिआव।
ऊसर भू मधि मुद लहत, कै कुशरन बिच भाव।।"

श्री प्रेम परत्व प्रभा दोहावली पृ० १३

मूल छन्दः— ७२—क्या कोई जाने रहस्य बिन नवल नेह नद डूबे।
गोतेखोर हुवे बिगैर हरतौर जौर उर ऊबे।।
जौहर मिलन महाल लाललय ललित शहनशह शूबे।
युगलानन्य शरन घायल मायल मन मन महबूबे।। २६१।।

शब्दार्थः—रहस्य = श्रीयुगल गोप्य विहार वार्त्ता। नद=बड़ी नदी। गोतेखोर=मरजीवा, समुद्र के अथाह जल से रत्न निकालने वाला। विगैर फा०=विना। हरतौर=सब प्रकार से। जौर अ०=अनीति पर तुला हुआ आततायी। ऊबे=उचट जाता है। जौहर अ०=सारतत्त्व, विशिष्ट गुण। महाल (महालः अ०)=उपाय, साधन। लय=ध्यान तन्मयता। ललित लय=रूप माधुरी में ध्यान मग्नता। शहनशह (शाहंशाह फा०)=चक्रवर्ती सम्राट्। शूबे अ०=प्रदेश। मायल (माइल अ०)=आसक्त।

भावार्थः—प्रस्तुत छन्द में नेह नदी में डूबने की आवश्यकता बताई गई है।

युगलदिव्य विहार विषयक अनूठे रहस्य, रत्नों के तुल्य अमोल, एवं दुर्लभ हैं। इन रत्नों की प्राप्ति नेह नदी में डूबे विना दूभर है। अथाह जल के भीतर घुसे और अधिक काल तक दम साध कर, वहीं रत्न ढूढ़ता रहे, तभी रत्न प्राप्ति संभव है। उसी प्रकार नेह समाधि में मगन होकर, उसी स्थिति में चिरकाल तक बना रहे, तभी रहस्य मर्म अवगत होना संभव है। प्रेम में कुछ ऐसा विलक्षण रस है, स्वाद है कि मन वहाँ से हटना नहीं चाहेगा। हल्के साधनों से विषय भोगाभ्यासी मन उचट कर वहिर्मुख हो जायगा। श्री अवध प्रदेश के सार्वभौम सम्राट् श्री अवध लाल की रूप माधुरी में चित्तवृत्ति का तन्मय (लय) होना ही, रहस्य मर्म (जौहर) रूपी जवाहरात पाने का साधन (महाल) है। इश्क चोट खाकर, जो साधक घायल हो चुके हैं, उन्हीं का मन परम प्रेमास्पद श्री जानकी रमण लाल में, समासक्त हो सकेगा।

मूल छन्दः— ७३—कूद पड़ो दरयाव इश्क में क्यों डरते हो प्यारे।
जो कुछ होनी होय सो होवे सिर सौंपे सुख सारे॥
समा रमा जस जमा मयस्सर मुशकिल यार हमारे।
युगलानन्य शरन सुधि बुधि विन रहिये साँझ सकारे॥ ५२॥

शब्दार्थः—सुख सारे="प्रान प्रान के जीव के, जिव सुख के सुख राम।" अतः सुखसार स्वरुप श्री अवधेश राजकुमार ही हैं। समाँ=दृश्य। जस जमा=मान प्रतिष्ठा का संग्रह। समाँरमा =धन सम्पत्ति का ठाट बाट। मयस्सर फा०=प्राप्ति। मुश्किल=दुर्लभ। सकारे=प्रातःकाल।

भावार्थः—प्रेम साधक को दुलार वश श्री आचार्य चरण "प्यारे" का सम्बोधन देकर, आदेश दे रहे हैं कि नेह नदी में शीघ्र कूद पड़ो। इसमें आगा पीछा अथवा भय मत करो। अपने प्रेमास्पद सुख सार सर्वस्व श्री वैदेहीवल्लभ लाल जू को अपना शिर समर्पण कर चुके, तो परिणाम का क्या शोचना? "सीस उतारि चरन ठुकरावे, तऊ निज भाग्य सिहावे॥" (श्री लगन पचीसी) जिनके यहाँ लक्ष्मी का विलास है, भोग पदार्थों का प्राचुर्य है, जहाँ लौकिक मान बड़ाई का ढेर इकट्ठा हो गया है, वहाँ के भोगासक्त एवं सुयश लोभी केलिये, हमारे प्रेमास्पद श्री जानकी रमण की प्राप्ति दुर्लभ है। अतः नेह नदी में डूब कर प्रियतम रूपध्यान में ऐसे तन्मय रहना चाहिये कि जगत का एवं अपने वाह्य शरीर का मान (सुधिबुधि) न रह जावे।

"चुप करिके हररोज चित्त बहलावेंगे। सनम मोहब्बत बीच सुदिल गहलावेंगे।
नेह नदी में पैठि सुमन नहलावेंगे। युगलानन्य शरन आशक कहलावेंगे॥"

श्री प्रेम उमंग, १०५॥

॥ मूल छन्द ॥

७४—दरया इश्क बीच गोता हरसायत आशक देते हैं।
अमला अमल महामानिक महबूब काढ़ि के लेते हैं॥
मरने की खतरा न हेच चित वित ऊपर सिर रेते हैं।
युगलानन्य शरन ऐसे हुशियार कहो जग केते हैं? १६५॥

शब्दार्थः—गोता = डुब्बी। हरसायत = निरंतर। अमला अमल = विशुद्ध से भी विशुद्ध, परम निर्मल। खतरा अ० = भय। हेच फा० = तनक भी। चितवित = चित्त के सर्वस्व अर्थात् प्रियतम। रेतना = रेती से रगड़ कर काटना। केते = कितने। हुशियारे फा० = सचेत, कुशल, चतुर।

भावार्थः—आशिकों का स्वभाव होता है नेह नदी में निरंतर डूबे रहना अर्थात् प्रेमसिंधु श्रीजानकीकान्तजू के ध्यान में निरन्तर मगन रहना। जैसे नदी के गोताखोर, नदी के अन्तस्तल में छिपे रत्नों को काढ़कर ले आते हैं, उसी प्रकार प्रेमपूर्वक ध्यानमग्न रहने वालों को महा अनमोल माणिक्य के तुल्य श्रीप्रियतम के मनहरण रूप. ध्यान पथ में प्राप्त होते हैं। "(प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना॥") आशिकों को मरने का किंचित भी भय नहीं होता। वे अपने हृदय सर्वस्व को इस भाँति आत्म समर्पण किये होते हैं, मानो शिर काटकर उनके श्रीचरणों पर चढ़ा चुके हों। ऐसे प्रेम प्रवीण (होशियार) आशिक इस भोगासक्त जगत में मिलना दुर्लभ है।

"दरया इश्क अथाह बीच बह जावेंगे। इधर उधर की जिकर फिकर रहि जावेंगे।
नामी नाम सुमौज मिलन कहि जावेंगे। युगलानन्य चोट आशक सह जावेंगे॥"

श्री प्रेम उमंग, २६।

—: मूल छन्द :—

७५—दरया मौज हिसाव आव गुन वनवासी क्या जाने?
सिफत वातनी इश्क फिस्क दिल गाफिल कहाँ पछाने?
लागी लगन एकता जिसको वही नजर में आने।
युगलानन्य शरन खामोसी बेहतर समुझ सयाने॥ १०४॥

शब्दार्थः—मौज = प्रेमानन्द। हिसाव अ० = मोल। आव = (प्रेम) जल। वनवासी = विषय वन में रहने वाला। सिफत अ० = गुण, प्रभाव। वातनी अ० = आन्तरिक, मानसिक। फिस्क अ० = दुराचार। इश्क फिस्क = इश्कमिजाजी अर्थात् विषयानुरागी। गाफिल अ० = आलसी, असावधान। पछाने = पहचाने। एकता = संयोग। खामोशी = मौन, चुप्पी। बेहतर = बढ़कर।

भावार्थ:—नेह नदी में घुसने वाले को किस प्रकार के अलौकिक प्रेमानन्द का स्वाद प्राप्त होता है, उस नेह नदी में परिपूर्ण प्रेमजल के क्या क्या गुण प्रभाव हैं, इन्हें विषय वन सेवी क्या समझेंगे ? अन्तर्जगत के गुण को विषयानुरागी, प्रमादी (असावधान) चित्त वाले कहाँ पहचानेंगे ? जिसे संयोग सुख प्राप्ति की तत्परता, लगन लग गई है, उसी की दृष्टि में ये सब दिव्य अलौकिक सुख स्वाद जचेंगे। ऐसे विमुखी जीवों के आगे इन गोप्य वस्तुओं की चर्चा करने की अपेक्षा मौन रहना ही श्रेयस्कर (बेहतर) है। इस विषय को समझेंगे तो चतुर साधक ही।

—: छठा अध्याय, इश्क दीवाने :—

॥ मूल छन्द ॥

७६—साधन सही समस्त अस्त तम सहित दुरुस्त न कोई है।
खार खस्त अलमस्त न माने इश्क माँझ मति मोई है॥
पस्त समुझ हर दो जहान सुख सदा शौक सरसोई है।
युगलानन्य शरन मतवारी दशा अजायब सोई है॥२९०॥

शब्दार्थ:—अस्त=अदृश्य॥ तम=मोह। दुरुस्त फा०=सही। खार फा०=काँटा। खस्त:-अ०=जख्मी। अलमस्त=(प्रेम) मतवाला। न माने=परवा नहीं करते। मोई=भीगी हुई। पस्त फा०=लघु, तुच्छ। जहान फा०=विश्व, लोक। शौक=लगन। सरसोई=सजाई। अजायब (अजाइब अ०)=विचित्र।

भावार्थ:—सर्व विघ्न विनाशक, सर्व सिद्धि प्रदायक, सरल सुगम साधन है प्रभु कृपा। इससे भिन्न कोई भी ऐसा साधन नहीं जो आदि से अन्त तक, सम्पूर्ण रूप से सही हो, जो मोहान्धकार को सर्वथा अभाव करदे और ठीक ठीक इश्क प्राप्ति के लिये उपयुक्त हो। प्रभु कृपा बल पाकर जिसने अपनी बुद्धि इश्क रस में भिगा रखी है, वह प्रेम मतवाला बन गया। साधन मार्ग के विघ्न कंटक से घायल होने पर भी, उसे परवा नहीं। वह प्रेम पथ पर अपनी प्रगति शिथिल नहीं करेगा। सरपट दौड़ता चला जायगा। ऐसे प्रेम मतवाले की दृष्टि में लोक सुख की क्या गिनती ? परलोक के भी सूक्ष्म से सूक्ष्म स्वसुख त्याज्य हैं। वह नित्य निरंतर लगन सजाये रहेगा। श्रीआचार्य चरण की मान्यता में लोक विलक्षण इश्क की मतवाली (दीवानी) दशा इसी को कहेंगे।

"होके मन मस्तान मोहब्बत मानेंगे। दशा असल मनशूर शूर जिय जानेंगे॥
कहनी करनी सदृश भेद नहिं आनेंगे। युगलानन्य दोपट्टा निज सिर तानेंगे॥"

—श्री प्रेम उमंग, २७

॥ मूल छंद ॥

७७—वेपरवाह दाह दुनिये से चाह चैन चख चारी।
नेह निशस्तगाह निशदिन निज नायक नशा खुमारी ॥
नीम भीम सुख सीमहीन सब साधन खलल खोआरी।
युगलानन्य उदाग इश्क पर खुश श्री अवध विहारी ॥ ५४ ॥

शब्दार्थः—वेपरवाह (वेपर्वा फा०)=निर्भय। दाह=त्रिताप। चैन=शान्ति। चख (चक्षु-सं०)=नयन (यहाँ ध्यान दृष्टि से तात्पर्य)। चारी=संचालित करना। निशस्तगाह=बैठने की जगह। खुमारी अ०=नशे के उतारवाली दशा। नीम फा०=अधकचड़ा। भीम=भयानक। खलल अ०=विघ्न रूप। खोआरी (ख्वारी फा०)=दुर्दशा ग्रस्त। अदाग=निष्कलंक, विशुद्ध।

भावार्थः—इश्क दीवानों को संसार के तापों का भय नहीं होता। वे चाहते हैं कि अपने नयनाभिराम श्याम सुजान प्राण प्यारे की ओर टकटकी लगाये रखें। इनकी बैठकी होती है नेह नगर में। अपने नायक श्री रघुनाथक जी के प्रेम नशे में छके रहते हैं। इनकी मान्यता में प्रेम से भिन्न साधन समुदाय कोई अधूरे, कोई भयंकर, कोई सुख सीमा से विरहित, कोई प्रेमबाधक, कोई दुर्गति पूर्ण हैं। इनका निश्चय होता है कि हमारे मनहारी श्री अयोध्या विहारी स्वसुख वासना शून्य विशुद्ध इश्क पर अधिक रीझते हैं। "रीझहि राम सनेह निसोते ॥"

मूल छन्दः— ७८—किस ही से न वासता मेरा फकत सियावर जाने।
अपने घर में मौज निरन्तर कहौ कौन को माने ?
वेतकरार तबीयत अपनी पड़े रहैं मस्ताने।
युगलानन्य सफाई पाई वेपरवाह दिवाने ॥ २७४॥

शब्दार्थः—वासता (वास्ता फा०)=सम्बन्ध। फकत फा०=केवल। मौज अ०=आनन्द। वेतकरार=वाद विवाद रुचि विरहित। सफाई=हृदय शुद्ध करने की युक्ति। तबीयत=चित्त ॥

भावार्थः—मेरा किसी दूसरे से कोई भी नाता रिश्ता नहीं। अपना सगा, संबन्धी, आत्मीय एक मात्र श्री जानकी कान्त जू को ही जानता हुँ। अपने हृदय भवन में ही श्री युगलविहारी की प्रेम लीला दिन रात देखकर आनन्द मग्न रहता हूँ। अब बताओ कि अन्यत्र ऐसा सुख कहाँ संभव है जिसकी मान्यता दी जाय ? वाद विवाद, लड़ाई झगड़े पसंद आते, तो बाहर जा जाकर लड़ाकू लोगों को ढूढ़ ढूढ़ कर उनसे भिड़ा करता। अतः निर्व्यवहार प्रेम मस्त होकर पड़े रहते हैं।

"मुड़ियों ने परपंच रचा है क्या रखा है मेले में ?
प्रयाग दास राघव को लेकर पड़े रहेंगे ढेले में ॥"

श्री आचार्य चरण ने अन्तः करण को विशुद्ध बनाने की सरल युक्ति पा ली है। वह है संसार से निस्पृह (वेपरवाह) होकर, प्रेम में छके रहना।

"दरशन सफा सराहत सज्जन शहर सफाई वसना ॥" यही ग्रंथ, १३५

॥ मूल छन्द ॥

७९—इश्क दिवाने दरद भरा दिल हिलन मिलन नित चाहें।
खाहिश हेच नहीं हरगिज दीदार यार मुख माहे॥
गारत कर डारा हरतौरन दोनों दीन निगाहें।
युगलानन्य शरन सरबत नित नोशन रसनिधि नाहें॥ २४३

शब्दार्थः—इश्क दिवाने = प्रेम मतवाले। दरद = प्रेम पीड़ा। खाहिश (ख्वाहिश फा०) = कामना। हेच = तनक भी। हरगिज = कदापि। दीदार फा० = दर्शन। यार = प्रियतम। माह फा० = चन्द्रमा। गारत अ० = नष्ट। दीन अ० = लोक। निगाह = ध्यान। नोशन फा० = पीना।

भावार्थः—प्रेम मतवाले के हृदय में सतत प्रेम की टीस (पीड़ा) उठती रहती है। उनकी एक मात्र सफल दवा है प्राण प्यारे से हिलना मिलना, उन्हीं का संयोगानन्द। वे चाहते हैं अपने मनरंजन लाल के मुख चन्द्र में अपने नयन चकोर बनाये रखें। इसके अतिरिक्त न उन्हें कोई कामना है, न वासना। जिन्हें स्वसुख की चाह हो, वे लोक परलोक के सुख साधन की खोज में सर्वत्र दृष्टि दौड़ाया करें। प्रेम मतवाले तो प्रियतम से भिन्न लोक परलोक के अन्य दृश्य की ओर दृष्टि पात करना ही त्याग देते हैं। कविश्री कहते हैं कि हमारे रसिक शिरोमणि प्राणनाथ रस के अपार बार-बार हैं। उन्हीं के रूप रस का शर्बत नित्य पीने की इच्छा है।

"शखत शान सरोज वदन वर आज पिलाय चला है।
रग रग रोम रोम दे अंदर सीतल सीर सला है॥
चाह तमाम आम की सिमटी निपटी बुरी बला है।
युगलानन्य मनोरथ तरुवर अद्भुत फहम फला है॥" यही ग्रन्थ, १५

मूल छन्दः— ८०—राम रूप रसरंग रँगे जे तिन्हें न और सोहाता है।
काम धाम विसराय रैन दिन मन महबूब लोभाता है॥
आशा सियवल्लभ विहार थल अमल न और जोहाता है।
युगलानन्य शरन नेही निज मीत माधुरी माता है॥ १६६

शब्दार्थः - रसरंग = प्रेमानन्द। महबूब = प्रियतम। अमल = व्यसन, चसका। जोहाता = दृष्टि पथ में आता। माधुरी = सौन्दर्य माधुरी, मदिरा। माता = मतवाला बना है।

भावार्थः—श्री जानकी रमण जू के रूप दर्शन जन्य प्रेमानन्द में पगे रसिक रंगीले महानुभावों को अन्य कोई भी दृश्य नहीं रुचता। वे सारे गृह कार्यों को भूल कर, रात दिन प्रियतम दर्शन में लुब्ध बने रहते हैं। समस्त सुखों का सार सर्वस्व है श्री जानकी रमण जू के दिव्य विहार लीला दर्शन। अतः वे दिव्य विहार देश में ही सुख की आशा से दृष्टि केन्द्रीभूत रखते हैं। अन्य दर्शन का व्यसन उनकी नजर में नहीं आता। अपने प्राण वल्लभ की रूप वारुणी पीकर मतवाले बने रहते हैं।

"युगल छबि देखे नयन सिरात।
जनु सुषमा सर मध्य लसत दोउ नील पीत जलजात॥
वदन किधौं छबि नगर बसत जहँ, संपति विविध लखात।
लेत चोरि चित को जब मृदु हँसि, करत परस्पर बात॥
विहरत कनक भवन गृह आँगन, कबहुँ अटन चढ़ि जात।
रूप भरो रस भरो चतुर अति, संग सखिन के व्रात॥
कबहुँ बैठि चौपार खेलत दोउ, हार जीत पक्षपात।
देखत फिरत रसिक अलि तहँ तहँ जहँ जहँ प्रिय दोउ जात॥"

॥ मूल छन्द ॥

८१—रसिक पारखी प्रेम दिवाना सिय वल्लभ छबि भीना है।
चित्त चारु चामीकर भीतर जड़ित सनेह नगीना है॥
पल पल प्यास पास परसन की कीमत अजब नवीना है।
युगलानन्य दशा ऐसी बिन ज्यों नकटों का जीना है॥२१४॥

शब्दार्थ:—रसिक पारखी=रस की कीमत जानने वाले जौहरी। भीना=सराबोर। चामीकर=सुवर्ण, सोना। परसन=सेवाकाल में अंग स्पर्श का सुख। कीमत=महत्व। अजब=लोक विलक्षण। नवीना=नित्य नवायमान। नकटों=जिनकी नाक कटी हो।

भावार्थ:—रस तत्व के परखने वाले रसिक पारखी प्रेमोन्मत्त बनकर, श्रीजानकीवल्लभ-लालजू की सुछबि रस में सराबोर रहते हैं। कुरुचिपूर्ण विश्वविलास में आसक्त चित्त कुवर्ण (लोहा) है। श्री सियावर रूपासक्त चित्त सुवर्ण (सोना है। सोने में मणि जड़ी हो तो कमाल! रस मर्मी के स्वर्णमय चित्त में स्नेह रूपी मणि का नगीना जड़ा होने से शोभा खूब फबती है। युगलमनरंजन-लालजू के सन्निकट में रहकर, उनके लाड़प्यारमय सेवा करते रहें, और सेवा समय युगल श्रीअंगों के संस्पर्श से परमानन्द की विद्युत धारा नश नश में प्रवेश कराते रहें। इसी का लोभ (प्यास) उन्हें उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। ऐसे रस लोलुपों का महत्व नित्य नवायमान होता रहता है। यदि ऐसी स्नेहमयी रूपासक्ति न हुई, सेवाकालीन अंग संस्पर्श की लोलुपता नहीं बढ़ती रही, तो ऐसे नकटे शोभाहीन कुलक्षण का जीवन सर्वथा निन्द्य है।

॥ मूल छन्द ॥

८२—लज्जत जान जिगर दे अंतर तेरेइ जूम रहा है।
लैल निहार एक सा मुझको मालूम धूम रहा है॥
जाहिर हुश्न जहान जहूरा दम दम दूम रहा है।
युगलानन्य ख्वाब में दिलवर तेरेइ जूम रहा है॥२५९॥

शब्दार्थः—लज्जत=सुख स्वाद । जान फा०=प्राण । जिगर फा०=हृदय । दे पं०=के। लैल अ०=रात । निहार=दिन । जाहिर जहान=दृश्य जगत । हुस्न=सौन्दर्य, छवि छटा । जहूरा= प्रकाश । दूमना=हिलना डोलना । ख्वाब=स्वप्न । जूम=जुटना, एकत्रित होना ।

भावार्थः—मेरे हृदय रमण प्राणेश ! मेरे हृदय में, प्राणों के अभ्यन्तर, आपही के रूप दर्शन जन्य सुख स्वाद संचारित हो रहा है । इस परमानन्द की मस्ती में मेरे लिए जैसे दिन बीतता है, उसी आनन्द में रात भी बीत जाती है । इस प्रकार रात दिन का चक्र एक ही दिव्यानन्द में चला करता है । दृश्य जगत में भी आप ही की छवि छटा श्वास प्रति श्वास सर्वत्र प्रतिभासित हो रही है । कवि श्री कहते हैं कि क्या जागृत, क्या स्वप्न सभी दशाओं में उसी रूप दर्शन का सुख स्वाद अनुभव होता रहता है । धन्य है ऐसा जीवन !

'श्री जानकी जीवन से मेरा नेह लगा है सखि, दृढ़ प्रेम पगा है ।
मुरशिद के मेहर से हुई हाशिल यही दौलत
उसके सिवा जहान में कोई न सगा है ॥
सब तौर से तहकीक किया हमने पियारे
मुखड़े में मोहब्बत लखा दिल बीच दगा हैं ॥
जब तक कि दिलाराम से सोहवत न हुई थी
तब ही तलक खलक के तरफ जान लगा है ॥
खुश वक्त खबर यार की पाई जिसी सायत
उसी दम से मिलन चाह चसक खूब खगा है ॥
आईने के मानिन्द जिगर 'युग्म' का रौशन
अफशोस जोश इश्क के वेहोश रँगा है ॥ सं० सु० प्र०

* सातवाँ अध्याय *

॥ प्रेम पंथ की कठिनाई ॥

॥ मूल छन्द ॥

८३—गाथा प्रेम प्रवाह श्रवन करि जाग उठी जिय जाड़ा ।
जैसे अवल प्रवल लखि डरपत पेखत अजय अखाड़ा ॥
सस सम्पन्न होत हायल ज्यों गिरत गगन गत गाड़ा ।
युगलानन्य महाल हाल इह मीत न हलुवा माड़ा ॥ २४७॥

शब्दार्थः—माथा=पौराणिक आख्यान। प्रवाह=भयंकर धारा। जाग उठे=प्रगट हो जाता है। जाड़ा=कठिनाई देख हृदय काँपना, पस्तहिम्मती। अबल=बलहीन। प्रबल=बलिष्ट पहलवान। पेखत=देखकर। अजय=जीतना कठिन। अखाड़ा=कुश्ती लड़ंत। सस=अन्न के पौधों से भरा खेत। हायल अ०=बर्बाद। गगन गत=आकाश स्थित। गाड़ा=ओला पत्थर। महाल अ०=भयंकर। हाल=दशा। माड़ा=मैदे की बनी मुलायम रोटी, लुचई, लफानी पूड़ी।

भावार्थः—प्रेम नदी के भयंकर धार की चर्चा सुनते ही कमजोर प्रेम जिज्ञासु के हृदय में कादरता जग पड़ती है, उत्साह पर पानी पड़ जाता है। एक बलहीन कुश्ती लड़ने का शौकीन, अत्यन्त बलवान पहलवान से कुश्ती जीतना मुश्किल समझ कर, अखाड़ा में उतरने के पहले ही भय से काँप उठता है, वही बात, प्रेम प्रवाह में कूदने के पहले बुजदिलों की होती है। आकाश से ओले पत्थरों की वर्षा होते ही अन्न के लहलहाते पौधों से भरी खेत नष्ट हो जाती है, उसी भाँति कायर हृदय का उत्साह भंग हो जाता है। कवि श्री व्यंग पूर्वक हम कायरों को मीत का संबोधन देकर, कहते हैं कि प्रेमार्जन करना ऐसा सुगम नहीं है जैसा हलुवा और लफानी पुड़ी का चबाना सुगम और मीठा हो। प्रेम प्राप्ति का साधन क्या है, मानो लोहे का चना चबाना है, लोहे का।

'सिय पिय पंथ दुहेलवा केहि विध जाउँ।
पग पग परसत सूली डरि सकुचाउँ ॥
भावना रहस्य विलास।

॥ मूल छन्द ॥

८४—आशक होना सहल नहीं मरने से मुशकिल मानोगे।
पल पल पर मरना जीना तिसको क्यों कर पहिचानोगे ॥
चोज चमत्कारी न चले तहँ हाय हमेशे ठानोगे।
युगलानन्य शरन आशक रस छानत छानत छानोगे ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—सहल=आसान। मुशकिल (=मुश्किल अ०)=कठिन। चोज=चमत्कार पूर्ण उक्ति, चतुराई भरी बात। रस छानना=मादक रस को पीते पीते। छानोगे=पहचानोगे।

भावार्थः—इश्क प्राप्ति सुकर सुगम नहीं है। जैसे पापियों के प्राण भीषण यन्त्रणा झेलने के पश्चात् बड़ी कठिनाई से निकलते हैं, उससे भी कष्ट साध्य साधन से, इश्क हकीकी, दिव्य प्रेम प्राप्त होता है। असह्य विरह वेदना पर मरणासन्न दशा हो जाती है। प्रियतम संयोग का आभास पाते ही पुनः प्राण पलट आते हैं। ऐसा जीना मरना पल पल पर होता रहता है। अतः भोगासक्त व्यक्ति के लिये इश्क प्राप्ति रहस्य बड़ा ही दुर्बोध है, समझना कठिन है। चमत्कार पूर्ण विनोद वार्ता से लोगों को हसाना रिझाना सुगम है, पर ऐसी वाक्य चातुरी प्रेम संचन देश में किसी काम की नहीं। वहाँ तो 'हाय प्यारे! हाय प्यारे!!' का आर्तनाद दीन मुख से सदैव

समुच्चरित होता रहता है। जब इश्क मद पीते पीते उसकी खुमारी में लोकोत्तर सुख स्वाद का क्रमशः अनुभव होगा, तभी इश्क तत्त्व का परिचय स्वानुभव के सहारे किया जा सकेगा।

'झूठ आसिकी करहि मुलुक में जूती खाहीं। सहज आशिकी नाहि खाँड खाने की नाहीं ॥
जीते जी मर जाय करै नहि तन की आसा। आशिक का दिन रात रहै सूली परवासा ॥
मान बड़ाई खोय नींद भरि नाहिन सोना। तिल भर रक्त न माँस नहीं आसिक का सोना ॥
बेवकूफ पलटू कहैं आशिक होने जाहिं। सीस उतारे हाथ से सहज आशिकी नाहिं ॥

॥ मूल छन्द ॥

८५—प्रेम पंथ अति दूर पूरपन मुशकिल पहुँचि न सकता है।
कायर कूर कामल हाल बिन गेह देह दिसि तकता है ॥
करनी कठिन ख्याल करता नहिं सहल बात बहु बकता है।
युगलानन्यशरन सौंपे शिर तब प्रेमी फल पकता है ॥२४६॥

शब्दार्थ—पूरपन = सुदृढ़ संकल्पों से परिपूर्ण। कायर = कमजोर हृदय वाले, क्षीण संकल्प वाले। कूर = निकम्मा, कामचोर। कमाल = अद्भुत कर्म कौशल।

भावार्थः- प्रेम पथ का सफर लम्बा है। कर्मठ, दृढ़ प्रतिज्ञ (पूरपन) सज्जनों के लिये ही ऐसा सफर विहित है। जो हृदय के कमजोर (कायर) हैं, निकम्मे हैं, अद्भुत कर्म करने में अक्षम (कमाल हाल बिन) हैं जिन्हें शरीर और घर सुख की चाह है, उनके लिये मार्ग दुष्कर (मुशकिल) है। वे लक्ष्य तक पहुँच नहीं सकते हैं। जो पर उपदेश कुसल हैं, स्वयं प्रेमपंथ की कठिनाई से अनभिज्ञ है, वे तो इसे बहुत ही सुकर सुगम बता देगें। परन्तु सही बात तो यह है कि आशिक पहले अपना शिर उतार कर, अपने माशूक को सौंप देता है, तब उसके साधन रुपी वृक्ष में प्रेम का परिपक्व फल प्रगट होता हैं।

'लोक को लाज औ सोच प्रलोक को वारिये प्रीति के ऊपर दोऊ।
गाँव को, गेह को, देह को नातो सनेह में हातो करै पुनि सोऊ ॥
'बोधा' सुनीत निबाह करै धर ऊपर जाके नहीं सिर होऊ।
लोक की भीति डेरात जो मीत, तो प्रीति के पैंडो परै जनि कोऊ ॥'

❀ मूल छन्द ❀

८६—तरकी तहरदार तानी तर तिलस्मात तति मानी है।
ताजे तरफ तबीयत तालिब तार प्रमोद प्रमानी है ॥
भेदी भेद तसौवर तरकश, तीर गंभीर गसानी है।
युगलानन्य शरन सनेह की कातिल कठिन कहानी है ॥२६४॥

शब्दार्थः—तरकी (तर्की अ०) = भोग त्यागी। तरहदार अ० फा० = सुन्दर ढंग से। तानी तर = खूब कसकर तानते हैं। तिलस्मात = जादू टोना की भाँति अद्भुत कर्म चमत्कार करने वाले।

तति=धनुष प्रत्यञ्चा, डोरी। मानी=धनुष बाण के रूपक के लिये मान लिया है। ताजे=नई-नई जिज्ञास्य वस्तु। तरफ=ओर। तबीयत (तबीअत अ०) = मन। तालिब अ०=प्रवृत्ति। प्रमोद=अभिलाषा पूर्ति जन्य आनन्द। प्रमानी=मनोनुकूल। तार=एक पश्चात् दूसरी, तीसरी आदि मनोर्थ पूर्ति की शृंखला। भेदी=जिज्ञासु। भेद=रहस्य। मर्म तशौवर (तसव्वुर अ०)= जिज्ञासा। गंभीर (=गहराई तक। गसानी=बाण की गाँस चुभाई है। कहानी=कल्पित गल्प।

अवतरणिका—इश्क मार्ग से गोप्य विहार देश का रहस्य ज्ञान सुगम हो जाता है। कठिन रहस्य जिज्ञासा का अनायास समाधान हो जाता है। यही प्रस्तुत छंद का प्रतिपाद्य विषय है। विषय को जैसे रूपक से समझाया गया है वह रूपक श्रुतिसम्मत है। यथा—

'प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शर वत्तन्मयो भवेत्॥'

मुण्डक २।२४

अर्थात् नाम जप धनुष है, नाम जापक बाण है, ब्रह्म लक्ष्य है। जापक बाण की भांति सीधे लक्ष्य की ओर तन्मय होकर चलें तो ब्रह्म लक्ष्य तक पहुँच जायेंगे।

इसी प्रकार श्रीमानस जी का रूपक भी द्रष्टव्य है—

'बर बिग्यान कठिन कोदंडा। अमल अचल मन त्रोण समाना॥
सम जम नियम सिलीमुख नाना। कवच अभेद विप्र पद पूजा॥

भावार्थः—यहाँ मूल छन्द के चौथे चरण में चर्चित स्नेह ही मानो धनुष है। स्नेह मार्ग के साधन वाले चमत्कार पूर्ण फलोदय ही धनुष की डोरी है। भोग त्यागने से ही ब्रह्म की ओर प्रवृत्ति सुगम होती है। अतः त्यागी ही धनुष डोरी को खूब कसकर तानते हैं। नई नई जिज्ञासा रुचि ही नये नये लक्ष्य हैं। जिज्ञासा पूर्ति जन्य आनन्दों की शृंखला स्नेह मार्ग से सदा बनी रहेगी। अतः प्रमोद का तार संभव है। जिज्ञासु ही तरकश हैं। जिज्ञासा पूर्ण बुद्धि ही बाण है। बाण के गहरे चुभान के समान, विषय गहराई तक पहुँचने वाली बुद्धि अपेक्षित है।

तात्पर्य यह कि इश्क प्रभाव से प्राप्त आशिक की सूक्ष्म बुद्धि जिज्ञास्य रहस्य की गहराई तक पहुँच कर, यथार्थ मर्म को ग्रहण कर लेती है। रहस्योपास्य में ज्ञातव्य बिषयों की सूची इस प्रकार से है—१-नाना वन उपवन, कुञ्ज निकुञ्ज, विहार के विविध मणिमय महल, विहारोचित देशकाल, सेवा सौज, परिकर स्वरूप का ज्ञान, स्वस्वरूप, परस्वरूप का बोध, अष्ट प्रहर वाला आह्निक विलास, वर्षोत्सवों के नैमित्तिक विलास आदि। इन विविध विहारों में नये नये रहस्य की ओर जिज्ञासा प्रवृत्ति बढ़ती रहती है। (ताजे तरफ तबीयत तालिब) स्नेह तो बहुत ही सदय, सुकोमल, स्वभाव के होते हैं। ये कठिन कातिल धनुष का कार्य कैसे करेंगे? इसके उत्तर में स्नेह तत्त्व के कुशल मर्मज्ञ कविश्री कहते हैं—इस भाव को सुबोध बनाने के लिये ऐसा रूपक बाँधा गया है। अतः यह रूपक कल्पित कहानी की भाँति अयथार्थ है। यथार्थतः स्नेह तो कोमल हैं ही।

॥ मूल छन्द ॥

८७—छठी रात का दूध कढ़ै जब चढ़ै इश्क की राहैं।
मढ़ी मसान समान खान औ पान न नेक निरा है॥
पढ़ी पढ़ाई बात न आवै छावै आह अथाहैं।
युगलानन्य कढ़ी कातिल किरपान सुशूर सराहै ॥ २८३ ॥

शब्दार्थः—छठी रात का दूध कढ़े (मुहावरा)=अत्यन्त हैरानी अनुभव होती है। मढ़ी=झोपड़ा। मसान=श्मशान, मरघट। नेक=तनक भी। निरा है=निराहार रहते हैं। कृपान=तलवार।

भावार्थः—प्रेम साधक जब प्रेम पथ पर आरूढ़ होता है, तब उसे ऐसी कठिनाई का सामना करना पड़ता है कि उसे छठी का दूध याद आ जाता है। श्मशान में यदि कोई अपनी कुटिया बना ले तो उस देश में स्वाभाविक घृणा बनी रहेगी। जुगुप्सा के मारे वहाँ भोजन करना या किसी पेय पदार्थ का पीना रुचेगा नहीं। भूखो भले रह जाय। वही दशा प्रेम पथिकों की होती है। खान पान से अरुचि हो जाती है। यद्यपि सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय से तथा सन्तों के मुख से सुन लिया है कि संकट काल में धैर्य धारण करना चाहिये, परन्तु प्रेम पथ पर चलने वाले को प्रियतम मिलन की ऐसी व्याकुलता होती है कि उस अवस्था में धैर्य सम्हाले भी नहीं सम्हलता। युद्धोत्साही सूरमा के सामने परपक्ष वाले उसका शिर काटने के लिये नंगी तलवार लेकर वार करे, तो उसके साहस की सराहना करते हुये, योद्धा उससे उत्साह पूर्वक भिड़ जाता है। ठीक ऐसी ही हालत होती है इश्क शूर की।

—: मूल छन्द :—

८८—खाला का घर इश्क नहीं इसमें तो आना सखती है।
पल पल में बदनामी खामी दम दम दुख बदबखती है॥
ज्ञान गुमान शान भूले सब पढ़ी पढ़ाई तखती है।
युगलानन्य कार मुशकिल बिन मिले मौज यकलखती है ॥ २४८॥

शब्दार्थः—खाला=माँ की बहन, मौसी। खाला का घर (मुहावरा) = सहज काम। सखती (सख्ती फा०) =कठिन। खामी फा०=कच्चाई, अनुभव हीनता। बदनामी फा०=निंदा, अपयश। दम दम (दम बदम फा०) = क्षण प्रतिक्षण, निरन्तर। बदबख्ती फा० = बुरे दिन, दुर्भाग्य। तखती (तख्ती फा०)=बच्चों के लिखने वाली लकड़ी की पाटी। कार फा०=उद्यमा। मौज अ०=आनन्द। यक लखती=आकस्मिक, अचानक।

भावार्थः—प्रेम भवन में प्रवेश सहज नहीं, बड़ा ही कठिन काम है। दुर्गम देश है यह। क्षण क्षण में अपनी अनुभव हीनता की त्रुटि, एवं लोक निन्दा का बाहुल्य, उत्साह पर ठंडा पानी

डालते रहते हैं। सामने उपस्थित दुःख एवं दुर्भाग्य पैर पकड़ कर पीछे से खीचते रहते हैं। ज्ञान का अभिमान तथा धन सम्पत्ति की शान शौकत वाह्य जगत के लिये उपयोगी भले हो, परन्तु इश्क के सूक्ष्म देश में सब निष्प्रयोजन हैं। स्थूल जगत उपयोगी पाठ सीख कर, इश्क के सूक्ष्म देश में कोई लाभ नहीं उठाया जा सकता। अपना सुदृढ़ संकल्प, तीव्र लगन, एवं प्रियतम की कृपामय सहायता ही इस मार्ग का सम्वल है। प्रभु कृपा से इश्क सिद्धि का प्रेमानन्द आकस्मात् हृदय देश में उदित हो जाय, तब तो उस आनन्द तरंग में सब कठिनाई वह जाती है। उसके पहले वाला साधन बड़ा ही दुष्कर है। पर्वत के समान अचल धैर्य वाले ही ठहरेंगे।

॥ मूल छन्द ॥

८६—राह अजव वारीक वाल से सौगुन नजर न आवै।
हरयक तरफ़ बरफ़ के मानिंद शीरीं हवा बहावै॥
रंगदार संगी नहिं दीगर तिमिर तोम दगछावै।
युगलानन्य शरन मुरशिद की मेहर सहित सुख पावै॥ २८॥

शब्दार्थः—अजब = बेढंगा। वारीक = सूक्ष्म, महीन। वाल से सौगुन = केश को चीर कर सौ भाग किये जायें, उनमें एक भाग के समान। नजर = खाली आँख से देखने में। मानिन्द = समान। शीरीं = सर्द, ठंठी। रंगदार फा०—अनुराग रंग से रंगा हुआ, अनुभवी। संगी = सह-यात्री। दीगर फा० = दूसरा। तिमिर तोम = सघन अन्धकार। मुरशिद (मुर्शिद अ०)=गुरुदेव। मेहर = कृपा।

भावार्थः—प्रेम मार्ग अत्यन्त सूक्ष्म है। वाल के शतांश से भी वारीक है। बिना खुर्दबीन (सूक्ष्म दर्शी यन्त्र) के खाली आँख से देखने में भी नहीं आने को। प्रेम मार्ग की कठिनाई को पर्वत शिखर पर चढ़ने वाले मार्ग से रुपक बाँधा गया है। पर्वत शिखर पर कभी एकायक बर्फ की वर्षा होने लगती है। रोम रोम में वर्फ के सलाके के समान प्रवेश करने वाली सर्द हवा बहने लगती है। बर्फानी हवा से मालूम पड़ता है शरीर ही गल जायगा। यदि कोई अनुभवी संगी हो, तो उसके बताये मार्ग से सुगमता पूर्वक चला जा सकता है। अनुभवी ठंठी से बचने को युक्ति भी कर सकता है। यहाँ ऐसे संगी भी नहीं। इतने ही में रात आ गई। पर्वतों पर बादल सदैव आच्छादित रहते हैं। घटाटोप बादलों ने अन्धकार को और भी सघन बना दिया। आँखों से हाथों हाथ नहीं सूझ रहा है। ऐसी दशा में आप ही बताइये, मार्ग पर कैसे अग्रसर होवें? ठीक उपर्युक्त कठिनाई के समान ही इश्क राह भीं दुर्गमता से भरी है। ऐसे भीषण संकट काल में अघटित घटना पटीयसी श्री गुरु कृपा कमाल का काम करती है। घोर विपत्ति को परमानन्द रुप में बदल कर परिणत कर देतीं है। बलिहारी श्री सद्गुरु कृपा की!

'अति छीन मृनाल के तारहु ते, तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
सुई वेध ते द्वार सकीन तहाँ, परतीति को टाँडो लदावनो है॥

कवि 'बोधा' अनी घनी नेजहुँ तें, चढ़ि तापै न चित्त डगावनो है।
यह प्रेम को पंथ कराार महा, तरवार की धार पै धावनो है ॥'

अवतरणिका:—अग्रिम छन्द में प्रेममार्ग के भय को समुद्र से तथा निराशा को अन्धेरी रात से रूपक बाँधा गया है।

॥ मूल छन्द ॥

१०—भीनी निशा अंधेरी घेरी बीम मौज दरसावै।
लहर कहरमय उठे अनूठे देखत जिय डर पावै ॥
पार यार दिलदार सलोना मुशकिल मिलन मनावै।
युगलानन्य शरन इह मारग सुबकसार कहँ पावै ॥२५॥

शब्दार्थः—भीनी=अधिक बीती। निशा=रात्रि (निराशा रूपी)। अँधेरी=अमावस्या की अन्धकाराच्छन्न। बीम=भय। मौज=द्विअर्थक जोश, तरंग। लहर=छोटा तरंग। (तरंग=ऊँचा। लहर=साधारण) कहरमय=पीड़ा का संवेग लिए हुए। अनूठे=लोकविलक्षण। पार=भय समुद्र के पर पार। दिलदार=चितचोर, मनहरण। सलोना=चिताकर्षक, सौन्दर्य लावण्य रूप वाला। मुशकिल=दुर्लभ। मनावै=मन में आता है। सुबक या सबुक (दोनों लिखने में प्रचलित) फा०=हलका, नीच। सबुकसार फा०=अति क्षुद्र।

भावार्थः—अपनी त्रुटियों के कारण, प्रियतम मिलन में उपस्थित निराशा ही मानो मध्य रात्रि का सघन अन्धकार है। अनेक कठिनाइयाँ भय का समुद्र बनकर सामने लहरा रही हैं। भय एवं निराश मिलकर अँधेरी रात में समुद्र संतरण सी कठिनाई लेकर सामने आई है। भय के उद्वेग ही मानो समुद्र की ऊँची ऊँची तरंगें हैं। विविध प्रकार के साधन कष्ट ही मानों समुद्र की लहरियाँ हैं। रूपक प्रकृत वस्तु से बाँधा गया है। दिव्य देश का साधन कष्ट अचिन्त्य विलक्षण है। यह देखकर जी भय के मारे घबड़ा रहा है। हमारे मनहरण श्याम सुन्दर श्री अवधलाल भय-सिन्धु के उस पार अर्थात् निर्भय होने पर, मिलते हैं। भय छूटता नहीं। अतः मिलन दुर्लभ लगता है। धैर्य एवं गांभीर्य हीन भीरु पुरुष के लिए यह मार्ग उपयुक्त नहीं। प्रेमपथ पर वह चले जो धीर, गंभीर, निर्भीक, सुदृढ़ प्रतीतवान एवं कर्मठ हो।

॥ मूल छन्द ॥

१०१—शदहा गुल खाया दर दिल सच फकत दोस्त के खातिर।
जखमी भये गये दो जग से तौ भी खौफ न खातिर ॥
आलीजाह निगाह निरंतर मिलन निमित मन आतर।
युगलानन्य शरन नाजुक तर इह मग काम न कातर ॥१०१॥

शब्दार्थः—शदहा=सैकड़ों प्रकार के। गुल (ल्ल अ०)=हृदय की जलन। खौफ=भय।

खातिर फा०=वह भाव जो मन में उत्पन्न हो । आलीजाह=अमित तेजस्वी । निगाह=कृपादृष्टि । आतर (आतुर सं०)=बेचैन । नाजुकतर=अत्यन्त सुकुमार । कातर=कायर ।

भावार्थः---सच पूछो तो, एकमात्र अपने प्राण प्यारे के मिलन के निमित्त ही मैंने सैकड़ों प्रकार के मनस्ताप झेले हैं । विरह की चोट से हृदय मर्माहत हो चुका है । लोक परलोक के सुखों से वंचित हो गये हैं । तौभी मन में इसके लिये कोई परवा नहीं है । यदि मेरे मन में बेचैनी है, छटपटी है तो एकही बात के लिए । वह यह कि जिनकी कृपा दृष्टि में अमित प्रभाव भरा है, उस मनभावन प्राण प्यारे से मिलन कैसे हो ? घबड़ाहट का कारण यह है कि इस दुर्गम प्रेम-पंथ का पथिक कायर नहीं हो सकता और मैं ठहरा अति दुर्बल हृदय वाला ।

।। मूल छन्द ।।

९२—जब तक डर परलोक लोक को तब तक शौक न सांचा है ।
खाक मिसाल जहान सदन सुख सरस नेह रस रांचा है ।।
सोना शुद्ध झलकता तब जब सहे अनल कर आंचा है ।
युगलानन्य बात मुशकिल तेहि हेत न मन मगमाचा है ।।१८८।।

शब्दार्थः—शौक=लगन । खाक=धूल, तुच्छ । मिसाल=समान । जहान=संसार का । सदन=गृह का । राँचा=रंगा गया । आँचा=ताप । अनल=आग । मगमाचा=राह चलनेका समारंभ ।

भावार्थः—"स्वारथ परमारथ सुख सारे । भरत न सपनेहु मनहि निहारे ।।
साधन सिद्धि राम पद नेहू । मोहि लखि परत भरत मत एहू ।।"

अमृत पान कर लेने पर, अन्य स्वाद की स्पृहा मिट जाती है । प्रेमामृत इतना अपरिमित सुस्वादु है कि इसके सुख स्वाद को पाकर, प्रेमार्थी इतना अघा जाता है, निहाल हो जाता है कि उसे अपर सुख की वाँछा ही नहीं रहती । लोक परलोक के सारे सुख, इस प्रेम सुख के सामने हलके हैं । प्रेमी को उनसे कोई प्रयोजन नहीं रहता । सच्ची लगन वाले इस रहस्य को जानते हैं । जिन्हें प्रेम-मार्ग पर चलने में लोक परलोक सुख की हानि समझ में आवे, उनके लिये समझ लीजिये कि वे कच्ची लगन वाले हैं ।

श्रीआचार्य चरण अपनी दशा बताते हुए कहते हैं कि अपार रस से भरा हुआ जो स्नेह रंग में रँगा गया, उसके लिये दोनों लोकों के सुख तथा गृह सुख आदि तुच्छ प्रतीत होते हैं ।

यदि प्रेम साधना में कष्ट झेलने की समस्या आवे तब समझना कि यह कष्ट सहाकर, हमारे प्रियतम हमारा विशुद्धीकरण कर रहे हैं । देखिये सोना जब अग्नि ताप सहता है, तभी उसके सभी विकार जल जाते हैं । सोना विशुद्ध हो जाता है ।

"कनकहि बान चढ़ै जिमि दाहे । तिमि प्रियतम पद नेह निबाहे ।।"

किन्तु सोने के समान कष्ट ताप सहना मुशकिल बात है, इसी डर से प्रेम मार्ग पर चलना आरम्भ नहीं करते ।

* आठवाँ अध्याय *

॥ इश्क के अधिकारी ॥

❀ मूल छंद ❀

९३—बंदा खूब अजूब वही है जिसे वंदगी प्यारी।
जिकर जाहरी सकल गुजारी जिसम गंदगी भारी॥
नजर शाम औ सहर वहरदर पाय इश्क छवि धारी।
युगलानन्य शरन साबित दिल पावत प्रीतम प्यारी॥ २७॥

वंदा (वंदः फा०)=सेवक। वंदगी=सेवा। जिकर (जिक्र अ०)=चर्चा। जाहरी=वाह्य जगत की। गुजारी=त्याग दी। जिसम (जिस्म अ०)=स्थूल शरीर। नजर अ०=दृष्टि। सहर अ०=प्रातः। वहरदर=सब ओर। सापित अ०=स्थिर, दृढ़।

भावार्थः—सेवानिष्ट भगवद्भक्त तो वेही अनोखे और अत्युत्तम कहावेंगे, जिन्हें श्रीलड़ैतीलाल जू की राजसी (मंदिर विहारी की) वा मानसिक सेवा, प्यारी हो। ऐसे प्रभु-सेवक वाह्य जगत की समस्त चर्चा तथा परम अपावन स्थूल शरीर की चिन्ता त्याग देते हैं। मानसिक सेवा के लिये अन्त-र्जगत में सुदृढ़ स्थिति प्रयोजनीय है, परन्तु वाह्य चर्चा और चिन्ता से वृत्ति वहिर्मुखी होती है। मानसिक सेवा सें ध्यान देश में प्रियतम का साक्षात्कार होता है। निरन्तर ध्यान से ध्येय रूप चित्त में ऐसे खचित हो जाते हैं कि वाह्यनयनों से भी वही सर्वत्र व्यापक रूप में दीख पड़ते हैं। अतः सायं प्रातः सब समय, सब जगह, उन्हीं को देखते देखते, उनकी सुछवि के प्रति इश्क हो जाता है। श्री-आचार्य चरण का सुनिश्चिन्त सिद्धान्त है कि ऐसे ही दृढ़ हृदय वाले, श्री अयोध्या विहारी प्रियतम प्यारी को प्राप्त करते हैं।

॥ मूल छन्द ॥

९४—इश्क किये विन वृथा वाद वद वावर वाल विलापी है।
पावें परम प्रमोद कहाँ कमनीय उमंग कलापी है॥
टूक टूक चित चूक हूक सें रहित होय थिर थापी है।
युगलानन्य शरन सब ही विधि सो माशूक मिलापी है॥ २८४

शब्दार्थः—वाद=वादविवाद। वद=कहना। वावर=वावला, पागल। विलापी=रोने वाला। कमनीय=कामना करने योग्य। कलापी=मोर, कोयल। चूक=गलती, छल। हूक=खटका। थापी=स्थिति वाल, जमने वाला। मिलापी=मिलने वाला। माशूक=प्रेमास्पद श्री कौशलेन्द्र कुमार।

भावार्थ—प्रेम देश में कोरी कथनी मात्र से काम नहीं सरने को, यहाँ तो करनी चाहिये। जो केवल कहने मात्र में लगे हुये हैं, वे इश्क देश के लिये पागल हैं, बच्चे के समान निष्प्रयोजन रोने वाले हैं। प्रियतम घनश्याम राम सुजान के दर्शनानन्द में मयूर की भाँति नाचने का उमंग है, ऐसे परमानन्द को उन्हें कहाँ मयस्सर जो कथक्कड़ मात्र ही हैं? सच्चे आशिक का हृदय प्रियतम के विरहावेश में फटकर टुकड़ा टुकड़ा हो जाता है। संयोग दशा में मयूरी वृत्ति तथा वियोगावस्था में मीनी वृत्ति धारण करने वाले ही खटके (हूक) से रहित हो जाते हैं। उन्हीं की बुद्धि व्यवसायात्मिका, निश्चयात्मिका (थिरथापी) होती है। उपर्युक्त गुणों से विशिष्ट आशिक हो प्रियतम मिलन के पात्र हैं।

॥ मूल छन्द ॥

९५—जन अभिजन गुन रूप कांति प्रभुता की तहाँ न गिनती है।
दान मान नहि पंथ ग्रंथ सब से वह विलग वसंती है॥
सम्प्रदाय नहिं ज्ञान ध्यान तहँ केवल प्रीति एकंती है।
युगलानन्य शरन आशक बिन को बूझै रस रंती है॥ १४॥

शब्दार्थ:—जन=जाति। अभिजन=कुलीनता। गुण=धर्म, सुकृत। शील=स्वभाव। गिनती=महत्त्व। रूप=सौन्दर्य। कान्ति=शारीरिक शोभा। प्रभुता=मालिकपन, महत्त्व। पंथ=मत मजहब। ग्रन्थ=सच्छास्त्र। वसंती=वास करते हैं। (प्रेम देव) सम्प्रदाय=उपासना की परंपरागत पद्धति। एकंती प्रीति=अनन्य प्रेम। रंत सं०=प्रेम। रंती=प्रेम सम्बन्धी।

भावार्थ—जाति, कुलनीता, शील स्वभाव, शारीरिक रूप कान्ति, प्रभुत्व आदि गुण लोक जीवन में आदरणीय माने जाते हैं। परन्तु इश्क प्राप्ति में इनसे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। दान, मान, धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय आदि स्वर्ग सुख प्राप्त कराने में भले सहायक हों, किन्तु प्रेमदेव का वास इन सभी साधनों से निरपेक्ष, पृथक रूप से स्वतंत्र है। साम्प्रदायिक पद्धति की उपासना भगवद्धाम प्राप्त कराती है। ज्ञान से कैवल्य मोक्ष मिलता है। ध्यान से योग सिद्ध होता है। किन्तु इश्क के लिये, इन सबों की भी अपेक्षा नहीं। उसकी सिद्धि तो अनन्य प्रीति से ही संभव है। तात्पर्य यह है कि इश्क ही साधन है और साध्य भी। श्री आचार्यचरण का कथन है कि प्रेम सम्बन्धी रस रहस्य के मर्मज्ञ एक मात्र भुक्तभोगी, अनुभवी आशिक ही हो सकते हैं। दूसरा कौन समझेगा?

"है अजूब इह वसल असल लय लावेंगे। खुदी खराबी छोड़ि खाक मिलि जावेंगे॥
चश्मा इश्क लगाय परम प्रिय पावेंगे। युगलानन्य शरन आशक मन भावेंगे॥" ७७

श्री प्रेम उमंग, २०८

❁ मूल छन्द ❁

९६—जीवत ही लक्कर ह्वै जावे सो सक्कर को खावेगा।
कोह मोह से टक्कर लेवे तब फक्कर पद पावेगा॥

जादू जाहिर चक्कर मक्कर छोड़ि स्वरूप समावेगा।
युगलानन्य अनूप नाम धुनि सुनि सुनाय सरसावेगा ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—लक्कर=सूखा काठ। शक्कर फा०=चीनी। कोह=क्रोध। मोह=अज्ञान। टक्कर लेना=आघात झेलना। फक्कर=निष्किंचन साधु। जादू=यन्त्र मन्त्र। जाहिर = वाह्य जगत। चक्कर=धोखे बाजी। मक्कर=टकोसला, ढोंग ढाँग। सरसावेगा=प्रेम रस सजावेंगे।

भावार्थः—स्थूल शरीर का धर्म है, यह जैसे जैसे घी दूध आदिक पौष्टिक आहार से पुष्ट होगा, इस शरीर में स्थित कामादि विकार एवं विषय लिप्सा भी पुष्ट होती जायगी। उपवास, मिताहार के द्वारा शरीर ज्यों ज्यों कृश होगा, त्यों त्यों विकार एवं विषय वासना भी क्षीण होती जायगी। विषय रस हीन (नीरस) कृश शरीर के द्वारा ही प्रेम माधुरी का रसास्वादन संभव है। क्रोध मोह से उपलक्षित समस्त विकारों से जूझ कर, इन्हें पराजित करने वाले साधन शूर ही निष्किंचन विशुद्ध सन्त के उच्च पद पर प्रतिष्ठित होंगे। भोग सामग्री संग्रह के लिये, अर्थ संग्रह किया जाता है। अर्थ संग्रह के निमित्त विरक्त समाज में भी कई रीतियाँ प्रचलित हैं। कोई यन्त्र मन्त्र सीख कर, कोई बाक्य चातुर्य से, कोई दिखावटी भड़कीले वेष भूषा का स्वांग सजकर, परवित्त का अपहरण करके अर्थ संग्रह करते हैं। ये ढोंग ढाँग प्रेम प्राप्ति के बाधक हैं। इनसे वृत्ति वहिर्मुखी होगी। अपने दिव्य सखी स्वरुप में स्थिति नहीं हो पायगी। आचार्य श्री का उपदेश है कि सभी भगवन्नामों से उत्कृष्ट, श्रीसीताराम नाम है। संगीतादिक सभी मन-मोहिनी ध्वनियों से श्रीराम नाम ध्वनि भी अधिक चित्ताकर्षिणी है। अतः ऐसे नाम को बैखरी वाणी में उच्चारण करके स्वयं अपने कान से सुनें तथा अपने सर्वव्यापक युगल सरकार को सुनावें। इससे हृदय में प्रेम रस का संचय होगा। दूसरों के द्वारा समुच्चरित नाम श्रवण से भी यही लाभ लूटा जा सकता है।

॥ मूल छन्द ॥

६७—जो मारे तरवार यार हुशयार शीश तब देते हैं।
जो बोले कटु बैन चैन हर तब सम सुधा सहेते हैं ॥
करत निरादर आदर अति मन मानि सजे हिय हेते हैं।
युगलानन्य शरन सब ही विधि द्वार गहे गुन लेते हैं ॥२७३॥

शब्दार्थः—यार=प्रियतम राघव जू। हुशयार फा०=बुद्धिमान, चतुर। बैन=वचन। चैन=शान्ति। सुधा=अमृत। सहेते हैं=तुक बैठाने के लिये सहते को सहेते। हेते=प्रेम। गुन लेते हैं=प्यारे के अवगुण को भी गुण ही मानते हैं।

भावार्थः—अपना मनभावन प्राणप्यारा, यदि किसी कारण वश, हाथ में नंगी तरवार लेकर, आशिक का शिर उतारने आवे, तो प्रेम चतुर, सहर्ष उसके सामने नत मस्तक होकर, अपना शीश समर्पण करता है। लीजिये प्यारे, यह शीश तो पहले से ही आपको समर्पित है। अपना

प्यारा, हो सकता है प्रीति परीक्षा के निमित्त ही, हृदय को क्षुब्ध एवं अशान्त बनाने वाला कटु बचन कहे, तो उस प्रियतम मुख श्रुत वाणी को सुधा सानी मान कर हर्ष पूर्वक सहन कर लेते हैं। यदि प्यारा निरादर करे, अपमान करे, तो उस प्यारे का सारा व्यवहार प्यारा मानकर, उसमें आदर मान का भाव करके, उससे और भी अधिकाधिक प्रेम बढ़ावें। प्रियतम चाहे अनुकूल या प्रतिकूल व्यवहार करे, प्रत्येक स्थिति में उसीं के द्वार का सेवन मन से करते रहना चाहिये। विपरीत व्यवहार में भी उसके गुण ही दर्शन करना चाहिये। हमारे, प्रीति रीति, शील सनेह निवाहने वाले प्राणनाथ श्री रघुनाथ जी के द्वारा उपर्युक्त विपरीत व्यवहार कथमपि संभव नहीं। यह तो प्रेम शास्त्र का नीति वचन है।

'लगन निबाहें ही बनि आवे।...............
अपने मन न रह्यो भयो परवश, कैसोहि न्याय चुकावै।............
सीस उतारि चरन ठुकरावै, तब निज भाग सिहावै।
झिराकि निरादर करत कोप जब, गुन गहि कहि अपनावै।
अवगुन बहुत सुगुन नहिं रंचक, तउ उनके गुन गावै॥

—: मूल छन्द :—

९८—गार मार जो सहे यार की तब आशक पद पावे।
महल मुराद मनो उर हासिल मेहर सनम सरसावे॥
वदन निहारि नेह नैनन युन जीवन जान जिलावै।
युगलानन्य सनेह गली में दूजा कहाँ समावै॥ १८९॥

शब्दार्थः—गार=गाली। मुराद अ०=अभिलाषा। मेहर=कृपा, करुणा। वदन=प्रियतम मुख चन्द्र। निहारि=देख कर। सनम अ०=प्रियतम।

भावार्थः—प्रीति रीति है कि अपने प्रियतम की दी हुई गाली को सहर्ष सुनना चाहिये। नेह नीति भी यही कहती है कि प्यारा जब लात द्वारा आघात करे, तो उसे दुलार की ही प्रक्रिया मानो। ऐसे ही सहनशील सज्जन आशिक की स्पृहनीय पदवी पा सकते हैं। प्रियतम के प्रत्येक विपरीत व्यवहार में कृपा निधान की कृपा ही का दर्शन करना चाहिये। माने कि अहा! मैं तो मनोरथ सफलता के महल ही में पहुँच गया। देखो न, प्यारे की मृतक जियावनि सुधा सानी वाणी सुनने को कान कितने तरस रहे थे, आज गाली के ही व्याज से सही वही चिरेप्सित वाणी सुनने को मिली हैं। मारने आवे तो दर्शनानन्द लूटें। निशाचर मारीच से सीखें!

'मम पाछे धर धावत, लिये सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहि विलोकि हौं, धन्य न मो समा आन॥"

प्रियतम के प्रतिकूल व्यवहार को भी अनुकूल मान कर, उसमें भी हर्ष मानने वाले ही सनेह की संकरी गली में समा सकते हैं।

"खोर हैं रस की साँकरियाँ।
पायन गरि गरि जाय कसक की पैनी काँकरियाँ।
तापै चलै न कोई गरब की लै कै गागरियाँ।
'हरि' घूमैं इक प्रेम रँगीली पिय की नागरियाँ॥"

॥ मूल छन्द ॥

९९—नेह नगारा बाजा जिस घर सोई नर तर ताजा है।
जाग उठा नींदों से गुनि के सुनि के गहर अवाजा है॥
पूजनीय सर्वोपर सब विधि बेशुबहे उह राजा है।
युगलानन्य शरन सावित चित तख्तशाह छबि छाजा है॥१०९॥

शब्दार्थः—नगारा=डंका। तर=तत्कालीन। ताजा (ताजः फा०)=हराभरा, आनन्दित। जाग उठा निंदो से='जानिय तबहिं जीव जग जागा। जब सब विषय विलास विरागा॥" गुनिके=प्रभाव विचार कर। गहर=गूढ़ अभिप्राय युक्त। सर्वोपर=सब से बड़ा। बेशुबहे (बेशुबह: अ० फा०)=निस्सन्देह। उह=वह। सावित=सुदृढ़। तख्त शाह फा०=राज्यसिंहासनासीन, गद्दी नशीन। छवि=शोभा। छाजा=सम्पन्न।

भावार्थः—स्नेह देव के हृदयभवन में आविर्भाव होते ही, उनके शुभागमन सूचक नगाड़े की गड़गड़ाहट अनुभव गोचर होती है। जिसे ऐसा सौभाग्य प्राप्त हुआ वही अभिनव आनन्द से हरा भरा होता है। उस गूढ़ अभिप्राय गर्भित डंके की ध्वनि पर, उसके प्रभाव पर विचार करता है और तुरत चैतन्य हो जाता है। समझ लेता है अब मुझे हरि गुरु संत कृपा से दुर्लभ भगवत्प्रेम की प्राप्ति हो गई। अब इनकी सुरक्षा के लिए सभी विषय भोगों का सद्यः त्याग करना चाहिये।

'जे रघुवीर चरन अनुरागे। तिन सब भोग रोग सम त्यागे॥'

प्रभुप्रीति रूपी महान संपति जिसे मिल गई, वही सर्वाधिक पूज्य है।

'नीच जानि मेरे नेहिन को जो कोउ आँख देखावै।
अतिशय बड़ा बनाऊँ तिनको ब्रह्मा शीश नवावै॥' श्री 'रामकलेवा'

इसमें सन्देह नहीं कि नेह देश पर, जिसका अधिकार हो गया, वही वस्तुतः राजा है। उसका राज्य अनन्तकाल तक टिकाऊ रहेगा। स्नेहवंत ही सुदृढ़ सिंहासनासीन नृपति की शोभा से सम्पन्न होते हैं, लौकिक नरपति की आज्ञा केवल नर जाति ही मानती है। स्नेही की आज्ञा चराचर मात्र को मान्य है।

तीसरा खंड, आशिक प्रकाश

पहला अध्याय, आशिक लक्षण

दूसरे खंड में हम इश्क (स्नेह) तत्व के स्वरूप, इश्क प्याला, इश्क दशा, इश्क में विरह, इश्क का मतवालापन, इश्क पंथ कठिनाई, इश्क अधिकारी आदि विविध अंगों पर विचार कर चुके हैं। अग्रिम खंड में आशिक तत्त्व के विविध अंगों पर विचार किया जायगा।

॥ मूल छन्द ॥

१००—हम विषयी दिलदार यार के विषय हमारा सच्चा है।
इश्क चमन महबूब खूब वर बुलबुल बेगम नच्चा है॥
शवो रोज माशूक खोजकर सो आशक रस सच्चा है।
युगलानन्य विना इह लच्छन भजन भावना कच्चा है॥२१८

शब्दार्थः—विषयी=शब्द, रूप रस, गंध और स्पर्श सेवी। दिलदार=जिसके पास मेरा दिल है। यार=प्रियतम। सच्चा=नित्य स्थायी। चमन=पुष्प वाटिका। बेगम फा०=निश्चिन्त। शवों=रात। रोज=दिन। रच्चा (राँचा)=अनुरक्त हुआ।

भावार्थः—हम अपने प्रियतम मनहरण श्रीरघुलालजू के विषयी हैं। हमारे कान, उन्हीं की चर्चा, उन्हीं की श्रीमुखवाणी सुनने को समातुर रहते हैं। नयन आपही के रूपदर्शनों के लिये चातकी वृत्ति ग्रहण किये हुये हैं। जीभ, आपही के अधरोच्छिष्ट प्रसाद की लोलुप है। नासिका, आपही की अंगसौगन्ध्य, निर्माल तुलसी पुष्प की सुगन्ध. सूँघने को व्यग्र वनी रहती है। त्वचा, आपही के श्री अंगों के संस्पर्श के लिए ललचाया करती है। मायिक विषय सुख, भोक्ता, और भोग्य सभी नश्वर हैं। हम विषयी आशिक, हमारे विषय श्री रघुलाल मनहरण प्यारे नित्य हैं, अविनाशी हैं। अपने प्रेमास्पद श्री प्रमोदवन विहारीलाल के इश्क रूपी परमोत्तम पुष्पवाटिका की शोभा सरसाने के लिये. तथा वहाँ का आनन्द लूटने के लिये, हमारा मन बुलबुल बन गया है। हम मनसे उन्हीं के प्रेमपूर्ण यशोगान करते हुये, उसी इश्कवाटिका में, प्रेमोन्मत्त होकर नाचते रहते हैं। इश्क रस में पगे आशिक को अपने महबूब के बिना चैन नहीं। वह रात दिन उन्हीं के फिराक में वन वन का खाक छानता फिरेगा।

"हेरो री सखि स्याम सजन को।
वन वन विरह विथा व्याकुल ह्वै, रहस यही विरही के भजन को।
छन छन नवल नेह नूपुर धुनि, सुनिये सुहावन हियरे रंजन को॥
मिले विना महबूब गिलापी, हम सब कहँ नहि काज जजन को।
युगल अनन्य पाय प्रीतम पद, काहू भाँति न मीत तजन को॥" सं० सु० प्र०

जिस साधक में उपर्युक्त लक्षण प्रगट नहीं हुये, उसकी भजन भावना सब नकली है, भजन का ढकोसला मात्र है।

॥ मूल छन्द ॥

१०१—क्या कुदरत मेरी प्यारे जो कहें सुगुन निज नेही का।
शेष शारदादिक हारे नहि पावें पार निरेही का॥
जिनके वशवरती वल्लभ जो चोरचो चित्त विदेही का।
युगलानन्य शरन सेवक सब तौर सही गुनगेही का॥ १३॥

शब्दार्थः—कुदरत (कुद्रत अ०)=शक्ति । प्यारे=पाठक के लिये दुलारमय संबोधन । निज=यथार्थ, सच्चे। निरेही (निरीही सं०)=कामना, वासना शून्य प्रेमी। विदेही=देहभान भूले परमहंस, श्री जनक जी। गुनगेही=गुणगण निधान।

भावार्थः—कविश्री कहते है—प्यारे पाठक, मुझमें ऐसी शक्ति कहाँ, जो सच्चे आशिकों के सद्-गुणों का वर्णन कर सकूँ ? बात यह है कि

"यस्यास्ति भक्ति र्भगवत्यकिञ्चना सर्वै र्गुणैस्तत्र समासते सुराः।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा मनोरथेनासति धावतो बहिः॥"

श्री भागवत ५।१८।१२

अर्थात् जिस निष्काम हृदय में भगवद्भक्ति हुलस रही है, वहाँ सभी दिव्य गुणगण आकर बस जाते हैं, अभक्तों के चित्त नाना तुच्छ मनोरथों के पीछे बाहर बाहर भागते रहते हैं। वहाँ कहाँ महान गुणगण ?

सच्चे आशिकों के गुण गान करने में पाताल वासी वक्ता शिरोमणि भगवान शेष, एवं ब्रह्मलोक वासिनी वाणी की देवता स्वयं सरस्वती जी भी, पार नहीं पातीं।

"विधि हरिहर कवि कोविद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी॥"

ऐसे आशिक अपने गुण गण रूपी डोरी से, सर्व तंत्र स्वतंत्र, ऐश्वर्य महोदधि श्री रघुनायक जी को बाँध कर स्ववश में किये रहते हैं। सौन्दर्य माधुर्य सुधा सिन्धु ने श्रीविदेहराज के चित्त को भी चुरा लिया था, पर वे आशिक के हाथ स्वयं बिक जाते हैं। हमारे आशिक श्रद्धानिष्ट आचार्यश्री कहते है कि हम तो तन, मन, वचन, सब प्रकार से अनन्त सद्गुण गण निलय श्रीराम आशिकों के दासानुदास हैं।

"महिमा संत अनंत भने श्रुति सारदा। जिन बस कीहें परम परेश विशारदा॥
दरस परस युग सहस बरप जप जाग फल। हरिहाँ, लहैं सुजन अनयास रहित मद मोह मल॥"

—श्री प्रेम प्रकाश, ५३४।

॥ मूल छन्द ॥

१०२—रस रूपा प्रेमा प्रधान रसखान इश्क के संगी हैं।
विधि निषेध उपखान गान बंधान बयान असंगी हैं॥
जीवन जान पियूष रूप गुन उठत हमेश तरंगी हैं।
युगलानन्य आशक सरसब्ज सीय पिय संगी हैं॥ १२॥

शब्दार्थः—रस रूपा=मधुर रस के अनुरूप। प्रेमा=प्रेमाभक्ति। प्रधान=प्रमुख, इत्यादि से तात्पर्य परा तथा प्रौढ़ाभक्ति है। रस खान=दीप देहरी से प्रेमा, परा, प्रौढ़ा भी रसों की खान है तथा अग्रिम शब्द इश्क भी रसखान है। संगी=साथ रहने वाले। विधि निषेध=कर्मकांड (विधि-निषेध मय कलिमल हरनी। करम कथा रविनंदिनि बरनी॥" बयान फा०=बखान, वर्णन। असंगी =तटस्थ, अलग रहने वाले। तरंगी=आवेश। सरसब्ज फा०=आनन्द से हरा भरा, प्रेमधन से मालोमाल। अंगी=अंग के समान।

भावार्थः- आशिक के संग संग, उनके हृदय में, प्रेमा, परा एवं प्रौढ़ा भक्ति के साथ रस भंडार इश्क की सदैव रहते हैं। इनसे कभी भिन्न नहीं होते। नई नई पंथाई वाले अपने कल्पित मत के प्रचार प्रसार के लिये अपने प्रवचनों में दृष्टान्त रूप में कभी पौराणिक या कल्पित आख्यानों, कथाओं की ओट लेते हैं। अपने प्रचार को आकर्षक बनाने के लिये प्रवचन मंच पर संगीत की योजना करते हैं। नाना वागाडम्बरों के सहारे अपने मत का वखान करते हैं। यथा—

"साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान।
भगति निरूपहि भगत कलि निंदहि वेद पुरान॥" श्री दोहा वली, ४४४।

परन्तु आशिक इन लोकैषी समाज से तटस्थ रहकर, अपने माशूक के हृदय भवन में पधरा कर, उनसे लाड़ लड़ाया करते हैं। अपने माशूक श्री जानकी रमण आपके प्राणों को प्राण हैं। उनके रूप गुणों के भावावेश आपके हृदय में उथल पुथल मचाये रहते हैं। ऐसे इश्क धन से मालोमाल (सरसब्ज) आशिक श्री सीताकांत के अंग स्वरूप ही हैं। अर्थात् "संत भगवंत अंतर निरंतर नही"॥ नहीं नहीं "सुनु खगपति मोहि अति विस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा॥"

१०३—पल पल पीर प्यार प्रीतम पद प्रेम प्रवाह बहावै है।
जल थल मधुर मनोज मोहनी मूरति लखि हुलसावै है॥
अलवल वचन नहीं छलमल अति असल प्रमोद समावै है।
युगलानन्य शरन आशक लाशक सिय श्याम सोहावै है॥ २१॥

शब्दार्थः—पीर=प्रेम की टीस। प्रेम प्रवाह=धारा प्रवाह अविच्छिन्न प्रेम। जलथल=नदी, सरोवर, समुद्र आदि जलाशयों में, वन, पर्वत, नगर देश आदि स्थलों पर, उपलक्षण से आकाश में भी। मधुर=नित्य नई नई छवि छटा छिटकाने वाले। मनोज=कामदेव। मूरति=श्री जानकी रमण का सुन्दर विग्रह। हुलसावे=आनन्द मग्न होते हैं। अलवल वचन=प्रियतम चर्चा से भिन्न वार्ता। छल मल=छल कपट की मलीनता। समावे=मग्न रहते हैं। लाशक=निः संदेह।

भावार्थः—आशिकों के मानसिक लक्षण वताते हैं। इनके हृदय में प्रितम पादारविन्द के प्रति अथाह लाड़ प्यार भरा रहता है। उस प्रेम की कसक क्षण क्षण में मीठी मीठ टीस मारती रहती है। प्रेम को अलक्ष्य मधुर मन्दाकिनी सतत अन्तः स्थल में अन्तःसलिला फल्गु नदी की भाँति बहती रहती है।

वाह्य चक्षु से भी, क्या जल में, क्या नभ में, सर्वत्र उसी चराचर मोहन, मदन मोहन, नित्य नवायमान छविधर प्राण प्यारे रघुराज दुलारे की मूर्ति दीख पड़ती है। उसी दर्शनानन्द मद में माते रहते हैं। अपने प्राण सर्वस्व प्रियतम की प्यारी चर्चा छोड़ कर, व्यर्थ वचन उनके मुख से कभी निकलता ही नहीं। छल रूपी मल उनके हृदय को छू तक नहीं पाता। ऐसे आशिक सच्चे स्थायी परमानन्द सिन्धु में निरन्तर निमग्न रहते हैं। हमारे श्री आचार्य चरण का सिद्धान्त है कि उपर्युक्त लक्षण सम्पन्न आशिक निःसन्देह श्री सीतारमण जू के अतिशय प्यारे है। श्री युगल किशोर इनसे पृथक रह नहीं सकते ॥

॥ मूल छन्द ॥

१०४—कंज कलाप कलाप खूब रचि ताप तिमिर दलि दाँके हैं।
काम कला कौतुकी कोटि कल कातिल करन कजा के हैं॥
अति आसक्ति भक्ति सीतावर रहस रंगीन रजा के हैं।
अनवधि अकल अजूब खूब श्री अवध शहर के बाँके हैं॥ ६२ ॥

शब्दार्थः—कंज=कमाल। कलाप द्विअर्थक=१—समूह, २—चन्द्रमा। ताप=जलन। तिमिर=अन्धकार। दलि=नष्ट कर। दाँके=विजय गर्जन किया। काम=कामदेव। कला=छल कपट। कौतुकी=खेल तमाशा प्रिय। कोटि=करोड़ों। कल=युक्ति पूर्वक। कातिल=कत्ल करने वाला। कजा फा०=मृत्यु। रजा अ०=आज्ञा, मरजी। अनवधि=सीमा रहिता। बाँके=वीर बहादुर बने ठने सुन्दर। अकल=कपट चतुराई रहित। खूब अजूब=बड़े विलक्षण।

भावार्थः—आशिकों के हृदय को विरह ताप अधिक संतप्त करता रहता है। तथा प्रियतम मिलन में अति विलम्ब देखकर, निराश देश का अन्धकार (तिमिर) भी हृदय देश को आच्छादित किये रहता है। इन दोनों के शमन के लिये चतुर आशिक ने सुन्दर युक्ति बना ली है। हृदय के (विरह) ताप शमन के लिये तो शीत स्पर्श कमल समूह (कंज कलाप) हृदय ही में सजा रखा है और निराशा तिमिर के शमन के लिये अनेक चन्द्रमा समूह (कलाप कलाप) उसी हृदय देश में उदित करा रखा हैं। अब आप भी उन कमल एवं चन्द्र समूहों से परिचित हो जायँ अतः उनकी सूची आगे दी जाती है। श्री युगल किशोर के सम्पूर्ण श्री विग्रह इनके हृदय देश में प्रगट है। उनमें १—श्रीयुगल मुख कमल, २—कर कमल, ३—चरण कमल, ४—नयन कमल, ५—वनमाला अन्तर्गत कमल, ६ करकंज में फिराने वाले क्रीड़ा कमल, ७—कमल कोमल एवं शीतल अंग प्रत्यंग। चन्द्र समूह (कलाप कलाप) के नाम से भी आपको परिचय होना चाहिये। १—श्रीयुगल मुख चन्द्र २—ललाट अर्द्ध चन्द्र, ३—कपोल चन्द्र, ४—नखचन्द्र। इस उपाय से ताप और अन्धकार पर जब आशिक ने विजय पाई, तब तो विजय का गर्जन किया (दाँके) हैं। कामदेव परमार्थ साधकों को छलने की कोटि कोटि कला जानता है। खेल कौतुक में ही उन्हें परमार्थ भ्रष्ट कर देता है। उस छलिया कामदेव को कत्ल करना उसे मौत के घाट पार उतारने की युक्ति यही आशिक जानते हैं।

'जहाँ काम तहँ राम नहिं, जहाँ राम नहिं काम।
तुलसी कबहुँ न रहि सकै, रवि रजनी इक ठाम॥'

ऐसे आशिक श्रीजानकीरमणजू की मधुराभक्ति में अत्यन्त आसक्त रहते हैं। रंगदार युगल विहारमयी केलि क्रीड़ाओं में मनोनुकूल (रजा के) सरस सेवा सजने वाले होते हैं। निस्सीम सुख सिन्धु श्री अवध (अनवधि अवधि) के ऐसे आशिक बड़े अनोखे (अजूब खूब) एवं छल कपट हीन (अकल) किन्तु वीर बहादुर (बाँके) नागरिक हैं।

॥ मूल छन्द ॥

१०५—फाँका करे कबूल शूल सहि हिय अनुकूल हमेशे।
फानी फरस फनूस जहानी फरक फहम आवेशे॥
हरयक फन मजबूत चूत सम मधुर सरस बेरेशे।
युगलानन्य शरन लच्छन इह औवल वरन विशेषे॥१२४॥

शब्दार्थः–फाका (फाक: अ०)=उपवास। कबूल अ०=स्वीकार। शूल सं०=क्षुधा कष्ट। हिय अनुकूल=स्वेच्छापूर्वक। हमेशे (हमेशः फा०)=प्रायः, अधिकतर। फानी अ०=नाशवान। फरश (फर्श अ०)=गिलम गलीचे। फनूस फा०=दीपक की रंग बिरंगी चिमनी, जिससे रंगीले प्रकाश छनते हैं। जहानी=लौकिक। फरक (फर्क अ०)=अलग। फहम (फह्म अ०)=भाव। फ़न अ०=कला। चूत=आम का फल। औवल (अव्वल अ०)=सर्वश्रेष्ठ। वरन (वर्ण सं०)= श्रेणी। विशेषे=विशिष्ट, उत्कृष्ट।

भावार्थः—प्रस्तुत छन्द में सर्वोत्कृष्ट श्रेणी (औवल वरन) के विशिष्ट (विशेषे) आशिकों के लक्षण बताते हैं। ऐसे आशिक स्वेच्छापूर्वक (हिय अनुकूल) उपवास किया करते हैं। (फाका करे कबूल)। उपवास में क्षुधा कष्ट शूल सहि) को भी स्वेच्छा पूर्वक ही सहन करते हैं। उपवास का कारण असल तो यह है कि प्रियतम के विरह के मारे खान-पान इन्हें रुचता ही नहीं। दूसरा कारण है कि मायिक देश की सभी वस्तुएँ दोषपूर्ण हैं। शरीर निर्वाह के लिये इन्हें स्वीकार किये बिना काम ही नहीं चलने को। अतः इन बाह्य वस्तुओं को कम से कम मात्रा में लेने से विशेष दोष से बचेंगे। आगे आशिकों के नौ लक्षणों में एक लक्षण यह कहेंगे—'अशन सु दूजे तीजे' अर्थात् कभी दो दिनों पर, कभी तीन दिनों पर एक बार थोड़ा सा खालेंगे। लौकिक संपत्ति विलासी अपने बंगलें की मजाक की हुई गच्ची पर चित्र विचित्र गिलम गलीचे बिछायेंगे। ऊपर छत में, दीवालों की खूटियों में, झाड़ फनूस (पुराने ढंग की रोशनी) शीशा ग्लास आदि रंग विरंग के प्रकाश करेंगे। किन्तु भावावेशी आशिकों की दृष्टि में सभी जागतिक भोग पदार्थ नश्वर हैं। "चार दिनों की चाँदनी फेर अँधेरी रात॥" और इनका परिणाम विषवत् परमार्थ का नाशक है। अतः आशिक इनसे अलग (फरक) रहेंगे। आशिक का हृदय उस आम के पके फल के समान है, जिसमें मधुर रस तो लबालब भरा हो परन्तु रेशा खोजने पर भी एक न मिले।

॥ मूल छन्द ॥

१०६—दिलदारों की दूर दरकदीं दुनियें से कछु न्यारी है।
उस ही में मशगूल भूल हर लहजे रहे बहारी है॥
बोलन हसन मिलन तिसहीमय बाहर भान बिसारी है।
युगलानन्य शरन हम तो सोइ आशक की बलिहारी है॥२२॥

शब्दार्थः दिलदार फा०=प्रेम सरस हृदय वाले। दूर=बहुत ऊँचा। दरक (दर्क अ०)=विवेक, समझ। दीं दीन फा०)=विश्वासी। न्यारी=विलक्षण। (मशगूल मश्गूल अ०)=तल्लीन, निमग्न। भूल=वाह्यभान भूले हुए। हर लहजे (लहज: अ०)=प्रत्येक क्षण। बहारी फा०=आनन्दोल्लास। भान=सुधि।

भावार्थः—सहृदय रसिक रसज्ञ आशिकों के विवेक विश्वास, प्रीतिप्रतीति बहुत ऊँची स्थिति वाली होती है, जो संसार से सर्वथा विलक्षण है। आप अपनी उसी भावना में निमग्न होकर, अपने को भूले रहते हैं। क्षण क्षण में इनके भाव सिन्धु हृदय में आनन्दोल्लास की तरंगें लहराती रहती हैं। आशिकों के सारे व्यापार अपने माशूक श्रीजानकीरमण के साथ ऐसी घुलीमिली होती है कि उनकी वाणी में, हँसनि में, मिलन में, उसी मनहरण प्यारे की प्रीति सनी रहती है। मानों आप जगत में हैं ही नहीं। उसी लाडिले के साथ, लाड लड़ाने में लगे हैं। स्थूल शरीर रहते भी उनके लिये जगत का अभाव हो जाता है। हमारे परमाराध्य आचार्य श्री का संतनिष्ठ हृदय ऐसे आशिक पर निछावर हो रहा है।

॥ मूल छन्द ॥

१०७—दंपति नेह नवीन नाज अंदाज साज सज सोधे।
संपति गेह प्रवीन ताज रसराज उछाह प्रबोधे॥
कंपित गात रहे आलस वस अरस माँझ नहिं ओधे।
युगलानन्य शरन तिन की निज क्योंकर लखें अवोधे॥१६४॥

शब्दार्थः—नाजअंदाज (नाजो अंदाजा फा०)=हावभाव। साज=सामग्री। सज (सज्ज सं०=शोभा सजावट। सोधे=खोजे, अनुसन्धान करे। गेह संपति=श्रीकनक महल के भोगैश्वर्य। प्रवीन-ताज=चतुर चूड़ामणि। रसराज=श्रृङ्गार रस। उछाह=उमंग। प्रबोधे सं०=यथार्थ ज्ञान देते हैं। कंपित गात=शरीर में सात्विक भाव के कंप। आलस वश=मस्ती में। अरस=घृणित विषय रस। ओधे=प्रवृत्त होवे। निज=यथार्थ स्वरूप। लखें=समझे। अवोधे=अज्ञानी।

भावार्थः—आशिकों की खोज भी विलक्षण होती है। अन्तर्जगत में स्थित होकर आपके अनुसन्धान का विषय होता है श्रीकनक भवन विहारिणी विहारीलाल की पारस्परिक प्रीति रीति, परस्पर एक दूसरे को रिझाने वाले हावभावों के प्रकाश, श्रीमहल की शोभा सजावट इन्हीं अन्वेषित वस्तुओं

को अपने हृदय में सजाकर धारण करते हैं। ऐसे आशिकों को मधुर उपासना के प्रति श्रद्धा एवं उमंग भरी रहती है। चतुर चूड़ामणि श्री जानकी रसिक जू के दिव्य महल के भोगैश्वर्य का परिज्ञान तो यह उमंग ही करा देती है। दिव्य देश की भाव समाधि में मग्न रहने के कारण, बाहर से देखने वाले इन्हें अलसाये हुये से मानते हैं। परन्तु तमोगुण प्रधान आलस दशा में कंपादि सात्विक भावों के उदय कैसे होंगे ? दिव्य सच्चिदानन्दमय विहार देश में सदैव रहने के कारण, इस मायिक देश वाले दुर्गन्ध पूर्ण विषय भोग के प्रति इन्हें घृणा बनी रहती है। अतः वे भूलकर भी इसमें प्रवृत्त नहीं होते। कविश्री कहते हैं कि ऐसे रसिक रंगीले अलमस्त आशिकों के यथार्थ स्वरूप को माया मोहित अज्ञानी जीव क्या समझ पायेंगे ?

"अज्ञ मतिमंद सतसंग ते विमुख नर रसिक स्वरूप कोउ कैसे करि जानि हैं॥"

श्री रसिक प्रकाश भक्त माल का० ३३६।

॥ मूल छन्द ॥

१०८—लच्छन विशद विशेष चाहिये मिलन हेत सिय प्यारो।
संत शास्त्र संमत सनेह सर्वोपर सुहृद सम्हारो॥
श्री जानकी नाह नूतन अनुराग रहित सब खारो।
युगलानन्य लोक उत्तम अनुरागी सुकर विचारो॥ २३८॥

शब्दार्थः—विशद=निर्मल, निर्दोष। लक्षण=किसी वस्तु की वह विशेषता जिससे उस वस्तु की पहचान हो। विशेष=सर्व साधारण से अधिक। संमत=स्वीकृत। सर्वोपर=अर्थ, धर्म काम, मोक्षादि सभी पुरुषार्थों से ऊपर, श्रेष्ट। सुहृद=सुन्दर हृदय में। सम्हारो=संग्रह कर लो। नूतन=नित्यनवाय मान होने वाला। खारो=स्वाद हीन। सुकर=अपने हाथ में।

भावार्थः—दिव्य दम्पति श्री साकेत विहारी लाल जू से ललक कर मिलाने वाली कुछ विशेषता होती है। वह विशेषता केवल प्रेमार्थी साधकों में ही होती है। उसी को निर्मल लक्षण कहते हैं। उस लक्षण का नाम है स्नेह। श्री राघव स्नेहसंत शास्त्र की सम्मति में सभी साधन समुदाय का सर्वश्रेष्ट फल है। अतः इसे अपने हृदय में जोगाना चाहिये।

"वेद पुरान संत मत एहू। सकल सुकृत फल राम सनेहू॥"

स्नेह का स्वभाव कल्पवेलि के समान नित्य उलहने वाला, बढ़ने वाला होता है—

"प्रेम सदा बढ़िवो करे, जिमि ससि कला सुवेष।
पै पूनो यामें नहीं, ताते कबहुँ न शेष॥"

अतः स्नेह बढ़कर प्रेम की सातवीं भूमिका अनुराग तक स्वतः पहुँच जायेगा। प्राण नाथ श्री जानकी रमण के नित्य नवायमान होने वाला अनुराग ही महासुस्वाद अमृततमय फल है। इनसे भिन्न सभी पदार्थ आशिकों की दृष्टि में खारे है, स्वादहीन हैं। कविश्री कहते हैं कि महायोगेश्वरों के

लिये भी दुर्लभ, दुष्प्राप्य सर्वोत्तम लोक श्री साकेत धाम अनुरागी आशिकों के लिये हस्तामलक वत् सुलभ हो जाते हैं। वह चाहें किसी को भी दे सकते हैं।

॥ मूल छन्द ॥

१०६—सैन हराम करार न दर दिल इन्तजार धरि जीना।
सिरदरदी हर समे होश बिन प्रेम पियाला पीना॥
आलस भरे ढरे वाही दिशि ज्यों सुमीन जल लीना।
युगलानन्य शरन आशक के लच्छन लखहिं प्रवीना॥ २३३॥

शब्दार्थः—सैन (शयन सं०)=निंद भर सोना। हराम फा०=निषिद्ध, त्याज्य। करारअ० =चैन। दरदिल=हृदय में। इन्तजार फा०=प्रतीक्षा। धरि=धारण करके। सिरदरदी फा०=बेचैनी, मानसिक कष्ट। हरसमे=प्रत्येक क्षण। होश बिनु=संसार की सुधि बुधि भूले हुये। प्रेम पियाला=प्रेम माधुरी। आलस भरे=भाव समाधि में छक कर। ढरे=प्रवृत्त होना। सुमीन=प्रेम प्रवीण मछली। प्रवीणा=बुद्धि चतुर।

भावार्थः—सच्चे आशिक के और भी लक्षण बताते हुये, कहते हैं कि अपने प्रेमास्पद श्री जानकी रमण के विरह में इनके हृदय में चैन नहीं, नींद भरि सोना हराम हो जाता है।

"आठ पहर चौंसठ घड़ी, मेरे और न कोय।
नैना माहीं तू बसै, निंदहि ठौर न होय॥"

ऐसे आशिकों को प्राण धारण करने का अवलंब होता है प्रियतम से मिलने की आशा।

"राम दरस लगि लोग सब, करत नेम उपवास।
तजि तजि भूषन भोग सुख, जिअत अवधि की आस॥" २।३२२

इन्हें सदा बेचैनी बनी रहती है। देह गेह का भान भूले रहते हैं। प्रेम की मादक माधुरी अतृप्त बने छक छक कर पीते रहते हैं। भाव समाधि में मग्न हैं। चित्त की वृत्ति प्रियतम की लीला सहित रूप में आसक्त है। अन्तः करण की समस्त वृत्तियाँ उसी मनभावन की ओर झुकी रहती हैं। मीन की भाँति आप भी प्रियतम छवि जल में डूबे रहते हैं। प्रियतम विस्मरण को मरण मानते हैं। ऐसे आशिकों के लक्षण माया मोहित गृहासक्त व्यक्ति क्या जानेंगे! इन्हें पहचानते हैं तो प्रेम प्रवीण, अनन्य भुक्तभोगी आशिक ही॥

"लोक वेद विहित विशेष औ समान धर्म कर्म को विचारि कै प्रधान उर आनि हैं।
जाति विद्या धन आदि मद मतवारेन की संगति को त्यागि सतसंग भले ठानि हैं॥
नाम रूप धाम लीला गुन की प्रधानताई ईशता की हनि माधुरी की हद जानि हैं।
भाविक अनन्य के वचन में विश्वास जाके रसिक स्वरूप सोइ नीके पहिचानि हैं॥
श्री रसिक प्रकाश भक्त माल, कवित्त ३४०।

॥ मूल छन्द ॥

११०—बानी विनय मयी मानस मल रहित देह सुचि सरसे।
देखि दीन करुणा दृग हेरत सब सन सख्य सुदरसे॥
दीरघ गुन पूरन अवलोकत मुदिता मन मधि परसे।
युगलानन्य उपेच्छनीय खल पाँवर सदा अडर से॥२३०॥

शब्दार्थः—वाणी [वाणी सं०]=वचन। विनय मयी=अधीन भाव मिलित। मानस=हृदय। मल=कामादि विकार, छल कपट दंभ पाखंड। सुचि=पवित्र। दीन=गरीब, दुःखी। करुना दृग=करुणा भरी चितवनि से। हेरत=देखते हैं। सन=साथ। सख्य=मैत्र्य भाव। सुदरसे=भली भाँति दीख पड़ता है। दीरघ=वड़े वड़े। अवलोकत=दिखाई पड़ते हैं। मुदिता=पर सम्पत्ति देखकर प्रसन्न होना। परसे=[स्पर्श सं०]=छूता है। उपेच्छनीय (उपेक्षणीय सं०)=उदासीन रहना योग्य है। खल=दुष्ट स्वभाव वाले। पाँवर=पापी प्राणी। अडर=निर्भय।

भावार्थः—प्रस्तुत छन्द में आशिकों के प्रमुख गुण गण गिना रहे हैं। इनकी वाणी नम्रता और अधीनता मिली होती है। इनका हृदय विकार वासना शून्य पवित्र होता है। स्नानादि से वाह्य शरीर को भी पवित्र बनाये रहते हैं। दीन दुःखी प्राणी को देखते ही आपके नयनों में करुणाश्रु छलछला आते हैं। मानों उसका कष्ट आपके हृदय में भी व्याप गया हो। ये प्राणिमात्र के प्रति सौहार्द भाव, मैत्र्य भाव रखते हैं। कहाँ तक गिनाये जायें? महान गुण गण इन्हीं में भरे देखियेगा। औरों की सुख सम्पत्ति देख कर आनन्द से खिल पड़ते हैं। 'जे हरषहिं पर संपति देखी।' पापी दुष्ट प्राणी इनकी दृष्टि में सदा उपेक्षा करने योग्य हैं। और लोग इन दुष्ट आतातायियों से डरा करें, आशिक क्यों डरने लगे? सर्व समर्थ रक्षक इनके प्रियतम सदैव इनके साथ हैं।

❁ मूल छन्द ❁

१११—अंक अशंक सुनव आशक मनहरन श्रवन सुनि लीजे।
आह सर्द तन जर्द नैन नित नीर पीर सें भीजे॥
मधुर स्वल्पतर बचन उचारन अशन सु दूजे तीजे।
युगलानन्य शरन सीतावर तिन पर अधिक पसीजे॥२३२॥

शब्दार्थः—अंक द्वि अर्थक=१—संख्या, २-लक्षण। अशंक=निर्भय। सुनव=नौ संख्या। मन हरन=मनको प्रिय लगने वाला। आह=विरह का आर्तनाद। सर्द=(शरीर) ठंठा। जर्द=पीला पड़ जाना। नीर=आँसू। पीर=टीस, दर्द। मधुर=सुनने में मीठा। स्वल्प तर=बहुत कम। अशन=भोजन। सु दूजे=दो दिनों में एक बार। तीजे=तीन तीन दिनों पर एक बार। पसीजे=रीझते हैं, द्रवित होते हैं।

भावार्थ:—मनहरण नवल रघुलाल जू के आशिकों के नौ लक्षण पाठक अपने कानों से से सुन लें। १-सबसे सदा निर्भय रहना—'तुलसिदास रघुबीर बाहुबल सदा अभय काहू न डरे'। —श्रीविनय। २—हाय प्यारे! हाय प्यारे के आर्तनाद मचाये रहना। ३—विरह से शरीर विवर्ण होकर पीला पड़ जाना, ४—नयन निरन्तर आँसुओं से तर रहना, ५—कलेजे के भीतर विरह की पीड़ा अथवा नयनों में प्रियतम दर्शन का कष्ट। ६—मिष्ट भाषी, ७-बहुत कम बोलने वाले। ८—शरीर मरण काल जैसा ठंठा पड़ जाना, ९—दो दो तीन तीन दिनों के बाद बहुत थोड़ा सा भोजन करना। ऐसे विरह विह्वल कृशांग आशिक पर श्री जानकी विहारी अधिक करुणार्द्र होकर द्रवित हो जाते हैं।

—: मूल छन्द :—

११२—जिसन् सहज शौक़ कायम दम तिसनू दर दिल मक्का।
लैल निहार यार रुख दीदन गुफ़तम सखुन अशक्का ॥
रोजा जोहद निवाज साज सब इसम मोबारक हक्का।
युगलानन्य मुरीद माहरु हरदम छवि निधि तक्का ॥२२४॥

शब्दार्थ:—(जिस) नू (पं०)=(जिस) को। सहज=स्वाभाविक। शौक़=लगन। कायम अ०=स्थायी। दम फा० (श्लेष) = १-समय, २-जीवन। दर फा०=भीतर। दिल फा०= हृदय। मक्का (मक्कः अ०) = दिव्य भगद्धाम। लैल अ०=रात्रि। निहार=दिन। रुख= मुख। दीदन फा०=देखना। गुफ़तम फा०=बोलना। सखुन फा०=वचन। अशक्का=संशय रहित सत्य। रोजा (रोजः फा०) = उपवास, व्रत। जोहद फा०=सत्कर्म। निवाज फा०=भगवत्प्रार्थना। इसम (इस्म अ०) =नाम। मोबारक अ०=मंगलमय। हक्का अ०=भगवान का। मुरीद अ०=भगवद्भक्त। माह अ०=चन्द्रमा। रु अ=मुख। तक्का=अवलोकन क्रिया।

भावार्थ:—जिसके हृदय में जीवन पर्यन्त (कायम दम) सब समय (कायम दम) श्रीराम लगन जगी रहती है, उसका हृदय दिव्य अयोध्यापुरी (मक्का) है। ऐसे आशिक दिवा रात्रि निरन्तर अपने प्रियतम के मुख चन्द्र में अपनी अन्तर्दृष्टि को चकोर बनाये रहते हैं। वह सदा यथार्थ सत्य वचन बोलेंगे। मंगल भवन अमंगल हारी सीताराम नाम जप को ही वे अपना व्रत (रोजा), यज्ञादि सत्कर्म (जोहद), भगवत्प्रार्थना (निवाज) आदि सभी साधन (साज सब) मानते हैं। आचार्य चरण कहते हैं कि ऐसे आशिक (मुरीद) छवि सिन्धु श्री वैदेही बल्लभलाल जू के मुख चन्द्र निहारा (तक्का) करते है। यहाँ प्रिय मुख दर्शन के लिये 'यार रुख दीनन' 'छवि निधि माहरु तक्का' दो समान वचन आये। इससे आशिक का सर्व प्रधान लक्षण इसी को कहा।

'दम्पति छवि अवलोकि दिवस निसि जीवति मधुर अली ॥'

११३—ज्यों हारिल लकड़ी नहि छोड़त प्रीत प्रतीत लही है।
जैसे चारु चकोर चंद से अदभुत रति निवही है॥
मूरख हठ शठ विविध वाद सज्जन सुचि सुरति सही है।
युगलानन्य शरन आशक आछी दृढ़ गहन गही है॥२१७॥

शब्दार्थः—हारिल=पक्षी विशेष। प्रीत=मधुराराति। प्रतीत=(इष्ट का) का विश्वास। लही है=(प्रभु कृपा से) प्राप्त। चारु=आदर्श प्रेमी। अद्भुत=लोक विलक्षण। रति=प्रीति। वाद=विवाद। सही सुरति=इष्ट स्मरण। गहन=पकड़।

भावार्थः—आशिक चार वस्तुओं को दृढ़ता पूर्वक पकड़कर, जीवन पर्यन्त उन्हें नहीं छोड़ते। १-इष्ट में प्रीति प्रतीति, २-अटूट विश्वास, ३-इष्ट मुखचन्द्र में टकटकी, और ४-इष्ट नाम का निरन्तरण स्मरण। नीचे इन्हीं चारों को विविध दृष्टान्तों से समझायेंगे।

हाड़िल पक्षी जीवनारंभ में एक सूखी लकड़ी अपने चंगुल से पकड़ लेता है। जहाँ जायगा, पकड़े जायगा। जीवन भर कहीं पर, किसी दशा में भी उस लकड़ी को नहीं छोड़ेगा। आशिक भी इष्ट प्रीति प्रतीति हाड़िल की भाँति ही निरंतर पकड़े रहेंगे। चकोर चन्द्रमा में निरंतर टकटकी जोड़े रहता है। जब तक दर्शन होते रहेंगे, इधर उधर कहीं नहीं देखेगा। आशिक भी प्रिय छवि दर्शन की चकोरी वृत्ति बनाये रहते हैं। मूर्ख हठ नहीं छोड़ेगा, शठ वाद विवाद नहीं छोड़ेगा, इसी प्रकार आशिक (संजन) पवित्र इष्ट नाम का निरंतर स्मरण नही छोड़ते। आशिकों की चारों पकड़ सुदृढ़ और श्लाध्य है।

''जान हमारा जाय हाय नहि नेक है। उभय लोक नशि जाय तऊ दृढ़ टेक है॥
सियपिय नाम सुधाम बढ़े अनुराग रे। हरिहाँ, युगल अनन्य भजन बिन अखिल अभाग रे।'

॥ मूल छन्द ॥

११४—आशक सद सादिक सोई जो जीवन जान निहारे।
आठयाम आराम रहे गुन गहे विहार विचारे॥
निमिष नहीं लागन देवे दृग देखे प्रान पियारे।
युगलानन्य शरन छाकी छिति बीच बसे उजियारे॥२१८॥

शब्दार्थः—सद सं०=उत्तम। सादिक अ०=सच्चा। जीवन जान=प्राणसंजीवन श्रीजनकी-जीवनजू को। निहारे=टकटकी लगाकर दर्शन करता रहे। आठयाम=आठो पहर, चौबीसो घंटे। आराम फा०=सुख शान्ति। गुनगहे=नित्य लीला दर्शन काल में प्यारे के सौशिल्य, सौहार्द, वात्सल्यादि गुणगणों को धारण करता रहे। विहार विचारे=युगल केलि क्रीड़ाओं का चिंतवन करता रहे। निमिष=क्षण, पल। छाकी=मतवालीदशा। छिति=पृथ्वी पर। उजियारे=सर्वश्रेष्ठ रूपमें।

भावार्थः—सच्चा और उत्तम आशिक तो वही है, जो अपलक दृष्टि से श्री प्राणसंजीवन अवध सुन्दर के दर्शन करता रहा। उनके कल्याण गुणगणों का चिंतवन करे तथा युगलविहार का

अनुसन्धान करता रहे। उसे आठो पहर हृदय में शान्ति (आराम) बनी रहेगी। प्राणप्यारे श्री-जानकी नयनतारेजू के मुख को निरन्तर इस प्रकार देखता रहे कि क्षण भर का पलक गिरना भी अरुचिकर लगे।

इस प्रकार रूपदर्शन, गुण ग्रहण, विहारानुसन्धान से प्रेम मतवाले बने हुए आशिक इस पृथ्वी पर मोहान्ध प्राणियों की दृष्टि को आलोकित करने वाले प्रकाश (उजियारे) रूप में विराजते हैं।

॥ मूल छन्द ॥

११५—रसना रहस रंग पूरन निज नूरी नाम सुजापी है।
अंतर नैन मैन मोहन सिय श्याम स्वरूप मिलापी है॥
जीवन जान रसिक रघुवर गुन उज्ज्वल ललित अलापी है।
युगलानन्य शरन हरसायत छके छैल छबि छापी है॥८११॥

शब्दार्थः—रसना सं०=जीभ। रहस=गोप्य युगल विहार। रंग=दिव्यानन्द। नूरी=ज्योतिर्मय। मैन=काम। मिलापी=चिपकने वाले। जीवन जान=प्राणों के प्राण, प्राणसंजीवन। रसिक=रस तत्व के वेत्ता और भोक्ता। ललित=प्यार पूर्वक। अलापी=कथन करने वाला व स्वर ताल एवं लय के सहित गान करने वाला। छके=नशे में चूर होकर। छापी=मुद्रित, अंकित।

भावार्थः—रंगीले आशिकों के अन्यान्य अंगों की अपेक्षा, उनके नयन और जीभ विशेष रूप से रसमयी क्रिया में सचेष्ट रहती हैं। जीभ श्रीयुगलकिशोर चितचोरजू के सुधाधिक सुस्वादु युगल नाम के जप में तत्पर रहती हैं। सूर्य चन्द्र एवं अग्नि के भी जनक फलतः अधिक ज्योतिर्मय श्री नाम में समायी रहती हैं।

'सुमिरत नाम रंग रस मिले।
सरस सुषमा सुचि सुरभि सँग, मिलित हिय सुख मिले॥
लोभ लालच दंभ दुर्मति तृगुन ग्राह न ग्रसे।
दमक दसधा परा रसरूपा हृदय थल थिले॥
गौर श्याम स्वरूप नख शिख, भाव सनमुख पिले।
युग अनन्य शरन परम प्रिय रहस रुचि दृग रिले॥

—श्री राम नाम परत्त्व पदावली।

आशिकों की अन्तर्दृष्टि मदन विमोहन श्रीजानकीरमणजू की सुछवि अवलोकन करने में तत्पर रहती हैं। पुनः उनकी जीभ प्राण संजीवन रसिक शिरोमणि श्री रघुवंशमणि के नवल धवल गुणगणों को स्वर ताल सहित गान करती रहती है। श्री आचार्य चरण का कहना है कि इन आशिकों के चित्त में श्री अवध छयल की मनमोहन छवि अंकित रहती है। रूप दर्शनों से ये प्रेमोन्मत्त बने रहते हैं।

❀ मूल छंद ❀

११६–खबरदार दिलदार याद में आशक हरदम रहते हैं।
मूँदे नैन बैन सब दिशि सें ललित सुगुन गन कहते हैं॥
छबि सागर नागर अथाह के बीच निरंतर बहते हैं।
युगलानन्य शरन श्रुति मत निधि माँझ नेह ही महते है॥ १७६

शब्दार्थः—खबरदार फा०=सावधान, तत्पर। दिलदार=मनभावन प्यारे। मूँदे=रोक कर। बैन=वाणी। ललित=मनोहर। नागर=चतुर चूड़ामणि। महते हैं=मथकर निकालते हैं।

भावार्थः—आशिकों की सुमधुर बृत्ति होती है, अपने मनहरण नवललाल को निरन्तर प्यार पूर्वक स्मरण करना। इस स्मृतिरूपी कल्पवेलि के सिंचन पोषण में वे सतत तत्पर रहते हैं। रूप चिंतन के साथ साथ ये मनरंजन लाल के सौन्दर्य, सौकुमार्य, सौगन्ध्य आदि मधुर मनोहर गुण गणों का गान करते रहते हैं। प्रियतम व्यतिरेक अन्य सभी ओरों से अपने नयन एवं वचन को रोके रहते हैं। अनन्यता की सुदृढ़ टेक ऐसी होती हैं कि इनका संकल्प होता है—

"श्रवननि और कथा नहि सुनिहौं, रसना और न गैहैं।
रोकिहैं नयन विलोकत औरहि सीस ईस ही नैहौं॥" श्रीविनय

चतुर चूड़ामणि धीर ललित नायकरत्न श्री रघुलाल जू के अथाह छबिसिंधु में क्षण क्षण मन को डुबोये रहते हैं तथा उसी माधुर्य प्रवाह में निरन्तर बहते रहते हैं। वैदिक सिद्धान्त सिन्धु में कर्म, ज्ञान, उपासन आदि अनेक रत्न छिपे पड़े हैं। परन्तु आशिकों का लक्ष्य तो होता है सिद्धान्त सिन्धु का मंथन करके, उसमें से केवल स्नेहामृत निकालना और उही स्नेह सुधा का पान कर मस्त पड़े रहते हैं।

"ब्रह्म पयोनिधि, मंदर ज्ञान, संतसुर आहि।
कथा सुधा मथि काढ़हीं, भगति मधुरता जाहि॥"

॥ मूल छन्द ॥

११७–होय गये मस्तान दिवाने जेते जगत जमाने में।
धोय गये दिल दाह दुनी हर तौर सनेह समाने में॥
सोय गये सोई सुख संयुत सरस समाधि प्रमाने में।
खोय गये खाहिश खराब खल खलक कलेश कमाने में॥ १२८॥

शवब्दार्तः- मस्तान=प्रेम मगन। दिवाने=प्रेमोन्मत्त। जगत जमाने=लौकिक जीवन काल में। दुनी=लौकिक। दिल दाह=कलेजे के जलाने वाले, राग द्वेष, क्रोधादि विकार। हरतौर=सब प्रकार से, तनसे, मन से, वचन से। सोय गये=भाव मगन हो गये। सरस समाधि=युगल विहार चिंतन। प्रमाने=सही सहो। खाहिश=वासना। खलक=लौकिक। कलेश=व्याधि, बृद्धावस्था आदि क्लेश। कामने=उपार्जन करने में।

भावार्थः—प्रस्तुत छन्द में, उन आशिकों के लक्षण बताये गये हैं, जिनने इसी लौकिक जीवन काल में, स्थूल शरीर में स्थिति होने पर भी इश्क के प्रेममग्न एवं प्रेमोन्मत्त दशा प्राप्त कर ली है। स्नेह सागर में सतत डूबे रहने का लाभ यह हुआ कि माया देश के राग द्वेषादि तापों को धोकर बहा दिया और हृदय को विशुद्ध बना लिया। श्री युगल किशोर के विहार चिन्तन में भाव मग्न होना ही सरस और सही सही (प्रमाने) भात्र समाधि है। ऐसी समाधि में देह गेह एवं जगत के भान भूल जाते हैं।

अर्थ संचय, परिवार संग्रह एवं महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित होकर लोग शिरतोड़ परिश्रम करते हैं। यही श्रम सांसारिक क्लेश उपार्जन [खलंक कलेश कमाना] करना कहाता है ऐसे श्रम से निन्द्य भोग वासना बढ़ती है। प्रेमोन्मत्त दशा प्राप्त होने पर स्थूल और सूक्ष्म वासनाएँ (ख़ाहिश खराव) समूल विनष्ट हो जाती हैं।

॥ मूल छन्द ॥

११८–रसिया रूप अनूप श्याम मन मोहन राग समेते हैं।
राजीवायत नैन बैन वर चितवन श्रवन सचेते हैं ॥
रास रंग रस रास चलन चित चिंनामनि दिल देते हैं।
युगलानन्य सरन रुच्छन की छाया कभी न लेते हैं ॥१२६॥

शब्दार्थः—रसिया=रस लोलुप। राग=प्रियतम प्राप्ति की तीव्र अभिलाषा—'अभिलाषातिशयात्मकः स्नेहः रागः'। चितवन=अवलोकन करने में। श्रवन=सुनने में। सचेते=सचेष्ट, तत्पर। रास=रास क्रीड़ा। रंग - नृत्य गीतादि संगीतानन्द। रस रास [राशि]=रस का पुंज। चलन=रहनि। दिल देते=मन लगाये रहते हैं। रुच्छन=रसहीन, शुष्क हृदय वाले कर्मी, योगी, ज्ञानी। छाया लेना=मिलना जुलना।

भावार्थः—श्री जानकी कान्त स्वतः रस के अपार पारावार हैं, फिर भी इतने रसलोलुप हैं कि अन्यत्र के रस पाये बिना आनन्द सिन्धु को आनन्द नहीं होता।

'रसो वै सः। रसँ ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति ॥'

तैत्तिरीयोनिषद २। ७

या रसहूँ के तनक छींटे जाके उर लागी।
वशीभूत तेहि संग रहत प्रभु रस अनुरागी ॥

ऐसे श्री राम रसिया के रूप में भी विलक्षण जादू टोना है। शृंगार रस के समान मनहरण श्याम वरण रस जागने वाला है। काम के समान मदनोन्माद जगाकर, मनोरथ पूरक भी है।

'सखि रघुनाथ रूप निहारु।
स्याम सुभग सरीर जन मन काम पूरन हारु ॥'

ऐसे मनमोहन सोहन सलोने राघव रूप में आशिक रागासक्त होते हैं। प्रियतम संयोग सुख में नरक कष्ट भी स्वर्गाधिक सुखद प्रतीत होना, वियोग में ब्रह्मलोक का सुख भी नरकाधिक कष्ट प्रद प्रतीत होना राग का स्वरूप है।

"तुम विनु रघुकुल कुमुद विधु सुरपुर नरक समान ॥"

उस मनभावन के कमलदल विशाल नयनों के अवलोकन करने में, तथा उस प्राणसंजीवन की सुधा सकुचावनी वाणी सुनने में आशिक सतत सावधान रहते हैं। श्री प्रमोदवन रास विहारी जू की रास क्रीड़ा कालीन नृत्य गीतादि संगीतानन्द लूटने में संलग्न तथा उस मनरंजन लाल की चलनि रहनि आदि ललित हावों के ध्यान करने में आशिकों को ऐसा स्वाद मिलता है, मानों रस का अपार खजाना ही हाथ लग गया हो। मनके सभी सरस मनोरथों के पूरक होने से उस अलबेलेलाल को चित्तचित्तामणि कहना कितना समीचीन है!

सजातीय रसिकों के संग से इन आशिकों के हृदय का रस विशेष उमड़ता है। शुष्क हृदय वालों के संसर्ग से हृदय का रस सूखने लगता है। अतः भोगी कर्मी, योगी, आदि नीरस हृदय वालों की छाया छूने से भी आशिक परहेज रखते हैं।

"संग करे तब रसिक सजाती। ढिग बैठे नहिं मूढ़ विजाती॥"

– श्री अनन्यचिंतामणि।

॥ मूल छन्द ॥

११६–वादा हसर हराम हमेशे वर मस्तान हठीले।
हर मूरति सूरति दे अन्दर यार जमाल लखीले॥
तजि के तसवी कसवी तकवा शिकवा शरह सबीले।
युगलानन्य मोकाम आशकाँ सूली माँझ वसीले॥ १०७

शब्दार्थः—वादा=आश्वासन वचन। हसर (हश्र अ०)=कयामत (प्रलय) के बाद मृतात्मा का लौट आना अर्थात् मरणोपरान्त दिव्यधाम में प्रियतम मिलन। हराम=नामंजूर। मूरति=स्थूल शरीर। सूरति=रूप। दे पं०=के। यार=प्रियतम। जमाल अ०=छवि छटा। लखीले=देखने वाले। तसवी (तस्वीह अ०)=जपमाला। कसवी (कस्वी अ०) बहुत श्रम से प्राप्त विद्या। तकवा (तक्वा अ०)=इन्द्रिय निग्रह। शिकवा (शिकेवा फा०)=सहन शीलता। शरह (शर्ह अ०)=वेद भाष्य संहिता। सबीले अ०=साधन। मोकाम (मुकाम)=देर तक ठहराव। वसीले (वसील: अ०) =साधन।

भावार्थः—आशिक हठी होते हैं। "भक्ति पच्छ हठ करि रहेउँ, दीन्ह महामुनि साप। मुनि दुर्लभ वर पायउँ, देखहु भजन प्रताप।" अर्थात् अपने संकल्प के पक्के होते हैं। इस शरीर के त्यागने पर प्रियतम मिलेंगे ही, ऐसे आश्वासन पर इन्हें सन्तोष नहीं (हराम।)। ये तो अपनी प्रेममस्ती में आकर, तत्काल ही मिलन का हठ पकड़े रहेंगे (युगला अनन्यअली विरहियाँ, चाहत अब ही मिलनमा)

प्रत्येक प्राणी के हृदय में (अन्दर) ये अपने ही प्यारे की छविछटा को व्याप्त देखते हैं। आशिक कालान्तर में फल देने वाले (पिपीलिका मार्ग के) साधनों को त्याग देते हैं॥ यथा माला जप, श्रम साध्य विद्यार्जन, इन्द्रिय निग्रह, सहनशीलता, वेदाध्ययन, आदि साधन सभी शास्त्र सम्मत हैं तो क्या ? आशिकों को आशु (शीघ्र) फलदायक [विहंगम मार्ग वाले] साधन ग्राह्य हैं। ऐसे तत्काल मिलाने वाले साधनों में चाहे शूली पर भले वास सजना पड़े, सहर्ष मंजूर है।

॥ मूल छन्द ॥

१२०- लामकान लाहूत अजूवा खूवाँ वास दिया है।
सातो तबक दबक गै नीचे बीचे मौत लिया है॥
मोह दोह अंदोह कोह कुल जहाँ न रंच भिया है।
युगलानन्यशरन जीवन जुत जुग जुग जाय जिया है॥९६॥

शब्दार्थः--लामकान अ० = गृह सुधि हीन। लाहूत अ० = द्विअर्थक १-मर्त्यलोक, २-ब्रह्म-लीनता। अजूवा (अजूवः अ०) = अनोखा। खूवाँ = सुन्दर स्त्रियाँ, माशूक गण। (यहाँ प्रमदाबन की राम रमणियों के साथ)। तबक अ० = तल (अतल वितल से लेकर पाताल तक) दबक गै = छिप गये। मोह = चिंता। दोह = द्रोह। अंदोह फा० = क्लेश, कष्ट। कोह = क्रोध। भिया = भय। रंच = तनक भी। जीवन जुत = श्रीप्राण संजीवनजू के साथ। जुग जुग (युग युग) = अनन्तकाल तक।

भावार्थः--आशिकी के पूर्व ही प्रेम साधकों का संकल्प होता है —

"अब हौं वसिहौं प्रीतम पास।
सकल लोक सम सोक समुझि जिय, सब सन होय निरास॥
सूरज चंद अनल दामिनि से, पल पल जहँ प्रतिकास।
युगलानन्य अमल नामहि चखि, होहु मगन रस रास॥"

इश्क हासिल होने पर उनकी ब्राह्मी स्थिति हो जाती है। अन्तःकरण की सारी वृत्तियाँ इष्ट श्रीजानकीरमण में तन्मय लाहूत) होने के कारण, वे स्थूल जगत में स्थूल शरीर एवं तत्सम्बन्धी गृह को भूले (लामकान) रहते हैं। मानसिक भाव से वे श्रीसाकेत प्रमदावन की राम रमणियों के मध्य में स्वयं भी रमणी (खूवाँ) रूप से निवास करते हैं। यह स्थिति तो लोक विलक्षण (अजूवा) होती ही है यथा—

"आत्मानं चिन्तयेत्तत्र तासां मध्ये मनोरमाम्।
रूप यौवन सम्पन्नां किशोरीं प्रमदाकृतिम्॥"

—सनत्कुमार तन्त्रे।

मस्ती की दशा में उन्हें लगता है कि वश, अब तो मैं दिव्य साकेत के प्रमदावन ही में रह रही हूँ। मर्त्यलोक और दिव्य साकेतधाम के बीच वाले सप्तलोक, तथा सप्तावरण,

न जाने कहाँ अदृश्य (दवक) हो गये ? उस दिव्य भगवद्धाम में शोकचिंता, रागद्वेष (दोह) क्लेश, क्रोधादि मायिक विकारों का तनक भी भय नहीं हैं। वहाँ अपने प्राण संजीवन युगलकिशोर के साथ आशिक साकेत अन्तःपुर में युगयुगान्त तक जीवित रहेंगे।

॥ मूल छन्द ॥

१०१—आशक सोई असल कुशल कर घसल फसल जग जाले।
मानिंद मसल वसल दायम दिलदार पाय खुशहाले॥
रसल हुसूल होय हरदम बम बाजे रंग रसाले।
युगलानन्य नशल दुनियाँ तजि भजिये श्री नृपलाले ॥५०॥

शब्दार्थः—असल=सच्चा। कुशल=साधन प्रवीण। घसल=नष्ट। फसल=अन्न के पौधे। जग जाले=प्रकृति विलास। मानिंद फा०=समान। मसल अ०=लोकोक्ति। वसल (वस्ल अ०)= मिलन, संयोग। दायम (दाइम अ०)=नित्य, सदा। खुशहाले फा० अ०=समृद्धवान्। रसल (रसीला सं०)=रसिक विहारी। हुसूल अ०=प्राप्ति, मिलन। बमबाजे=आनंद की दुंदुभी बजती है। रसीले=रसभरी। नशल=नाशवान्।

भावार्थः—सच्चा और कुशल आशिक वही है जो मायिक जगत में फँसाने वाले जाल के समान सारे प्रकृति विलास, भोगों को अपने लिये उसी प्रकार मिटा दे, जैसे खेत की फसल को ओले पत्थर या पाले नष्ट कर देते हैं।

"आशिक क्या ढूढ़ो वन वन में।
जैसे पयते घृत नहिं न्यारो तैसे प्यारो मन में॥
रसिकन के संग जानि परैगो जनि भूलो साधन में।
कृपानिवास लखायो सदगुरु ज्यों मुखड़ा दरपन में॥"

प्राण प्यारे श्री जानकीकान्त जू हमारे घट ही में रहते हैं, यह सत्यसार बात तो लोकोक्ति के समान प्रसिद्ध है। अतः "ब्रह्म जीव इव सहज संघातीं" आशिक अपने नित्य संयोगी (दायम वसल) दिव्य दम्पति को पाकर दिव्य सम्पत्ति से समृद्धवान बने रहते हैं। श्री रसिक विहारी लाल से नित्य मिलन (हुसूल) होते रहने से आशिकों के हृदय भवन में सदा रसानन्दमयी दुंदभी बजती रहती है। श्री आचार्यचरण का आदेश उन साधकों के लिये हो रहा है जो नाशवान लोकसुक में आसक्त हो रहे हैं। आशिकों के उपर्युक्त दिव्यानन्द को विचार कर, ऐसे भोगासक्तों को भी नश्वरलोकसुख त्याग कर, उसी आनन्द दाता श्री कौशलेन्द्रनन्दन जू का भजन करना चाहिये।

❀ मूल छन्द ❀

१२२—यारी अवध विहारी प्यारी ख्वारी जाल जहानी है।
सारी शौक चित्त चौपर मधि खेले लगन लगानी है॥

हार जीत दोनों प्रीतम संयोग वियोग कहानी है।
युगलानन्य शरन संतन की ऐसी सरस निशानी है ॥ ४६ ॥

शब्दार्थः--यारी=मैत्री । ख्वारी अ०=दुर्दशा । जाल जहानी=जगत का मोह सम्बन्ध । सारी=गोटी । लगानी=दाव पर, बाजी पर रखना ।

भावार्थः--श्री प्रमोद वन विहारी लाल से प्रीति सम्बन्ध जोड़ना आशिकों को अति प्रिय लगता है । जगत की नातेदारी तो मोह जाल में फँसाकर दुर्दशाग्रस्त बनाने वाली है । आशिक अपने यार श्री अयोध्या विहारी लाल के साथ चौपर खेलते हैं । चित्त को बनाते है चौपर का कोष्ट । उत्साह (शौक) की गोटी बनाकर, खेलना प्रारम्भ करते हैं । चौपर खेल में लगन की बाजी लगती है । यदि प्रियतम हार गये तो उन्हें संयोग सुख प्रदान करना पड़ेगा । यदि जीत गये तो चाहे अपने मनमाना वियोग रोग देकर, आशिक को सताते रहें । कविश्री की मान्यता में (सरस संतन) रसिक संत की यही पहचान है ।

॥ मूल छन्द ॥

१२३–आशय अमल अजूब खूब आशक रस रूप रंगीलों की ।
अखिल गगन के पार यार पद प्यार रहस्य रसीलों की ॥
कीमत कठिन कषाय काय कल रहित स्वाद सम शीलों की ।
युगलानन्य शरन प्रीतम छवि छाके छैल छबीलों की ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—आशय=उद्देश्य । अजूब = [अजूबः अ०] = अनोखा । रस रूप=रसमय ब्रह्म । रंगीलों=अनुराग रंगमें रंगे हुये । अखिल गगन=सातों लोक,सप्तावरण । रहस्य=गोप्य युगल विहार । रसीलों=रस में मग्न रहने वालों । कीमत=प्रतिष्ठा, महत्त्व । कठिन=दुस्त्यज, जिसका छोड़ना मुशकिल हो । कषाय=विषयानुराग । काय=शरीर । कल=सुख ।

भावार्थः—रसमय परतम ब्रह्म श्री जानकी- रमण जू के अनुराग से रँगे हुये हृदय वाले आशिक का उद्देश्य निर्मल एवं बड़ा ही लोक विलक्षण होता है । ऐसे युगल विहार भावना में रस-मग्न [रहस्य रसीलों] आशिक को सप्तावरणों से ऊपर वाले अपने प्रियतम श्री साकेत विहारी लाल जू के मनोज्ञ पादारविन्द में अपार प्यार होता है । अपने शरीर से दुस्त्यज विषयानुराग के स्वाद से बच कर, सबसे समत्व के व्यवहार करने वाले तथा छैल छबीले प्रियतम की सुछबि में भाव मग्न रहने वाले आशिक का महत्त्व प्रशंसनीय होता है ।

मूल छन्द– १२४–इश्कबाज सिरताज सबों में हर हमेश रंग बोरे हैं ।
नाता नेह गेह फानी संदेह रहित सब तोरे हैं ॥
ख्वाहिश खलक ललक दो तरफी लखि दिल अंदर कोरे हैं ।
युगलानन्य शरन छाके छवि सरस श्याम तन गोरे हैं ॥२६२॥

भावार्थः—इश्कबाज=आशिक। सबों में सिरताज=सर्वश्रेष्ट। हर हमेश=निरन्तर। रंग बोरे=प्रेमानन्द में मगन रहते हैं। फानी=नाशवान्। गेह = घर, परिवार और सम्पत्ति। खाहिश=वासना। खलक=सांसारिक। ललक=प्रबल अभिलाषा। दो दरफी=लोक परलोक की। कोरे=अछूते।

भावार्थः—सर्वोत्तम आशिक वह हैं जो निरन्तर प्रेमानन्द में डूबे रहें। ऐसे आशिक नाशवान घर परिवार के साथ नेह सम्वन्ध निस्सन्देह रूप से तोड़े रहते हैं। लोक सुख की तथा दिव्य विहार देश में स्वसुख की चाह, यदि इनके हृदय में ढूढ़ा जाय, तो इनका हृदय वासना शून्य मिलेगा। ये मनहरण गौर श्याम वरण के लड़ैती लाल की सुछवि माधुरी पान कर प्रेमोन्मत्त बने रहते हैं।

—: मूल छन्द :—

१२५—आशक़ असल उपासक खासे अखिलाषे रसरासे हैं।
नाशक सकल विभूति विचारत अमल अनूपम आसे हैं॥
हर हमशे आवेश वेश निज पर स्वरूप अभ्यासे हैं।
युगलानन्य शरन के जीवन जाहिर जगत उदासे हैं॥ २०५॥

शब्दार्थः - असल=सच्चे। खासे=सर्वांग पूर्ण। अभिलाषे=चाहते हैं। रस रासे (रस राशि) =रसानां समूह इति रासः। श्रीप्रमोदवन विहारी की ललित रास लीला में सभी प्रकार के बारहो रसों का समास्वादन संभव है। अतः रास लीला रस राशि कहाती है। नाशक=परमार्थ को नष्ट करने वाली। विभूति=भोग पदार्थ। आसे (आशय)=विचार। आवेश=उमंग। निजस्वरूप=अपना दिव्य सखी स्वरूप। पर स्वरूप=सपरिकर युगल किशोर के स्वरूप। जाहिर जगत=वाह्य दृश्य जगत। उदासे=उदासीन।

भावार्थः—सर्वांग पूर्ण मधुर उपासना संवन्धी भावना में छके रहने वाले आशिक ही सच्चे हैं। ऐसे आशिकों की चाह (अभिलाष) रहती है कि यावत् स्थूल शरीर में स्थिति है, तब तक श्री प्रमोदवन रास विहारिणी विहारी लाल की रासलीला की मानसिक भावना करते रहें तथा शरीरान्त होने पर उसी दिव्य मधुर लीला में अपने सखी स्वरूप से प्रवेश करें। इनका अभिप्राय निर्मल एवं अनुपम होता है। इनके विचारसे जितने जगत के भोग पदार्थ हैं, सभी परलोक को नष्ट करने वाले हैं। ऐसे आशिक निरन्तर अपने स्वरूप के भाव उमंग से भरे रहते हैं। ये चिंतन मनन का अभ्यास करते करते स्वस्वरूप एवं परस्वरूप का साक्षात्कार किये होते हैं। इस मायामय दृश्य जगत के प्रति ऐसे आशिक उदासीन रहते हैं। कविश्री कहते हैं कि ऐसे सच्चे आशिक हमारे जीवनप्राण तुल्य प्रिय है।

॥ मूल छन्द ॥

१२६—बाहर विविध विहार भार पर अंतर जिकर खोदाई है।
उपर मलीन समान सही पै भीतर सरस सफाई है॥

राजा रंक न भेद गहे कछु समता साज सजाई है।
युगलानन्य शरन सोई सत सब विधि मम सुखदाई है ॥४५

शब्दार्थः—बाहर=स्थूल शरीर के वाह्य व्यवहार में। वहार=मायिक आमोद प्रमोद। भार=भरमार। अंतर=हृदय देश। जिकर=भावना। खोदाई=श्रीजानकी रघुनन्दन के विहार चिंतन। ऊपर=स्थूल शरीर का ऊपरी दृश्य भाग। सरस=प्रेम रस संपन्न। सफाई=निर्विकार, विशुद्ध। सत=संत।

भावार्थः—यहाँ तक छब्बीस छन्दों में आशिक लक्षण लिखे गये। आशिक व्यक्तियों के हृदय धर्म में वैभिन्य होने के कारण, लक्षणों में वैभिन्य होना सहज संभव है।

इन छब्बीस छन्दों में वर्णित लक्षण, कोई सामान्य, कोई मध्यम, कोई उत्तम एवं कोई सर्वोत्तम आशिकों में घटित हो सकेंगे। अवकाशाभाव के कारण इन पंक्तियों का लेखक ऐसा वर्गीकरण नहीं कर सका। विज्ञ पाठक कर सकें, तो अत्युत्तम। दृष्टान्त रूप में प्रस्तुत छन्द को ही लीजिये। प्रथम पंक्ति श्री मिथिला नरेन्द्र जनक जी में घटित हो सकती है। बाहर से देखने पर, लोग इन्हें राजसी भोगों की भरमार में आसक्त देखते थे, परन्तु दिखावटी रोजोचित वाह्य व्यवहार मात्र था। किन्तु इनके 'अन्तर्जगत को 'सहज विराग रूप मन मोरा' तथा 'बरबस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा' वाले अपने मुख कथित वचनों से जान लीजिये। छन्द के दूसरे चरण का भाव श्री मौन मुदित आदि विदेह कोटि के रसिक सन्तों में घट सकता है। इन्हें जल मिट्टी से वाह्य शरीर को शुद्ध रखने का होश नहीं रहता था। परन्तु इनके अन्तःकरण का अनुसन्धान करें, तो वहाँ न कोई विकार, न दोष मिलेगा। परम विशुद्ध हृदय में ही दिव्य युगल विहार स्पष्ट रूप से घटित होता रहता है। ऐसे विदेहों की निष्पृह दृष्टि में राजा रंक में, कोई भेद नहीं रहता। दोनों के हृदय में एक ही ब्रह्म श्री जानकी जीवन के दर्शन होते हैं। अतः आशिक सबों के साथ समत्व पूर्ण व्यवहार करेंगे। हमारे परमाराध्य आचार्य को सर्व सुख देने वाले ऐसे ही सजातीय रसिक सन्त शिरोमणि हैं।

* दूसरा अध्याय, आशिक परत्व *

❋ मूल छंद ❋

१२७—आशक की समता करने लायक तिहुँ लोक न कोई है।
योगी यती तपी ज्ञानी तिस के आगे सब छोई है ॥
उनसे बड़ा और नाहीं जिनकी मति रंग रस भोई है।
युगलानन्य इश्क कीने बिनु बार बार मति रोई है ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—समता=बराबरी। योगी=निर्बीज समाधि सिद्ध जीवनमुक्त योगी। यती (यतिन् सं०)=जितेन्द्रिय मनोजयी सन्यासी। तपी=तपः सिद्ध। ज्ञानी=वेदान्तादि प्रस्थानत्रयी उपदिष्ट ब्रह्मज्ञान सम्पन्न ब्रह्मलीन महापुरुष। छोई=गन्ने की सिट्टी। मति=बुद्धि। रँग रस=प्रेमरस। भोई=भीजी हुई, सराबोर।

भावार्थः—परात्परतम ब्रह्म श्रीअयोध्या विहारी में स्नेहासक्त चित्त आशिक सर्वश्रेष्ट महामानव हैं। तीनों लोकों के महान गण इनके पासंग में भी नहीं तुलेंगे। यदि गन्ने के रूपक द्वारा इनका परत्व दर्शाया जाय, तो समझ लीजिये कि गन्ने के निचोड़े हुये, निखालिसरस के समान तो हैं श्रीराम आशिक तथा छोई (गन्ने की सिट्टी) के समान होंगे और शुष्क हृदय परमार्थ साधक। चाहे वे निर्बीज समाधि सिद्ध जीवन्मुक्त योगी हों, या जितेन्द्रिय मनोजयी सन्यासी हों, या तपः सिद्ध महान हों या स्थितप्रज्ञ ज्ञानी हों, सब आशिक से हल्के उतरेंगे। इस सिद्धान्त वचन के दृष्टान्त रूप में आप श्रीरामानुरागिनी शबरीजी की स्थिति पर विचार कीजिये। उनके आस-पास के रहने वाले उपर्युक्त सभी वर्ग के महापुरुष थे। श्रीशबरीजी के सामने सबों को किस प्रकार झुकना पड़ा? श्रीरामायण प्रसिद्ध वार्ता सब जानते हैं। जिन आशिकों की सुबुद्धि रंगीले अलबेले, प्रेम सुधोदधि श्रीअवध सुन्दर के प्रति अनुराग रंग में सराबोर हो गई, उनसे बड़ा और हो ही कौन सकता है? हमारे पूज्यपाद आचार्यचरण का सुनिश्चित सिद्धान्त है ऐसे महामहिम इश्क को येनकेन प्रकारेण प्राप्त कर ही लेना चाहिये। भरतखंड के आर्यकुल में उत्पन्न देव दुर्लभ साधन धाम नर तन पाकर भगीरथ प्रयत्न ही से सही, परम प्राप्य इश्क अवश्य प्राप्त कर लेना चाहिये। ऐसा न हुआ तो पीछे युग युगान्त तक हाथ मल मलकर सिर धुनधुन कर रोना पछताना पड़ेगा।

तीसरा अध्याय, आशिकों का मत मजहब

॥ मूल छन्द ॥

१२८—हम तुम ख्याल खाम फानी नोखसानी जहर जमाते हैं।
मजहब मजेदार मोहन महबूब उसी में माते हैं॥
किस्सा कोट गिराय ज्ञान रसखान पाय अलसाते हैं।
युगलानन्य शरन सियवर पर वार वार बलि जाते हैं॥४१॥

शब्दार्थः—ख्याल (खयाल अ०)=भ्रमपूर्ण विचार। खाम फा०=अनुभव हीन। फानी अ०=नाशवान्। नोखसानी (नुक्सानी अ०)=हानिप्रद। मजेदार=रस भरा। मोहन=मनमोहन, विश्वविमोहन। महबूब=प्राण प्यारा रघुराज दुलारा। माते=प्रेमोन्मत्त बने हुये। किस्सा (किस्सः अ०)=उपन्यास, कहानी। कोट=किला। रसखान ज्ञान=रहस्य बोध। अलसाते = भाव मग्न।

भावार्थः—आशिक मन से दिव्य अयोध्या के नेह नगर के बसैया हैं। वहाँ की भूमि चिंतामणि, मृग कामधेनु, द्रुमलता सुरतरु के समान सर्वमनोरथ प्रपूरक हैं। वहाँ के प्रमोदवन में दिन के समय वासन्ती एवं रात्रि में शारदीय शोभा सरसती है। वहाँ मर्कत महल, मोती महल, शीशमहल, माणिक्य महल, कनक महल आदि विविध भोग भवन अपने अपने पृथक पृथक शोभा विलास सजाते हैं। जहाँ श्री युगल लाल अथाह प्रेम के सुधा सिन्धु हैं, वहाँ प्रत्येक परिकर नेह के शीतल सुखद सुधा सरोवर हैं। उस देश में समासक्त चित्त आशिक का, प्रेम मतवाला बना रहना स्वाभाविक है।

स्थूल शरीरों को 'हम' 'तुम' अभिधान देना तभी बनता है, जब उस दिव्य देश से उतारकर, साधक पाप ताप परिपूर्ण इस मायिक जगत में मन को रमावे। 'मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हेउ जीव निकाया ॥' दिव्य अनुभव विरहित, माया मोहित अज्ञानी जीव के मन में ऐसी भ्रम पूर्ण धारणा जगती है। इसी स्थूल जगत, स्थूल शरीर के साथ यह भ्रम भी मिटेगा। अतः यह ख्याल नाशवान है, विष समाज समान त्याज्य है। विश्व विमोहन रघुनन्दन जू के प्रति इश्क नामक मजहब बड़ा ही रसीला (मजेदार) है। आशिक उसी मत में दीक्षित होकर, प्रेम दीवाने बने रहते हैं।

'मेरी मिल्लत है मुहब्बत, मेरा मजहब इश्क है।
खाह हूँ मैं काफिरों में, खाह दीदारों में हूँ ॥'

किस्सा कहानी के द्वारा प्रतिपाद्य, लोक चर्चा सने मत महजब सब कल्पित हैं। लोकपी समाज इसी के किले के अन्दर भोली भाली जनता को फँसाकर बन्द रखता है। आशिक अपने विवेक रूपी सुरंग (बारुद) लगाकर, ऐसे किले को ढाह कर गिरा देते हैं। युगल विहार रहस्य, विहार देश के कुंज निकुंज, वन उपवन, शैल सरोवर विविध भोग भवन, दिव्य परिकर वृन्द से परिवारित युगल मनभावन जू की सुललित मधुमयी लीलाओं की जानकारी ही रसखान ज्ञान हैं। रसिक गुरु, सन्त रसवंत की कृपा एवं रसिकाचार्यों की महावाणी, के स्वाध्याय तथा निजी भावना द्वारा ऐसे रसखान ज्ञान प्राप्त होता है। उस ज्ञान को पाकर आशिक भावमग्न हो जाते हैं। वह भाव समाधि ऊपर से देखने में निन्द में मगन के समान समझ में आता है। इस प्रकार अपार रसानन्द प्रदायक युगल मन रंजन लाल के प्रति आशिक अपने तन मन, प्राणों को वारम्बार निछावर करते रहते हैं।

॥ मूल छन्द ॥

१२९—दरशन सफा सराहत सज्जन शहर सफाई बसना।
रफा दफा कर दूर दाह दिल कहर करामत कसना ॥
नफा नेह दिलदार दिलावर हरसायत हिय हसना।
युगलानन्य शरन मजहब दो दीन रहित रस रसना ॥१३५॥

शब्दार्थ:—सफा अ० =स्पष्ट रूप से। सराहत=प्रशंसा करते हैं। सफाई=विशुद्ध, निर्विकार, स्वार्थ शून्य, निष्कपट हृदय। रफा=निवृत, शान्त। दाह=ताप। कहर (कह्न अ०)=दैवीकोप, दुर्भाग्यपूर्ण संकट। करामत अ०=चमत्कार। कसना=खूब भर जाना। दो दीन रहित=लोकपरलोक के स्वार्थ से शून्य। रस=युगल विहार भाव। रसना=रस मग्न होना। दिलावर=उत्साही साधक।

भावार्थ:—मानसिक भावना काल में सपरिकर युगल किशोर जू के हृदय देश में स्पष्ट रूप से दर्शन कैसे हो? सज्जन वृन्द इसके लिये जिस साधन की प्रशंसा करते हैं, वह है स्वार्थ, वासना, शून्य निष्कपट, निर्विकार, निर्दोष, विशुद्ध अन्तःकरण रूपी नगर में अपना मानसिक निवास बनाना।

"हरि निर्मल मल ग्रसित हृदय असमंजस मोहि जनावत।
जेहि सर काक बंक बक सूकर क्यों मराल तहँ आवत? श्री विनय।

दुर्भाग्य मय संकट (कहर) में बड़ा ही चमत्कार पूर्ण प्रभाव है। जब हृदय देश में इस संकट का प्रभाव पड़ता है, संशय, राग द्वेष जन्यज्वाला, सभी दूर हट जाते हैं।

"विपति नहीं रघुपति की छाया। भोग भोगाय छुड़ावत माया॥"

हृदय के विशुद्धीकरण का लाभ है हृदय विहारी के प्रति स्नेह की जागृति। स्नेह सम्पत्ति को पाकर, उत्साही (दिलावर) साधक निरंतर मन ही मन गजते रहते हैं, आनन्द मग्न होते रहते हैं। श्री आचार्यचरण अपना मत मजहब बताते हुये कहते हैं कि लोक परलोक के सुखों को त्यागकर साकेत युगल विहारी जू के विहार रस में भाव मग्न रहना ही हमारा मजहब हैं।

"सुनो दिलजानी मेरे दिल की कहानी तुम दस्त ही विकानी बदनामी भी सहूँगी मैं।
देव पूजा ठानी औ नमाज भी भुलानी तजे कलमा कुरान सारे गुननि गहूँगी मैं॥
साँवला सलोना सिरताज सिरकुल्लेदार तेरे नेह दाध में निदाध ज्यों दहूँगी मैं।
कौशल कुमार कुरबान तेरी सूरत पै हौं तो मुगलानी हिन्दुवानी ह्वै रहूँगी मैं॥"

– राजकुमारी ताज।

❀ मूल छन्द ❀

१३०–टीका टेक विवेक एक व्रत दृढ़ अनन्यता साजी है।
छापा छबिनिधि सुछबि छटा छन छन छकि मन मति राजी है॥
कंठी कृपा कटाक्ष, नाम अभिराम, अजब सिरताजी है।
युगलानन्य मंत्र मोहनि मुसक्यान सीयवर बाजी है॥ २८५॥

शब्दार्थ:—टीका=तिलक। टेक=अनन्यता का व्रत। विवेक=अनन्यता के महत्व का बुद्धि द्वारा ज्ञान। व्रत=दृढ़ निश्चय। छापा=पंचमुद्रा की छाप। राजी=प्रसन्नता। अभिराम=मनोरम। सिरताजी=राम सकल नामन ते अधिका। बाजी=हृदय पर आघात किया।

भावार्थ:—इश्क नामक मजहब में प्रवेश करने के लिये भी पहले पंच संस्कार धारण करने पड़ते हैं। पाँच संस्कारों के नाम वैष्णव सम्प्रदाय में इस प्रकार से हैं। १-तिलक की टीका।

२—पंच मुद्राओं की छाप, ३—दो लड़ों की कंठ में संलग्न मधुर तुलसी की कंठी, ४—सांगोपांग सबीज मंत्र राज, तथा इष्ट नाम के साथ शरणांत या दासान्त जुड़ा हुआ साधक का स्वनाम। इश्क देश में इन पाँचों संस्कारों के आध्यात्मिक रुप वाह्य सम्प्रदाय प्रचलित रूपों से भिन्न होते हैं। प्रथम संस्कार तिलक रचना है। संप्रदाय में द्वादश, पंच अथा तीन अङ्गों पर तिलक लगाने की विधि है। यहाँ भी तीन तिलक की व्यवस्था बताई गई है। १—अपने इष्ट में अनन्यता धारण करना हृदय का तिलक है, २—अनन्यता का परत्व ज्ञान माथे का तिलक है, ३—अनन्यता का सुदृढ़ प्रण ललाट का तिलक है।

दूसरा संस्कार, इश्क देश की पंच मुद्रा छाप भी जान लीजिये। छविसिन्धु युगलकिशोर जू के पाँचों प्रधान अङ्गां (१—श्रीचरण, २—श्रीकरकमल, ३—श्रीमुख, ४—श्रीकटि, और श्रीवक्ष-स्थल।) की छवि छटा के अवलोकन में क्षण क्षण मदमस्त होना तथा मन बुद्धि का रसानन्द में छक जाना ही पांचों मुद्राओं की छाप है। तीसरा संस्कार है कंठी। इष्ट की रस सुधा भरी चितवनि अवलोकन कर, गद्गद् कंठ वाली सात्विक दशा का उदय होना ही गले की कंठी है। चौथा संस्कार है अपना नाम धराना। इष्ट के जिस श्रीसीताराम नाम के अन्त में शरण या दास जोड़ना है, वह इष्ट नाम है परमानन्द दायक (अभिराम) भगवन्नामों से सर्वश्रेष्ट (सिरताजी) तथा लोक विलक्षण (अजब) प्रभाव वाले। अन्तिम तथा पंचम संस्कार है, मन्त्रराज की प्राप्ति। मन्त्र में शक्ति और प्रभाव होना आवश्यक है। सो मन्त्र है श्रीजानकी कांत जू की मोहन मुस्कान। इस मुसक्यान रूपी मन्त्र में हृदय पर चोट करने की शक्ति है।

'हसनि हिय हरनी हेरि हारी।
हरदम हरित होत हाजिर रहि, सनमुख अवध बिहारी॥
विलग आध पल कलप अलप सम, समुझत नेह निहारी।
अनुदिन उर अनुराग ताग मधि, पोह्यो सुमति सुधारी॥
याकी कौन कहे उपमा सुख अद्भुत सुमन सँवारी।
युगल अनन्य शरन दम्पति मृदु मूरति की बलिहारी॥'

—श्री रूप रहस्य पदावली।

॥ मूल छन्द ॥

१३१—संस्कार पाँचो प्रीतम प्रिय सहज सोहाग सुदाई।
ताके हित बाहर वपु वल्लभ वेश सुनेह निकाई॥
विमल विलास वलित रसिकन की झीनी गति दरसाई।
युगलानन्य विचार विगत बकवादिन जंग मचाई॥२८६॥

शब्दार्थः—सहज=अनायास। सोहाग = जाकोपिया माने, सोइ सोहागिनि। सुदाई= सुन्दर रुप से देने वाला। बाहर वपु = बाहरी शरीर पर भी। वल्लभ वेश = प्रियतम प्रिय

वैष्णवी वाना यथा कंठी, तिलक आदि। विमल विलास=दिव्य युगल विहार। वलित=भावना युक्त। झीनी गति=सूक्ष्म प्रवेश। जंग=वाक् युद्ध।

भावार्थः—पूर्व छन्द में वर्णित पाँचों आध्यात्मिक संस्कार प्रियतम श्री जानकी रमण को अति प्रिय है। इनके धारण करने से प्रियतम प्रियत्व प्राप्त होता है। इन आध्यात्मिक संस्कारों की सिद्धि के लिये, वाह्य शरीर पर भी सम्प्रदाय प्रचलित तिलक, कंठी, पंच मुद्रा छाप, मंत्र जाप तथा इष्ट सम्बन्धी नाम को धारण करना आवश्यक है। इससे प्रियतम स्नेह में सुन्दरता बढ़ जाती है। वाह्य पंच संस्कारों की महिमा कविश्री ही की अन्यत्र वाली महावाणी से जानिये।

'कंठ में मधुर मनमोहनी सुमाल जुग जगमग जोत धनुवान वाहु मूल लस।
भाल छवि जाल तर तिलक झलक बिन्दु चन्द्रिका समेत श्री अजव परिपूरि रस॥
सीताराम नाम अंक मंडित समूह वपु रामरज सहित प्रकाश स्वच्छ भानु सस।
युगल अनन्य कोटि कोटि खंड जुत अंड करन समर्थ पावनेश शुभ सन्त अस॥'

—श्री प्रेम परत्व प्रभा दोहावली।

रसिक जनों का मानस युगल विहार भावना से विभूषित है, उन्हें दिव्य युगल विहार देश में प्रवेश करने वाले विमल मन मति प्राप्त हो जाती है। अतः विचारवान साधक सतत विहार भावना में संलग्न रहते हैं। जो विचारहीन हैं, उन्हें ही वाद विवाद पसन्द है। विचारहीन ही वाह्य वृत्ति बनाकर जहाँ तहाँ वाक् युद्ध किया करते हैं।

❁ मूल छंद ❁

१३२—हरदम ख्याल खौफ नहिं खतरा खबरदार खिजमत में।
खातिर खाह हुजूरी हजरत खाहिश नहिं अजमत में॥
खालिक खलक एक सा मुझको मालुम शुद इस मत में।
युगलानन्य कलम कायम वर लिख पाया किशमत में॥२६॥

शब्दार्थः—हरदम=निरन्तर। ख्याल=स्मरण। खौफ फा०=डर। खतरा फा०=विघ्न। खबरदार=सावधान, तत्पर। खिजमत=सेवा (मानसी)। खातिर खाह (खातिर ख्वाह' अ० फा०)=मनोनुकूल। हुजूरी=सामने उपस्थित। हजरत (हज्रत अ०)=पूजनीय (ललीलाल)। अजमत (अज्मत अ०)=मान प्रतिष्ठा। खालिक अ०फा०=विश्वपति। खलक (खल्क अ०)=संसार। शुद फा०=हुआ। कायम=स्थायी। किशमत फा०=भाग्य।

भावार्थः—आशिक अपने परम मनभावन युगल लाल जू की मानसिक सेवा में सतत सावधान रहते हैं। अतः इस माध्यम से उन्हें अपने प्यारे की अविच्छिन्न स्मृति बनी रहती है। स्मरणकर्त्ता के सार सम्हार में सतत जागरुक रहने वाले प्रियतम श्रीरघुवीर के बल पर सेवानिष्ठ आशिकों को किसी विघ्न से भय नहीं होता। श्रीमुख वचन वानरों के प्रति—

'निज निज गृह अब तुम्ह सब जाहू। सुमिरहु मोहि डरपहु जनिकाहू।'

ऐसे आशिक अपने परमाराध्य युगल ललन की मनोनुकूल सेवा में समुपस्थित रहते हैं। उस सेवा जन्य दिव्यानन्द के आगे लोक प्रतिष्ठा का रस उन्हें अरुचिकर प्रतीत होता है। अतः लोक मान बड़ाई की चाह नहीं करते। इश्क मत में दीक्षित होने पर कवि श्री की दृष्टि- 'सियाराम मय सब जग जानी" हो गई। अतः विश्व और विश्वपति में एकता प्रतीत होने लगी। महाराजश्री कहते हैं कि मेरे ललाट में नित्य महल टहल की सौभाग्य रेखा किसी नित्य स्थायी कलम से लिख दी गई है। अतः वज्ररेख सी अमिट है। ब्रह्माजी स्वयं अनित्य, उनकी कलम अनित्य, उनकी लिखी भाग्यरेखा भी अनित्य। हमारी महल टहल नित्य है, शाश्वत है। कायम कलम का लिखा, हमेशः कायम रहेगा।

॥ मूल छन्द ॥

१३३-श्रीजानकी जानि नायकमनि मन मधि नित्य लड़ावैं।
अमल राग वर बाग बीच नवनेह बंगला छावैं॥
सरस शौक जस जौक भोग धरि भाव समेत पवावैं।
युगलानन्यशरन नाना मत असत जानि बहवावैं ॥११४॥

शब्दार्थः--जानि=प्राणवल्लभ। नायक मणि=नायक शिरोमणि। राग=राग प्रेम की वह दशा है जिसमें प्रियतम संयोग में कोटि कोटि दुःख भी सुख रूप तथा वियोग में कोटि कोटि सुख भी दुःख रूप प्रतीयमान होवे। बाग=बागीचा। शौक=उमंग। जस जौक=सुयश रसास्वादन। असत=मिथ्या।

भावार्थः--आशिकों के मत मजहब का निरूपण करते हुये, पूज्य ग्रन्थकार कहते हैं कि- आशिकों का मजहब कहता है कि श्रीजनकेन्द्र राजनन्दिनीजू के प्राणसंजीवन श्रीरघुपतिजी, धीरोदात्तादि नायकोचित मधुरिम गुणगणों से विशिष्ट हैं। इन्हें अपने मनोमन्दिर में पधराकर कोटि-कोटि भाँति से दुलरावें, इनके साथ लाड लडावैं, इन्हें प्यार करें। इनके प्रति जो निश्छल राग जमा है, उसी को परमोत्तम वाटिका मान लें। उस वाटिका में इनके प्रति नवोदित नवलनेह का फूल बंगला रचावें। उसी बंगले में इन्हें लाड़ प्यार का फूल श्रृङ्गार कर पधरावें।

"बंगलैया में राजे मजेदार यार।"

प्रेम का आग्रह होता है अपने प्राणप्यारे को उत्तमोत्तम सुस्वादु भोज्य वस्तु भोग लगावें। अपने हृदय में जो युगलविहार पान करने की उमंग है, तथा युगल सुयश रसास्वादन की जो प्रीतिमयी वृति है, उन्हीं दोनों का भोग थाल सजाकर, लाड़ प्यार पूर्वक लाडिले अलबेले लाल के समक्ष भोजनार्थ समुपस्थित करें तथा "रामहि केवल प्रेम पिआरा।" को लाड पूर्वक पवाकर तृप्त करें। इसी प्रकार अपने इष्ट के प्रति अपार दुलार ही आशिकों का अपना सच्चा मत मजहब है। प्रेम से भिन्न सभी मत मतान्तर मिथ्या हैं। अतः उन्हें प्रेम प्रवाह में बहा दें।

"शंका करो न हेच सर्व में आप हैं। जिधर देखिये तिधर सुदुति विन ताप हैं॥
काहू मत सन काज नहीं कछु रह गया। हरि हाँ, पाया परपद प्यार बधिर गूँगा भया॥"

— श्रीप्रेम प्रकाक, १८५।

॥ मूल छन्द ॥

१३१—हौं अजाद अलमस्त अदब बिन अजब चाल कछु न्यारी।
किस ही से न मिले मजहब मन फकत यार से यारी॥
वेशक हुवे छोड़ि संशय सब, शौक समाधि सम्हारी।
युगलानन्य शरन खुशदिल दिलदार बिहार बिचारी॥ ८२॥

शब्दार्थः—अजाद (आज़ाद फा०)=धर्मनिरंकुश फकीर। अलमस्त= अल् अ०+मस्त फा०)= बेफिक्र मतवाला। प्रेम की वह मतवाली दशा जिसमें न कोई चिंता रहती न फिक्र। अदव=साम्प्रदायिक शिष्टाचार। न्यारी=सबसे भिन्न। फकत=एकमात्र। यारी=प्रेम। वेशक=निस्संशय। शौक समाधि=लगन उमंग की तन्मय दशा। खुशदिल=सदा प्रसन्न चित्त।

भावार्थः—आशिक अपने इश्क रूपी मजहब में कट्टर होते हैं। प्रेम से भिन्न साम्प्रदायिक बंधन को छिन्न भिन्न करु, निरंकुश हो जाते हैं। प्रेम की मस्ती में उनसे साम्प्रायिक शिष्टाचार का निर्वाह भी नहीं होता। अलमस्तों को शोच फिक्र काहे की ? इनकी चलन, आचारण सबों से पृथक बन जाते हैं।

आशिकों को प्रेमेतर मत मजहब से न विचार मिलता है न मन। उनका एक मात्र प्रयोजन होता है, अपने मनहरण प्राणप्यारे से लाड़ लड़ाते रहें। प्रियतम प्रेम प्रवाह में आशिकों के सारे सशय भ्रम समूह बह जाते हैं। उन्हें तो उमंग है तो यही कि अपने रगीले लाल में लगन लगी रहे, उनकी भाव समाधि की रंगीली दशा में छके रहें। प्राण रंजन जू के दिव्य विहार के चिंतन करने से हृदय दिव्यानन्द से भरपूर हो जाता है।

"अब हम इश्क दिवाने हुये।
मत मतांत भव भ्रान्त शांत करि, डारि दियो तम कूयें॥
पारस परम प्रीति प्रीतम पद, पाय काँच को छूये।
सियवर गुरु कल कृपा जीति चित, फेरि हारि नहिं जूये॥
जग दुर्गंध बंध जान्यो मन, मान्यो सुख खुशबूये।
युगल अनन्य शरन रस जस बिन, जनमि जनमि जड़ मूये॥ सं० सु० प्र०

॥ मूल छन्द ॥

१३५—क्या मजहब से मतलब उनको जिन को लगन ललामी है।
सबसे हुये उदास हमेशे केवल इश्क कलामी है॥
दिलाराम की जिकर विना सब समुझे हिरस हरामी है।
युगलानन्य शरन मेरी उनही सदा नमामी है॥ १२६॥

शब्दार्थः—मजहब (मज्हब अ०)=मत। मतलब (मत्लब अ०)=प्रयोजन। ललामी सं०=लाल रंग का अनुरागमय। कलामी=चर्चा करने वाला। दिलाराम फा०=हृदय रमण, हृदय को सुख शांति देने वाला। हिरस (हिर्स अ०)=लोभ। हरामी=त्याज्य।

भावार्थ:—जो अनुराग मयी लगन लगा कर, अपने प्रियतम से लाड लडाने में तत्पर हैं, उन्हें मजहबी पाबंदी में जकड़बंद रहने से क्या प्रयोजन ? वे तो अपने हृदय में इश्क ही सजायेंगे। इश्क ही की भाषा में वार्तालाप करेंगे। अतः सभी मत मतान्तरों से उनका निरंतर उदासीन रहना स्वाभाविक है।

जिसके विना मन वेचैन था, वह तन मन को जुड़ाकर, हृदय में सुख शान्ति देने वाला अब मिल गया है। अब उस हृदयरमण की वार्ता छोड़कर अन्य सभी लोभ लालच हरामवत् त्याज्य प्रतीत होने लगे हैं। कविश्री ऐसे ही अनन्य इश्क मजहबी आशिक को सदा सर्वदा वारवार प्रणाम करते रहना चाहते हैं।

"अजव अजूवा ख्याल लाल के महल का ! किजव गजव के पार लहे मुद टहल का ॥
मजहव मुरशिद मधुर मोहब्बत मीत का । हरिहाँ,युगलानन्य सुमन निज पथ परतीत का ॥"

—श्रीप्रेम प्रकाश, २२६।

"सरमद कि वकूए इश्क वदनाम शुदी । अज दीने यहूद सूए इसलाम शुदी ॥
मालूम न शुद कि अज खुदा वो अहमद । वागश्ता वसूए लछमनो राम शुदी ॥"

अर्थात् प्रेमपथ में पड़कर मैं वदनाम हो गया। यहूदी पंथ को छोड़कर इसलाम की ओर आया, और फिर इसलाम के खुदा और रसूल से मुँह मोड़कर श्रीराम लक्ष्मण के भक्तों से जा मिला।

* चौथा अध्याय, आशिक-कर्तव्य *

॥ मूल छन्द ॥

१३६–लीला ललित ललाम लहर लावन्य लखे ललचावै।
लाभ लोह लय लाल भान भव हान हेतु दृग लावै ॥
उदित मुदित रस एक टेक चित चाव चरित्र बसावै।
युगलानन्य अडोल बोल वर आशक छाप कहावै ॥१६०॥

शब्दार्थ:—ललित=क्रीड़ासक्त (विहार)। ललाम=मनोरम। लावण्य=प्रतिबिंब ग्राहिणी चमक। लहर=झलमलाहट। लोह=लोभ। लय=रूप समाधि। भवभान=दृश्य जगत का स्मरण। दृग लावै=विचारे। उदित=प्रगट। मुदित=प्रसन्न। एकरस=सदा एक ही ढंग का। टेक=दृढ़ निश्चय। चाव=उमंग। अडोल=न टलने वाला। छाप=नाम।

भावार्थ:—श्रीजानकी रमणजू के आशिक का पद बड़ा ही गौरवमय है। आशिक नाम सार्थक करने के लिये, उसके निमित्त कुछ विहित कर्त्तव्य हैं। उन्हें अवश्य करना चाहिये। सर्वप्रथम अपने दो दर्शनीय वस्तुओं को सतत देखा करें। १–एक तो श्रीयुगल मनरंजन लाल की दिव्य मनोरम विनोद विलासमयी ललित लीला। २–दूसरा श्रीयुगल मनभावनजू के नखशिख अंग प्रत्यंग का

लावण्य। तत्पश्चात् अपनी लाभ-हानि को (दृग लावै) समझ लेवे। लाभ तो यह है कि अपने चितचोर युगलकिशोर के रूप में तन्मय होने का लालच बढ़ाते रहना और हानि है उस दिव्य विहार देश की भाव समाधि से चित्त बहिर्मुख बनाकर दृश्य जगत को देखने लगना (भव भान) पुनः चातक के समान अपने इष्ट के प्रति अनन्यता का प्रण (टेक) चित्त में उदित हो जाय, तभी मन मुदित हो। प्राण प्यारे के दैनिक एवं वर्षोत्सवमयी केलि क्रीड़ाओं के अनुसन्धान के प्रति उमंग होवे। अपने वचन से टले नहीं। अपने इष्ट के सत्यव्रत पर विचार कर, धारण करे। 'रामो द्विर्नाभिभाषते'। उपर्युक्त वृत्ति बनेगी कैसे ? उत्तर नीचे पढ़िये।

'आशा सतगुरु सन्त सुपद सतनाम का। धारे रहिये रोज खोज छबि धाम का।
निर्विकार निर्लेप अवीव्रत कीजिये। हरि हाँ, पर प्रभु प्रेम पीयूष निरंतर पीजिये॥

--प्रेमप्रकाश, १२४।

॥ मूल छन्द ॥

१३६—इश्क यार से फकत सोच सत सहस शुमार न रक्खे।
वैसहि गम हजारहाँ हाजिर को नव मरम परक्खे॥
नोशम खून जिगर अन्दर हररोज हिज्र युत भक्खे।
युगलानन्य दाग दर दिल नित आह दाह रस चक्खे॥१०२॥

शब्दार्थ—फकत=एक मात्र। सोच=चिन्ता। सत सहस=असंख्य। शुमार=गिनती, मोल समझना। गम अ०=दुःख शोक। हजारहाँ फा०=हजारों। मरम (मर्म सं०) = भेद। परक्खे = (परीक्षण सं०) = जाँच पड़ताल करे। नव=नवीन, हाल का। नोशम = पीलिया। खून=रक्त। जिगर=हृदय। खून पीना (मुहावर)=व्यथित होना। हिज्र अ० = विरह। दाग= क्लेश। आह=विरह के कराहना। दाह=विरह ज्वाला।

भावार्थः—आशिक को चिन्ता होती है तो एकमात्र यही कि इश्क प्राप्त हुआ नहीं। कुछ हुआ भी, तो वह अपर्याप्त है। इश्क चिन्ता व्यतिरेक अन्यान्य हजारों चिन्ता का विषय आ जाय, तो उनकी कोई गिनती नहीं मानते। उसी प्रकार शोक का विषय भी अनेकों उपस्थित हो जायँ, तो कौन जाता है, उसके कारण और निवारण उपाय विचारने ? आशिक को अपने इष्ट ध्यान से छुट्टी भी हो, तब न ? आशिक को सोच चिन्ता है तो प्रियतम विरह (हिज्र) को। इससे वह मन ही मन व्यथित होता रहेगा। विरह वेदना के मारे जो विरह ज्वाला हृदय को जला रही है तथा मुख से आह ! आह !! कराह रहा है, उसमें भी कुछ स्वाद है। उसी का अनुभव करता रहता है।

❁ मूल छन्द ❁

१४०—मुझे पसन्द पन्द येही जो सिर कटाय मर जानां।
हाय हौक हरदम विरहानल करना जमा खजाना॥

रैन ऐन जागना रोवना गम का भोजन खाना।
युगलानन्य लाल मिलने हित व्याकुल बीन बजाना ॥ ५७ ॥

शब्दार्थः—पसन्द = रुचिकर। पंद फा० = सलाह, सीख। हौक = आह। रैन = रात। ऐन = दिन। गम अ० = क्लेश। गम खाना (मुहावरा) = सहना।

भावार्थः—विरह इश्क का अनिवार्य अंग है। आशिक को प्रियतम बिना चरण मात्र भी चैन नहीं। विरह की असह्य वेदना में विरह की दशवीं दशा मृत्यु बहुत प्यारी लगती है। वह भी अपने ही प्यारे के मनोज्ञ कर कंजों से होवे, तो कितना सुन्दर ?

'जो मारे तरवार यार हुशयार शीश तब देते हैं।
मरने की खतरा न हेच चित वित ऊपर सिर रेते हैं॥'

मुह माँगी मौत नहीं मिलती, तो अतिप्रिय विरह ही बना रहे। विरह का खजाना जमाकर रख लेना है। उस खजाने में भरा होवे अनुपन रत्न। वह रत्न है 'हाय प्यारे! हाय प्यारे!! की चातकी रटन एवं तीव्र संवेदना सूचक आह! आह!! का आर्तनाद और विरहाग्नि। आशिकों की दृष्टि में यही तीनों अनमोल रत्न हैं। 'विरही विरह गिरह के माफिक गाढ़ी गाँठ न दूजी।' पृ०८६. विरहावस्था में दिन रात प्यारे की याद में जगना और तड़प तड़प कर रोते रहना प्रिय है, क्योंकि निंद से वैर हो गया है। स्वाभाविक भोजन से अरुचि हो गई है, यदि कुछ खाना ही है तो क्लेश सहन (गम खाना) ही उत्तम आहार होगा। प्राण प्यारे से मिलने की व्याकुलता इतनी प्रिय लगती है, जितना वीणावादन। व्याकुलता ही अपने लाल से मिलाने वाला साधन है।

॥ मूल छन्द ॥

१४१—आशक होके कतल न होवे जोवे जीव जहाना।
तिसके सम कमजरफ अधम नहिं संत अनंत बखाना॥
सूर सदाना फेर डेराना ममता में मगनाना।
युगलानन्य शरन हर दो दिसि मसि मुख माँह लगाना॥४८

शब्दार्थः—कतल होना = शिर कटाकर मर जाना। जोवे = आसरा देखे। जीव = जीवन। जहाना = लौकिक। सम = समान। कमजरफ (कमजर्फ फा० अ०) = तुच्छ, कमीना। अनंत = शब्दब्रह्म वेद। सदाना अ० = कहाना। ममता = प्राण का मोह। मगनाना = मग्न होना। दो दिसि = लोक तथा परलोक से। मसि = कलंक। माँह = में।

भावार्थः—'प्रेम स्वर्ग ते उतरयो, भू पर कीन्हों गौन। गली गली ढूढ़त फिरै, विन सिर के धर कौन ?' प्रेमपथ पर पैर धरते ही मरने को तुल जाना चाहिये। प्रेमी बनकर शिर कटाकर मरने पर उतारु न होवे, लोक जीवन की चाहना करे, उससे बढ़कर कमीना कौन होगा ? वेद पुराण सन्तों की तो यही सम्मति है। युद्ध शूर कहाने लगे फिर मरने से भीडर रहे हैं, प्राणों के मोह में

फँस (मगनाना) रहे हैं। तब तो भई, लोक दृष्टि से विचारो तो, या परलोक दृष्टि से विचारो तो भी, उसके मुख में कलंक कालिमा लग ही गई।

"झूठ आसिकी करहिं मुलुक में जूती खाहीं। सहज आशिकी नाहि खाँड खाने की नाहीं॥
जीते जी मर जाय करै ना तन की आसा। आशिक का दिन रात रहे शूली पर बासा॥
मान बड़ाई खोय नींद भरि नाहीं सोना। तिल भरि रक्त न मांस नहीं आशिक का रोना॥
बेवकूफ पलटू कहै आशिक होने जाहिं। शीश उतारे हाथ से सहज आशिकी नाहिं॥"

॥ मूल छन्द ॥

१४२—बात बनाना शूर कहाना खाहिश खाम खजाना है।
सर दरदस्त करे अउअल तब मारू राग बजाना है॥
जिस सायत रन सनमुख होना तब फिर क्या शरमाना है।
युगलानन्य शरन लाशक अब सिर कटाय मर जाना है॥ ६१॥

शब्दार्थः—शूर=योद्धा। खाहिश (ख्वाहिश फा०)=लालसा। खाम फा०=कच्चा। दरदस्त फा०=हाथ में। अउअल (अव्वल अ०)=सबसे पहले। सायत (आअत अ०)=क्षण, समय। शरमाना (शर्म फा०)=पछताना।

भावार्थः—"शूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आप।" आपने शौर्य की डींग हाँकने से कोई शूर नहीं बनता है। युद्ध के मैदान में उतर कर, शत्रुओं को लोहा लेकर छक्के छुड़ाओ और खेत जीतकर आवोगे तो शूर माने जावोगे। करनी बिना शूर कहाने की लालसा द्रव्यहीन खजाने के समान निरर्थक है। युद्धोत्साह बढ़ाने के लिये रणभेरी एवं मारू राग गाने बजाने की प्रथा है। युद्ध का डंका (मारू राग) बजे, उसके पहले योद्ध निश्चय करले कि मैंने अपना शिर उतार कर अपने हाथों में रख लिया है। अर्थात् जीने की आशा से हाथ धो लिया है। जब युद्ध भूमि में उतर कर शत्रु के सामने आ गये हैं, तो आगे का कर्त्तव्य तो कहता है मारो या मरो। उस अवसर पर पछताना कि नाहक प्राण गँवाने आये, तो कितनी हँसी होगी ? उस समय चाहिये तो यही कि खेत जीत कर आये या शत्रु के हाथ शिर कटा कर, रणभूमि में वीर गति को प्राप्त करें। तात्पर्य यह कि इश्क पथ पर डटने पर, मृत्यु की परवा किये बिना कठिन करनी करे।

—: मूल छन्द :—

१४३—लटक मटक चल चाल लाल लखि हाल ज्वाल चमकावै।
हटक लोक कुल कान पटक करि खटक अजब झमकावै॥
भटक भूल प्रतिकूल कूल सरजू झटपट छटकावै॥
युगलानन्य शरन लटपट अटपट लालच लटकावै॥ १३६॥

शब्दार्थः—लटक मटक=अंगों को लचकाते हुये चलने वाला ललित हाव। चल=चंचल। हाल=तत्काल। ज्वाल=विरह ज्वाला, बेचैनी। चमकावै=प्रज्वलित करे। हटक=हटा कर। लोक कुल कान=लोक प्रतिष्ठा और कुल मर्यादा। खटक=कसक, प्रेम पीड़ा। अजब=विलक्षण। झमकावै=प्रगट करता है। भटक=साधन पथ से विचिलि होना। भूल=त्रुटि। प्रतिकूल=विपरीत आचरण। कूल=किनारे। झटपट=शीघ्र। छटकावै=बलात् अलग करे लटपट=ढीला ढाला। अटपट=उटपटांग। लटकावै=विलंबित काल तक टिका रहे।

भावार्थः—क्या अजब चाल अलवेले का गज लाजि रहे मस्ते मस्ते।
रस रूप माधुरी टपक रही जब जात रहे रस्ते रस्ते ॥
जिन देखे तिनके चित्त रतन अनमोल बिके सस्ते सस्ते।
श्रीरामलला नृपनन्दन ने दिल छीन लिया हस्ते हस्ते ॥

सौभाग्यशाली सज्जन को श्रीअवध के सरयुपुलिन पर रंगीले रघुलालजू की नित्य नई नई लीलाओं के दर्शन होते हैं। जब कभी उन्हें लचक-मचक कर चंचलता पूर्वक मस्तानी चाल से झुक झूमते हुये चलते देख लेते हैं, उसी समय उन्हें गले लगाने का कामाग्नि अङ्ग अङ्ग में संदीप्त हो जाता है। उस मिलनातुर दशा में वह आशिक लोक लाज के बंधन को तोड़कर हटा देता है। कुल-मर्यादा के बोझ को माथे पर से पटक देता है। उसके हृदय में अजीब मदनवेदना प्रगट हो जाती है। क्या वह अब इश्क राह से भटक सकता है? उस प्रेम सावधान से कोई भूल होगी ही नहीं। प्रियतम प्रतिकूल आचरण को तो वह सरयुतट पर त्याग देता है। श्रीआचार्यचरण का सदुपदेश है कि साधन में शिथिलता (लटपट) तथा उटपटांग व्यवहार एवं लौकिक लोभ लालच मिलनको दूरस्थ (लटकावै) कर देता है। अतः त्याज्य है।

॥ मूल छन्द ॥

१४४—मौन गौन, गुन भाँति शान्ति, बिनु जपी तपी सनमाने।
वचन निरोध, बोध बरजित, कुल करन रोकिवो ठाने ॥
कठिन कष्ट धिय धारि, गारि तन, उपवासादि प्रमाने।
युगलानन्यशरन सत मत ते रहित निरंतर माने ॥३१॥

शब्दार्थः—गौन मौन=मौन की सामान्य दशा। गुण भाँति शान्ति=माया के रज, तम, सत–तीनों गुणों से उत्पन्न उद्वेगों, विकारों से अप्रभावित रहे। जपी=इष्टनाम मन्त्रसे भिन्न अन्यान्य तान्त्रिक सिद्धिदायक मन्त्रों के जापक। तपी=राजसी तामसी तपस्या करने वाले। सनमाने=आदर सम्मान करे। निरोध=रोकना, संयम। बोध बरजित=जगत भान भुलाने वाला। करन=इन्द्रिय। ठाने=संकल्प करे। धिय धारि=बुद्धि में अंगीकार कर ले। गारि तन=शरीर को सुखा कर। प्रमाने=ठीक समझे। सत मत, द्विअर्थक=१-प्रेमपथ से पृथक संतों के सिद्धान्त। २ सैकड़ों प्रकार के विचार।

भावार्थः—आशिक को प्रथमावस्था में चाहिये कि साधारण रूप से मौन ही तुल्य रहे। स्वल्पतम वचन बोले। संकेतों से भी काम निकाल ले। मायिक रज, तम, सत-गुणों से उत्पन्न विकारों से उद्विग्न न होवे। सहज शान्ति धारण किये रहे। तान्त्रिक मन्त्रों के जापक, सकाम तपस्वी के प्रति आदर भाव न बढ़ावे, अन्यथा उनके पुरुषार्थ परक साधनों के प्रति आकर्षण बढ़ने का भय है। अन्तर्जगत में सुदृढ़ स्थिति जमाने के लिये बोलने पर नियंत्रण करना होगा। सभी विषयाभिमुखगामिनी इन्द्रियों को इस प्रकार रोकने का दृढ़ निश्चय करे कि वाह्य जगत का भान भी नहीं होने पावे। इश्क के कठिन मार्ग पर चलने के लिये, बड़े बड़े कष्टों को झेलने पड़ेंगे। इसके लिये निश्चित बुद्धि को पहले से तैयार रखे। शरीर को कृश बनाना पड़ेगा। सुपुष्ट शरीर की इन्द्रियाँ विकार भी प्रबल हो जाते हैं। वश में नहीं हो पाते। कृश बनने के लिये व्रत उपवास को ठीक समझे। इश्क का मार्ग नाना प्रकार के मत मतान्तरों से सर्वथा भिन्न है।

जोग कुजोग ग्यान अज्ञानू। जहँ नहि राम प्रेम परधानू॥
प्रेमसहित सुनि पुरजन वानी। निंदहि जोग विरति मुनि ग्यानी॥

॥ मूल छन्द ॥

१४५—महामौन सदग्रंथ संत सुचि संमत सरस सोहावन है।
इष्ट विभूति विमल दृगदिल लखि चखि रसरूप सुभावन है॥
निज पर मति गति हीन लीन लय लीला लहर लोभावन है।
युगलानन्य प्रेम पूरन मन मनन अनेक बहावन है॥३२॥

शब्दार्थः—महामौन=काष्ठ मौन। संत सुचि=विशुद्ध रसिक संत। संमत=राय से मिलित। सरस=दिव्य विहार रस को जगाने वाला। इष्ट विभूति=प्रियतम की धन सम्पत्ति। दृग दिल=हृदय के नयन, अन्तर्दृष्टि। चखि रस रूप=रूप माधुरी का पान करके। सुभावन=सुन्दर भावना युक्त। निज परमति=अपने और पराये वाली नानात्व बुद्धि। लीनलय=तन्मय वृत्ति। लीला लहर=युगल विहार की तरंगायमान दशा। मनन=संकल्प विकल्प।

भावार्थः—इश्क जगत में प्रेम प्रतिपादक ग्रन्थ ही सद्ग्रन्थ माने जाते हैं। स्थूल जगत के सभी व्यवहारों से तटस्थ होकर, आजीवन काष्ठ मौन धारण करना रसिकाचार्यों एवं रस-ग्रन्थों की सम्मति से प्रेमरस को पुष्ट करने वाला तथा प्रेम की शोभा बढ़ाने वाला है। वाह्य-जगत के सारे पदार्थों को अपने ही प्यारे की धन सम्पत्ति समझे तथा अन्तर्दृष्टि, विवेक बुद्धि के द्वारा अपने रसमय इष्टरूप को सर्वत्र व्यापक रूप में देखे तथा उनके प्रति सद्भाव बढ़ावे। वाह्य जगत को जब प्रियतम से विरहित देखता है, तभी जगत के प्रति नानात्व बुद्धि बनती है। यह हमारा है यह तुम्हारा है। ब्रह्म का कुछ नहीं है। ऐसी बुद्धि को छोड़ देवे। क्षण-क्षण में तरंगायमान होने वाली प्रिया प्रियतम की प्रेममयी लीला को तन्मय होकर देखे। वह मधुर

लीला मन को लुभाने वाली है। कविश्री का उपदेश है कि मन को प्रेम से ऐसा भरपूर कर दो, कि वहाँ दूसरी वस्तु समाने नहीं पावे। ऐसी स्थिति बनाने के लिये नाना प्रकार के संकल्प विकल्पों को मन से हटाना पड़ेगा।

॥ मूल छन्द ॥

१४६–नाम ध्यान अभिराम धरे उर, अफुर संत गुरु वानी से।
व्यर्थवाद कटु खेद तजे निर्वेद भजे अभिमानी से॥
शान्त नितांत एकांत बसे प्रियकांत सनेह समानी से।
युगलानन्यशरन घूमे नित अलखित दशा दिवानी से॥४४॥

शब्दार्थः–अफुर=ध्रुव सत्य। अभिराम=मनोहर। व्यर्थवाद=निष्प्रयोजन वाद विवाद। कटु=तीक्ष्ण। निर्वेद=वैराग्य पूर्वक। शांत=जहाँ किसी प्रकार का उद्वेग या विक्षेप न हो, चित्त शांत रहे। नितांत एकांत=जन संसर्ग देश में मन को एकाग्र बनाकर। समानी=डूब गये। घूमे=मतवाला बना रहे। अलखित (अलक्षित सं०)=दूसरों को पता न लगे। दिवानी=उन्मत्त।

भावार्थः-विशुद्ध संत तथा सतगुरु ब्रह्म तुल्य ही मान्य हैं। इनकी महावाणी निस्सन्देह ध्रुव सत्य है। इन से नामाभ्यास की विधि सीख कर, श्री नामाक्षरों का हृदय में मनोरम ध्यान करे। नामाक्षरों में ही परिकर एवं भाइयों के सहित श्री युगल किशोर बसते हैं। नाम ही में गुण गण एवं मंगलमय धाम की स्थिति हैं।

"राम नाम्नि स्थिताः सर्वे भ्रातरः परिकरास्तथा,
गुणानां निचयं देवि, तथा श्री धाम मङ्गलम्॥" आदित्य पुराणे।

अतः नामक्षरों के ध्यान करने से सब ध्यान पथ में प्रगट हो जायेंगे। निष्प्रयोजन वाद विवाद छोड़ देना चाहिये। इस से हारने जीतने में अपने और परपक्ष वाले के हृदय में उग्र कष्ट होता है।

"बाद बिवाद विषाद बड़ाई के छाती पराइ व आपन जारे॥" श्री कवितावली।

जागतिक भोग विलास छोड़ कर, पर वैराग्य बढ़ावे। तथा सम्बन्ध गौरव के साथ अपने प्रियतम श्री जानकी रमण का भजन करे। विक्षेप रहित निर्जन देश में मनको एकाग्र बना कर, प्रेम में छक कर, श्री जानकी वल्लभ लाल का भजन करे। इससे वह दशा आवेगी, जब उन्मत के समान डोलते रहेंगे। यह दशा दूसरों को जनाने से प्रेम में हानि होती है। अतः अपनी दशा छिपाये रखे।

❀ मूल छंद ❀

१४७–होय रहे बेदेश तोष तर पाय प्रेम पद पावै।
जोय रहे युग मधुर माधुरी आपा वारि भुलावै॥

गोय रहैं गुन ज्ञेय ज्ञान गति सुरति सोहाग सोधावै।
युगलानन्य शरन आशक खुशबोय अनूप बसावै ॥ १६१॥

शब्दार्थः—वेहोश=वाह्य भान भूले हुये, ध्यानस्थ। तोष तर=खूब संतुष्ट। पद=दर्जा। जोय रहे=अवलोकन करता रहे। युग=श्रीयुगल मनभावन लाल की। मधुर=प्यारी। माधुरी=क्षण क्षण में नवायमान होने वाली छवि छटा। आपा=अपने आपको। वारि=निछावर करके। सोधावै=विशुद्ध बनावै।

भावार्थः—विश्वम्भर नवल अवधलाल अपने निर्वाह उपयोगी भोजन, वस्त्र आदि जो कुछ कृपया भेज दें, उसी में सन्तोष पूर्वक निर्वाह करे। इससे शरीर निर्वाह के लिये व्यवहार न करने पड़ेंगे। निश्चिन्त एकान्त में बैठकर भावना करने की सहूलियत मिलेगी। निर्व्यवहार निष्काम भजन करने से प्रेमपद शीघ्र प्राप्त होता है। श्रीयुगल मनरजन ललन की मनभावनी रूप माधुरी में चन्द्र चकोर बने रहें। अपने व्यक्तित्व को उन पर निछावर कर दे तथा ऐसी निर्विकल्प भाव समाधि लगावे कि अपने व्यक्तित्व का भी भान न रहे। प्यारे की कृपा से जो कुछ सद्गुण प्राप्त हुये हैं, उन्हें छिपाना चाहिये। गुण प्रकाश से लोक प्रतिष्ठा बढ़ेगी। प्रतिष्ठा से पतन होता है। हमारा ज्ञेय (जानने योग्य) तत्त्व है दिव्य विहार देश एवं वहाँ की प्रेम लीला। अपने लक्ष्य का ढिंढोरा पीटने से सूक्ष्म देश प्रवेशिनी बुद्धि मलिन हो जायेगी। ज्ञेय तत्व दूर हो जायगा। रहस्य की जानकारी (ज्ञान) जितनी मिली है, उसे छिपाने से ज्ञान बढ़ता है, प्रकाश करने से घटता है।

"है नीको मेरो देवता कोसलपति राम।··· ···वलि पूजा चाहत नहीं,
चाहत इक प्रीति। सुमिरत ही मानत भलो, पावन सब रीति ॥"

स्मृति पिय को प्यारी है, अतः सुहागिनी है। इस सुहागित को ऐसा विशुद्ध बनावें, कि प्यारे से भिन्न कुछ भी याद न रहे। ऐसे आशिक मलयाचल चंदन के समान अपने अनुपम सुयश सौरभ से, अपने सम्पर्क में आने वाली सबों को आमोदित करते रहते हैं।

"जौक शौक दिल कैद किये हिय हाल है। जो कोउ करै बयान छकनि नहि लाल है ॥
गोय किये वर वस्तु चमत्कृत जानिये। हरिहाँ, अनअधिकारिन कहे महामुद हानिये ॥"

श्री प्रेम प्रकाश, ५३७

॥ मूल छन्द ॥

१४८—समता सरस सजाय एक रस निरस देह अरु गेहा।
ममता मधुर मोहनी मूरति जिमि चातक मुद मेहा ॥
रमता रहे हमशे नाम मधि ममता मीत समेहा।
युगलानन्य शरन रमता नित प्रीतम चरन सुधेहा ॥१५९॥

शब्दार्थः—समता=राग द्वेष विरहित समत्वभाव। सरस=प्रभुमय चराचर से प्रेम व्यवहार। निरस (नीरस सं०)=ममत्व रहित, आसक्ति हीन। गेह=घर, परिवार एवं धन सम्पत्ति। ममता=

अपनत्व। मधुर=प्यारा। मोहनो=चित्ताकर्षक। मूरति=प्रियतम स्वरूप। मुद=आनंद। मेहा=घनश्याम। रमता=अनुरक्त। मीत=प्यारे रघुराज दुलारे। समेहा (समीहा सं०)=उत्कंठापूर्वक। सुखेहा (सुख+ईहा)=स्मरण उद्योग।

भावार्थ:—आशिकों को चाहिये कि शत्रुमित्र, मान अपमान, सुख दुःख, शीत उष्ण, सोना मिट्टी, काष्ट कामिनी आदि में समान व्यवहार करे। प्यारे का विधान प्यार पूर्वक स्वीकार करे। अपने प्यारे से ओतप्रोत चराचर के साथ प्रेममय व्यवहार वर्ते। देह गेह के प्रति अनासक्त बना रहे। प्रियतम के मधुर मनोहर स्वरूप में अपनी आत्मीयता माने। चातक को जैसे स्वाती जलद में अनन्य निष्ठा होती है, और उसी को पाकर आनन्दमग्न होता है, उसी प्रकार 'एक भरोसो एक बल, एक आस विस्वास। एक राम घनश्याम हित चातक तुलसीदास॥' बने। अपने प्यारे के प्रति विरहोत्कंठा बढ़ा कर, उन्हीं में अपना ममत्व माने तथा उन्हीं के मधुर मनोहर नाम जप का रसास्वादन करता रहे। अपने प्राणेश के पादारविंद के ध्यान चिंतन को अखंड रूप देने के यत्न में तत्पर रहे तथा उन्हीं के चितवन में रसानुभव करता रहे।

१४९—आशक को दिन रात कार फुरसत नहि पाव घड़ी है।
रोना खुद सोना धोना दिल बोना विरह जड़ी है॥
हँसना रंग रहस रसना छबि बसना वसल अड़ी है॥
युगलानन्य शरन नेहिन की प्रीति प्रतीति कड़ी है॥ २८२॥

शब्दार्थ:—कार=कर्त्तव्य कर्म। फुरसत (फ़ुर्सत अ०)=छुट्टी, अवकाश। पाव=चौथाई। घड़ी=चौबीस मिनट का समय। खुद फा०=अपने आपको। खोना=गवाँ देना। जड़ी=जीवनमूरि। रंग=आनंदमय। रहस=युगल विहार भावना। रसना=रस मग्न होना। वसल (वस्ल अ०)=मिलन।

भावार्थ:—आशिकों को बारहों महीने, तीसो दिन, चौबीसो घंटे, इतने अधिक कर्त्तव्य रहते हैं, कि थोड़ा समय भी उन्हें विश्राम के लिये अवकाश नहीं मिलता। उन्हें सदैव अपने प्यारे के वियोग में रोते रहना है। "प्राकृत हँसना छोड़ि के, रोने से करुप्रीति। विनु रोयें क्यों पाइये प्रान पियारे मीत॥" इस प्रकार रोने से उन्हें दो बड़े बड़े लाभ होते हैं। एक तो उनके अन्तः करण के समस्त मल आसुओं से धुल कर साफ हो जाते हैं। दूसरे आसुओं से हृदय क्षेत्र तर हो जाता है। विरह की जीवन जड़ी बोने से तर भूमि पर शीघ्र अंकुरित होती है। पुनः अश्रुओं से सदैव अभिसिंचित होने पर वह जड़ी शीघ्र लहलहा उठती है। अभिमान भी (खुद) गलता रहता है। प्रेमा की समृद्ध दशा में क्षण में प्रियतम की अदर्शन दशा में फूट फूट कर रोना; पुनः हृदय देश में युगल विहारी जी की झाँकी उदित होने पर खिलखिला कर हँस पड़ना। आशिक उस काल परमानन्दमययुगल केलि क्रीड़ा अवलोकन में रस मग्न हो जाते हैं। ध्यान से सन्तोष न होने पर प्रत्यक्ष मिलन (वस्ल) के लिये हठ पूर्वक अड़े रहेंगे। कविश्री की मान्यता में आशिकों के प्रेम और विश्वास दोनों ही ठोस और सुदृढ़ होते हैं।

॥ मूल छन्द ॥

१५०--कौतूहल का नात कुँज रस रहस पुँज अभिलाषे।
आशा असल धारि अपने चित विविध वासना नाषे॥
लाशा लगन लगाय गाय गुन मधुर अधर रस चाषे।
युगलानन्य छके छबि छबिनिधि किंस ही से नहिं भाषे॥१६३॥

शब्दार्थः—कौतूहल=युगल विहार दर्शन समुत्कंठा। नात=सम्बन्ध। रस रहस=युगल केलि क्रीड़ा। पुंज=समूह। आसा असल धारि=प्रत्यक्ष एवं ध्यान दर्शन की अभिलाषा करता रहे। असल=सच्ची। नाषे (नाशे सं०)=नष्ट कर दे। लासा=इष्ट में मन को साटने वाला गोंद। मधुर=स्वादिष्ट। चाषे, चाखे)=समास्वादन करे। छके=ध्यान मग्न हो जाय। भाषे=कहे।

भावार्थः—दिव्य विहार देश के केलिकुञ्ज में युगल अवधविहारीजू की नानाप्रकार की रस-मयी केलि क्रीड़ाएँ होती रहती हैं। उनके मानसिक साक्षात्कार के लिए समुत्कण्ठित रहे। कौतूहल के नात का आशय यह भी हैं कि सेवा अधिकारी अपना सखी स्वरूप दृगभोगी मात्र है। प्रियतम के साथ सेज सुख का अधिकार एकमात्र प्रधान पटरानी श्रीजनकेन्द्रराजदुलारीजी को ही है।

"पिय प्यारी सुख रस रसैं, वसैं सखी चहुँ ओर।
दृग भोगी तत्सुख लहैं, कृपा सरस मति वोर॥"
"अपने सुख की चाय, केलि करत नृपलाल सँग।
सिय स्वामिनी विहाय, धर्म रहित अंतहु विपति॥"

श्रीप्रिया प्रियतमजू हमें अवश्य मिलेंगे, इसकी सुदृढ़ आशा अपने चित्त में पोषण करे। इस लोक से परलोक तक के सारे स्वसुखों को मटियामेंट कर देवे। अपने चित्त को चितचोर के अङ्गों में चिपकाने के लिये लगनरूपी लासा लगावे। निरन्तर प्यारे की ललित गुणावली का गान करता रहे। रसमय गुणों के गान में वही रस प्राप्त होगा, जो किसी नायिका को अपने नायक के अधर पान करने में प्राप्त होता है। अथवा भावना में प्रियतम अधरामृत का पान करे। दंडकारण्य के वीत-राग गुणातीत महर्षियों ने जब श्रीराम रूप को देखा, तो नायिका भाव में आविष्ट होकर, उनके अधरपान के लिये व्यग्र हो गये। मन ही मन कहने लगे कि श्रीराम चन्द्रमाजू के अधर सुधा का पान नहीं किया तो हमारे विविध सत्कर्म, यज्ञ, योग, समाधि सुख, आत्मानुभव सुख सबों को वार-वार धिक्कार है।

धिग्धिग्विविध कर्म मखं च योगं धिग्धिग्समाधि सुखमात्म सुखानुभूतिम्।
यद्रामचन्द्र मधुराधर संस्थमेतत् पीयूष पानममृतं न वयं लभामहे॥
—श्रीपद्मपुराण।

आचार्यचरण का उपदेश है कि आशिक को चाहिये कि छबि सिन्धु रसिक चूड़ामणि श्रीरघुलालजू के सुछवि दर्शनानन्दमें सतत मगन रहे तथा अनुभूत सुख किसी से भी नहीं कहे।

"प्यारे तोहि नयन हीं में राखों।
वाके एक रोम पर सजनी, जगत वारने लाखों।
भेटों स्याम अंग री सजनी, अधर सुधा रस चाखों॥
'रसिक' प्रीति संगम की बातें, काहू तें नहिं भाखों॥"

॥ मूल छन्द ॥

१५१—टेक गहे सब सहे शीश सुख दुख समान जिय जाने।
निज प्रिय वस्तु विषय लागे दृढ़ हान लाभ भय माने॥
आपा वारि रहे बेखुद दिल पिल के इश्क दिवाने।
युगलानन्यशरन चींटा चुँवक की पकड़ पछाने॥५९॥

शब्दार्थः—टेक=प्रेम हठ। निजप्रिय=अपने प्राण प्यारे। विषय=विषय सुख समान। दृढ़=प्रगाढ़ प्रियत्व। भाने=मिटा दे। आपा=अपने आपको। वारि=निछावर करके।

भावार्थः—चातकी वृत्ति से अनन्यता का हठ पकड़े रहे। जो कुछ संकट आपत्ति माथे पर आ पड़े, उसे धैर्यपूर्वक सह लेवे। प्रियतम का संयोग ही अपना सच्चा सुख है, और वियोग है महान् दुःख। इससे भिन्न लौकिक जैसा दुःख, वैसा ही सुख। दोनों ही निरर्थक हैं। अपने प्राण प्यारे के श्रीअंग से स्पर्शित कोई भी प्रसाद वस्त्र, माला आदि मिले, तो उसकी प्राप्ति में वहीं सुख माने जो कामी को विषय सेवन में मिलता है। प्रिय वस्तु में आसक्ति होने से लौकिक हानि हो या लाभ इसका भय मिटा दे। श्रीप्राणरंजन को आत्मसमर्पण कर, उन्हीं के ध्यान में तन्मय होकर, वाह्यभान भूल जाय। इश्क दीवाने आशिक के मिलनेपर उनके साथ लिपट जाय। उनके संसर्ग से प्रियतम छवि में छकना सुकर होता है। चींटा किसी को पकड़ ले, तो उसे मार डाले,छोड़ेगा नहीं,चुंबक लोहे को पकड़ता है,तो आप ही नहीं छोड़ता। उसीप्रकार आशिक अपनी टेक को पकड़े रहे, छोड़े नहीं।

॥ मूल छन्द ॥

१५२—इश्क समेत सुने सीतावर रहस हवस हिय छोरे।
चंद चकोर मोर धन सम ह्वै तीन लोक तृन तोरे॥
साधन सकल उपाधनमय गुनि सब दिसि सें मन मोरे।
युगलानन्यशरन आशक निज नात नेहनिधि जोरे॥१५५॥

शब्दार्थः—रहस=गोप्य विहार कथा। हवस अ०=भोगेच्छा। तृनतोरे=नाता तोड़ दे। साधन सकल=कृपा अवलंब विरहित उपाय। उपाधनमय=विघ्नयुक्त। नात=संवन्ध।

भावार्थ: प्राण पियारे श्रीजानकी नयन तारे जू की विहार कथा को स्नेहासक्ति पूर्वक सुनो। हृदय से भोगेच्छा को त्याग दे। मानसिक दर्शन काल चकोर की भाँति प्रियतम मुखचन्द्र में टकटकी लगावे। मन घनश्याम राघव सुजान को देखते ही प्रेमोन्मत्त होकर नाचने लगे, जैसे श्यामघन को देखकर मयूर नाचते हैं। प्रियतम से भिन्न तीनों लोक के यावत् सुख हैं, सवों से सम्बन्ध विच्छेद कर डाले। प्यारे की कृपा ही एक मात्र हमारा उपाय उपेय सब है। कृपा भिन्न सभी उपाय विघ्नों से भरे हैं। अतः पुरुपार्थ परक साधनों से मन को फेर लेवे। क्योंकि 'भजहि जे मोहि तजि सकल भरोसा। करउँ सदा तिनकी रखवारी ॥' पुरुपार्थ करने वाले के लिये 'दुहु कर काम क्रोध रिपु आही। जनहि मोर बल निजबल ताही ॥' आचार्य चरण की आज्ञा है कि आशिक अन्य सभी नाता तोड़कर एक मात्र नेह निधान श्री जानकी जान जू से दृढ़ सम्बन्ध जोड़ ले।

'जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा ॥
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँध वरि डोरी ॥

'अब हम भई सोहागिन साँची।
कृपा करी कौसलपति प्रीतम, मधुर मोहब्बत माँची ॥
बिसरी विषय विभूति वासना, नासी जग मति काँची।
नूतन नेह बांधि नूपुर पद, परा प्रीति युत नाची ॥
साधन सकल निवारि नेम करि, युगल नाम सन राँची।
'युगल अनन्य शरन' सीतावर, रहस भावना याँची ॥

॥ मूल छन्द ॥

१५३—जागत रहो गहो डोरी छवि सूरति सजन सनेही का।
पागत महो मोद माखन मधु मृदुतन गुन गन गेही का ॥
लागत लाह लहो लोचन फल, दशा विचित्र विदेही का।
युगलानन्य शरन सदगुरु पद आशक हो डर केही का ॥ २६ ॥

शब्दार्थ:—जागत रहो=विषय से बचे रहो 'जानिअ तबहि जीव जग जागा। जब सब विषय विलास विरागा ॥' सूरति=स्मरण। सजन=प्रियतम। मधु पागत=मदीयत्व प्रधान मधु स्नेह में चित्त वृत्ति को पगाये रहो। मृदुतन=सुकुमार शरीर वाले। गेही=भवन। लागत= लगन लगाने से। लाह=लाभ।

भावार्थ:—विषय से बचने पर, स्नेह निधान प्रियतम प्राण की सुछवि के अखंड स्मरण का तार पकड़ में आवेगा। मधु स्नेह में चित्त को पगाकर, परम सुकुमार श्री कौशल राजकुमार के कल्याण गुण गण पयोनिधि का मंथन करो। उसमें से मीठे मक्खन के समान रसानन्द (मोद)

को काढ़ निकालेंगे। युगल ललन में लगन जगाने से, उनके रूप दर्शन होंगे। जिससे नयन पाने का सुफल मिलेगा। पुनः रूप समाधि आपही आप लग जायगी। अतः वीतराग विदेह परम-हंसों की लोक विलक्षण देह भान रहित दशा प्राप्त होगी। उपर्युक्त दशा अपने में तभी उतरेगी, जब श्रीसद्गुरु के पादार विंद में स्नेहासक्त हो जावोगे। सर्व समर्थ सद्गुरु भगवान जब तुम्हारे रक्षक हो जायेंगे, तब तुम्हें किसी भी विघ्न का भय नहीं रहेगा।

—: मूल छन्द :—

१५४–दिन अरु रात सैन कीजे रस पीजे प्रेम पियाले का।
छिन छिन नात नेह नूरी तहकीक करो छवि वाले का॥
रिन तीनों तम तार पार दृग दरसे सुख मतवाले का।
युगलानन्य शरन बेशक अब नजदीकी नृपलाले का॥ ३०॥

शब्दार्थः—दिन अरु रात=निरन्तर। सैन कीजै=भाव समाधि में मगन रहिये। प्रेम-पियाला=प्रेम रूपी मदिरा। नातनेह=प्रेम सम्बन्ध। 'कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति के नाता॥' नूरी=छवि छटा, झाँकी झलक। तहकीक अ०=खोज करना। रिन तीनों=देवऋण, ऋषिऋण और पितृ ऋण। तम तार=अन्धकार परम्परा। दृग दरसे=चर्मचक्षु से दीखेगा। मतवाले = प्रेम दीवाने। बेशक = निस्सन्देह। नजदीकी = सामीप्य। नृपलाले = श्री दशरथ राजकुमार जू।

भावार्थः—आशिकों का कर्त्तव्य है कि अहर्निश भाव समाधि में मगन रहे, तभी प्रेम माधुरी का रसास्वादन सम्भव हो सकेगा। छबीले छयल श्रीजानकी रमण जू की छवि छटा की झलक के फिराक में लगे रहने से आशिक तीनों ऋण की अन्ध परम्परा से उद्धार पा जायेंगे।

'देवर्षि भूताप्त नृणां पितॄणां न किंकरो नायमृणी च राजन्।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कृत्यम्॥

श्री भागवत ११।...

प्रभु श्री जानकीकांत जू का सर्व प्रकार से शरणापन्न होने वाला न किसी देवता का, न किसी पितर का, न किसी ऋषि का, न किसी आप्त का ऋणी रह जाता है।

छवि की झलक के अनुसंधान में रहने वालों को प्रेम दीवानों का सुख अपने अनुभव की आँखों से अपने ही में देखने में आवेगा। ऐसी दशा अपने में उतर जाने पर समझ लेना चाहिये कि श्रीकौशलेन्द्र कुमार जू की प्राप्ति अब समीप है। शाश्वत संयोग सुख मिलने में देर नहीं है।

❀ मूल छन्द ❀

१५५–पल पल प्रेम प्रवाह बीच बह जाओ मजा अजायब है।
छलबल कलमल मूल तजो गुन गरम गरूरी गायब है॥

वलवल होय रहो दिलवर पर अमर अजर पद पायव है।
युगलानन्यशरन जल वल रहु मिलिके मालिक नायव है ॥५४॥

शब्दार्थः—पल पल=क्षण प्रतिक्षण। प्रेम प्रवाह=नेह नदी की तीव्र धारा में। मजा=सुख स्वाद। अजायव=लोक विलक्षण। छलवल=कपट का भरोसा। कल (कलि) मल=कलियुग का घोर पाप। गरम (गर्म)=उग्र। गरूरी फा०=धमंड। गायव=समाप्त। वलवल (वलि वलि)=वार वार निछावर। अमर=जहाँ मृत्यु नहीं। अजर=जहाँ जरा (वृद्धा) अवस्था नहीं है। पायव=पाना। पद=धाम (श्रीसाकेत)। जल वल=नेह नदी के आनन्द जल के आश्रय में। नायव=विशिष्ट परिकर, यथा श्रीयूथेश्वरी, श्रीसर्वेश्वरीजी।

भावार्थः—नेह नदी में आनन्दरूपी शीतल सुखद जल की धारा वहती है। उसमें पड़ते ही तन, मन-जुड़ा जाते हैं। पुनः वह नेह नदी अपने सरित पति (आनन्द सिन्धु रघूत्तमजू) से मिल कर एकाकार होने के लिये भागी जा रही है। अपने प्रवाह में पड़ने वाले आशिक को भी साथ साथ वहीं ले जायगी। उस नेह नदी की धारा में बहने में भी विलक्षण सुख स्वाद हृदय में सरसने लगता है। यह नेह प्रवाह अपने हृदयमें ही वह रहा है। साथ साथ वहना भी है मनोमय शरीर को। उसी हृदय देश में नेह नदी तट पर छल, कपट, कलिमल आदि वड़े बड़े विशाल वृक्ष लगे हैं। सभी तीव्र-प्रवाह में समूल उखड़ कर वह जाते हैं। गर्व की गर्मी भी शीतल धारा में शान्त हो जाती है।

मनहरण छवीले छयल श्रीकिशोरीकांत पर वार वार वलिहार होना चाहिये। अपने प्रेमियों को वह प्रीति-रीति निवाहक प्रेमसिन्धु अवधविहारी अपने सन्निकट श्रीसाकेतधाम में वसाते हैं, जहाँ न मृत्यु है, न वृद्धावस्था। उसी नेह नदी के प्रेमानन्दरूपी जल के आश्रय में रहना चाहिये।

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा॥

एक वात और है "पानी में रह कर मगर से वैर" नहीं चलने की। उस नेह नगर में चलती वनती है, श्रीसर्वेश्वरीजी, श्रीयूथेश्वरीजी की। उनके मन में अपना मन मिलाकर, अर्थात् उनके मनोनुकूल रहने में ही वहाँ सुख जीवन वन सकता है।

अगले छन्द की अवतरणिकाः—याद रहे कि आशिकों का, रसिक सन्तों का शरीरान्त होने पर, गन्तव्य देश है श्रीसाकेत प्रमदावन अर्थात् रसिकविहारीलालजू के अन्तःपुर, भोग भवन। उस अन्तःपुर में पुरुष भाव वालों का मन भी नहीं पहुँचता, तन पहुँचना तो दूर रहे। नारी भावनाविष्ट रसिकजन ही भावना में उसका दर्शन करते हैं।

पुंसामगोचरं स्थानं केवलं प्रेमदायकम्।
नारी भाव समायुक्तास्तेषां दृश्यं भवेद् ध्रुवम्॥
—श्रीहनुमत्संहिता।

तहाँ सखा नहि दास पुरुष परिवर्ग न तहवाँ।
पुरुषोत्तम यक आप सखी सेवा महँ जहवाँ॥
--श्रीरसमालिका।

रसिक साधक जब मन से वहाँ पहुँचे, तो उसे भी अपने भावनामय स्वरूप को रमणीरूप ही समझना चाहिये।

आत्मानं चिंतयेतत्र तासां मध्ये मनोरमा।
रूप यौवन सम्पन्ना किशोरी प्रमदा कृति ॥ सनत्कुमार तन्त्रे।

पतिप्राणा कामिनी अपने कामातुर कान्त को रिझाने के लिये उत्तमोत्तम श्रृङ्गार सजाकर, उनकी सेवा में समुपस्थित होती है। अगले छन्द में आप ऐसे श्रृङ्गार का चित्ताकर्षक रूपक पढ़ें।

॥ मूल छन्द ॥

१५६—सुभग सिंगार सँवारे कामिनि पतिपन प्रनय प्रचारी।
सिंदुर शौक, जौक की पाटी, प्रीति पटोर, सुधारी॥
विशद बोध वेंदी वल्लभ रचि, टीका टेक, बहारी।
युगलानन्यशरन प्रतीति पटु, नखशिख भूषनधारी ॥२४६॥

शब्दार्थः—सुभग=सौभाग्य सूचक, प्रियतम सुख विवर्द्धक। कामिनि=प्रियतम सुख प्रयोजनवती कामना वाली, स्वसुख कामना शून्य कामातुरा रमणी। प्रनय प्रणय सं०)=' विस्रम्भातिशयात्मिका प्रीत्यैव प्रणयः" प्रीति में विश्वास का अतिशय होना ही प्रणय है। प्रचारी=आचारण द्वारा दर्शा कर। शौक=मिलनोत्कंठा जौक=प्रियतम को रस चखाने की अभिलाषा। पाटी=माँग के दोनों ओर वाला केश विन्यास। प्रीति=प्रियतम की मनोनुकूल भोग्या बनाने वाला प्यार। पटोर=रेशमी लहँगा। विशद बोध=श्रृङ्गारभावके ज्ञान। वेंदी=टिकुली। टीका=ललाट का चंदन चित्राम। टेक=दृढ़व्रत "एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पतिपद प्रेमा॥" बहारी=शोभा सरसाने वाली। प्रतीति=दृढ़ विश्वास। पटु द्विअर्थक)=१-कुशल, २-ओढ़नी चादर।

भावार्थः—प्रियतम सुख प्रयोजनवती कामना से भावितात्मा कामिनी को चाहिये कि प्रियतम को रिझाने के लिये, अपने सुन्दर नवयौवन सम्पन्न सुकुमार अंगों में सुहाग सूचक श्रृङ्गार सजावे। पतिव्रता का श्रृङ्गार ही नायक को रुचता है. कुलटा का नहीं। पातिव्रत्य पूरित पतिप्रीति को अपने आचरण द्वारा दर्शाना ही श्रृङ्गार की पृष्ठिभूमि, अंगराग है। प्रियतम से अनुरागमय मिलनोत्कंठा (शौक) का सिन्दूर अपने माँग में भरे। सिंदूर की भाँति अनुराग भी लाल और उत्कंठा एवं सिन्दूर दोनों के देश माथा ही हैं। अतः समीचीन रूपक। प्रियतम को श्याम रंग वाले श्रृंगार रस के आस्वादन (जौक) कराने की रुचि (जौक) ही श्याम रंग की पाटी वाला केश विन्यास हो। श्रृंगार रस की प्रधान स्थिति नायिका के केश ही में मानी जाती है। प्रियतम की भोग्या भाव वाली प्रीतिरूपी जड़ीदार रेशमी साड़ी अपने अंगों में सजाकर धारण करे। "विधुवदनी सब भाँति सँवारी। सोह न वसन विना वर नारी॥" भोग्या भाव विना श्रृंगार सजाना निरर्थक है, अतः प्रीति का रूपक पटोर से उपयुक्त है। ललाट के मध्य भाग में टिकुली सुहागवर्द्धक होती है। (विशद बोध) रस ज्ञान की भी ललाट ही देश में स्थिति होती है।

नायक को रस सुख देने को कला मानी जाती है हाव भाव, नृत्य गान, पतिपरिचर्या आदि। यहाँ हमने अमर कोश के मत से विशद का अर्थ श्रृंगार रस माना है। "श्रृंगारों शुचि रुज्ज्वलः" उज्ज्वल विशद एकार्थ बोधक हैं। अतः टिकुली का रूपक विशद बोध से। लालाट में अनन्यता की टोक होती है, और चंदन चित्राम भी लालाट ही में। अतः अनन्य भोग्या भाव रूपी चंदन चित्राम ललाट में सजावे। इस से शोभा खूब (बहारी) सरस जायगी। कविश्री की मान्यता में प्रियतम की अनन्यशरणागति में सुदृढ़ विश्वास रूपी उपरना ओढ़नी चादर (पट्ट) होवे। कुलाङ्गना अपने सारे श्रृंगार को चादर से ढक लेती है, जिससे पति के अतिरिक्ति दूसरा हमारा श्रृंगार न देखे। श्रृंगार तो पति के निमित्त ही किया जाता है। शरणागति विश्वास भी केवल शरण्य ही जानता है।

॥ मूल छन्द ॥

१५७—या विधि साज सजाय सामुहे सुन्दरि पिय ढिग ढिग आवै।
घूँघट ओट खोलि करि सुन्दरि सुन्दर पियहि रिझावै॥
जो अजादि दुर्लभ संपति सुख सो प्रयास बिन पावै।
युगलानन्य शरन रहनी बिनु आखिर जिय पछितावै॥ २५०॥

शब्दार्थः—या विधि=इस तरीके से। साज=श्रृंगार। सामुहे=सामने। अजादि=ब्रह्मादि। संपति=भोगैश्वर्य। सुख=विलासानन्द। प्रयास=साधन श्रम। रहनि=आचरण, कर्त्तव्य पालन। आखिर=मरने के समय। जिय=जीव अपने मन में।

भावार्थः—पिछले छन्द में वर्णित रीति से, प्रीति प्रतीति प्रणाय, प्रण, टेक आदि प्रेम के विविध अंगों का ही नायिका अपने विविध अंगों में विविध सिंगार सजावे। "रामहि केवल प्रेम पियारा" और 'तुम रीझहु सनेह सुठि थोरे॥" अतः आपको रिझाने की युक्ति प्रेममय श्रृंगार का रूपक बहुत ही समीचीन है।

श्री साकेत प्रमदा बन की साधरण से साधरण रमणी का रूप भी महालक्ष्यादि से भी अधिक मनोरम है। बिना सिंगार के ही प्रियतम की मनोरमा है। प्रेममय सिंगार करके ऐसी मनोरमा रमणी अपने हृदय रमण के आगे सन्निकट सेवा में समुपस्थित होवे। घूंघट की ओट तो अन्य दृष्टि बचाने के लिये थी। "परदा कौन भतार से जिन देखे सब अंग॥" रसिक चूड़ामणि प्रमदा वन विहारी श्रीरघुलाल जू विहार देश में बड़े कामुक प्रतीत होते है। इन्हें अपनी भोग्या रमणी की मुख छवि अवलोकन में रस मिलता है। अतः श्रृंगार विभूषिता रूपवती रमणी को चाहिये कि घूंघट की ओट हटाकर, अपने मनोरम कांत को अपनी मुख छबि का रस दृष्टि भोग प्रदान करे। रसिक रिझवार स्नेह शीला नवयौवना मुग्धा की मुख छवि देखते ही उस पर अपना सर्वस्वनिछावर करके, उसके वशवर्ती हो जावेंगे। अब तो उसे बिना अन्य साधन श्रम के ऐसे भोग पदार्थ मिलेंगे, जो ब्रह्मादिकों के लिये भी दुर्लभ है। अनन्यता बिना शरणागति बनती नहीं। अंग प्रत्यंग सहित आत्म समर्पण श्रृंगार रस में ही संभव है। अतः उपर्युक्त आचरण अपने में नहीं सम्हला तो

सो परत्र दुख पावइ, सिर धुनि धुनि पछिताइ ।
कलहि कर्महि इश्वरहीं, मिथ्या दोष लगाई ॥'

❁ मूल छंद ❁

१५८—सरस सिंगार सवाँरि सिया सुन्दर वर वदन विलोके ।
जगत जाल बेहाल 'काल सम मजा मानि मन रोके ॥
प्रतिपल प्यास प्रेमपथ पावन दावन लगन लवों के ।
युगलानन्य इहै सर्वस सुख इह लखि होत विसोके ॥११८॥

शब्दार्थ—सरस=प्रियतम मन में काम रस जगाने वाला। वर श्लेष=दुलहा, पति, २—उत्तम। वदन=श्रीमुख। जगत जाल=विश्व विलास। वेहाल फा०=दुर्दशा ग्रस्त। मजा (मज़ः फा०)=तमाशा। पावन = पाने के लिये। स्लवों के=क्षण भंगुर। दावन=दबाना चाहिये। प्यास=प्रबल कामना।

भावार्थ:—आशिक को चाहिये कि प्रियतम के मन में रसोद्दीपक नायिकोचित प्रेममय शृंगार सजाकर, प्रियतम को अपनी मुख छवि का दृष्टि भोग करावे तथा स्वयं भी श्रीजानकी-रमण जू की अति सुन्दर मुख शोभा अवलोकन करे। विश्व विलास दुर्दशा ग्रस्त कराने वाले हैं। जगत जाल तमाशा के समान है। मौत के मुख में डालने वाला है। अतः जागतिक भोगों को नाशवान समझ कर, उस ओर से अपने मन को रोक रखे। क्षण क्षण में प्रियतम के नेह नगर का प्रेम डगर पाने के लिये प्रबल कामना बढ़ावे तथा क्षण भंगुर भोगों के प्रति मन लगने नहीं देवे। आचार्य चरण का सिद्धान्त है कि प्रेमपथ से चलकर प्रियतम पास पहुँचे और उनकी श्रीमुख छवि अवलोकन में मगन हो जाय। यही सब सुखों सार सर्वस्व है। इसी दर्शन से जन्म मरण का शोक मिटेगा।

१५९—हिंसा हिरस हिशाव हवा हरसायत दूर बहावै ।
हसरत हुस्न हुजूर हूर से हाजिर वास रहावै ॥
मतलब फकत फना बाहर से फरस विचित्र बिछावै ।
युगलानन्य अनूप रूप रस चाखत सुपद समावै ॥२८०॥

शब्दार्थ:—हिंसा=पर पीड़न। हिरस (हिर्स अ०)=लालच। हिसाव अ०=व्यवहार। हवा अ०=कामना। हरसायत=सब समय। हसरत (हस्रत अ०) = लालसा। हुस्न अ०= सौन्दर्य। हुजूर अ०=श्रीसरकार। हूर=रूपवती रमणी। हाजिर=सन्निकट। मतलब=प्रयोजन। फकत अ० = समाप्त। फना= नष्ट। फरस (फर्श अ०) = बिछावन। सुपद = परमोत्तम श्री साकेत धाम।

भावार्थ:—आशिकों को चाहिये कि इन चीजों को निरन्तर दूर हटाते रहें—१—परपीड़न,

२—लौकिक लोभ लालच, ३—लोक व्यवहार और, ४—कामना (वासना,)। ऐसी लालसा पोषित करते रहें कि कब अपने स्वरूप में मनोरमा रमणी वाला सौन्दर्य सजाकर, श्रीयुगल मन भावन जू की सेवा में उन्हीं के समीप हाथ जोड़े समुपस्थित रहेंगे ? वाह्य जगत के सारे प्रयोजनों को समाप्त और नष्ट कर देना चाहिये तथा अन्तर्जगत के प्रियतम भोग भवन की गच्चीपर वेल बूटे से सुचित्रित गिलम गलीचे बिछाया करें। आचार्य चरण परमोत्तम श्रीसाकेत धाम के कनक महल की टहल प्राप्ति का साधन बताते हुये आदेश करते हैं कि श्रीमनहरण लाल जू की अनुपम सौन्दर्य माधुरी का सदैव समास्वाद करते रहो।

॥ मूल छन्द ॥

१६०—दिलवर दिलराम दाता दिल दरद दवा द्रुत देखो।
और तौर नहिं गौर करो सब जगह जौर प्रिय पेखो॥
होय अधीन मीन रस सम रहु गहु गुरु ज्ञान विशेषो।
युगलानन्य इश्क सादिक से गाड़ काल सिर मेखो॥ ५१॥

शब्दार्थः—दिलवर फा० = प्रेमास्पद। दिलाराम = हृदय को सुख शान्ति। दिलदरद = हृदय की विरह वेदना। द्रुत सं० = शीघ्र। गौर = विचार। जौर (जबर फा०) = शक्तिशाली। पेखो = देखो। रस = जल। सादिक अ० = सच्चे। मेखो फा० = कील, काँटी।

भावार्थः—आशिक देखे कि अपने परम प्रेमास्पद, हृदय को सुख शान्ति देने वाले, तथा विरह वेदना के उपचार स्वरूप प्राणप्यारे अपने हृदय में ही रम रहे हैं। इस दर्शन में शीघ्रता करनी चाहिये। यदि वाह्य जगत की ओर दृष्टि जाय तो जगत को प्रियतम से विरहित और ही प्रकार के शत्रु मित्र मध्यस्थ आदि नानात्व रूप में ही नहीं विचारे। प्रत्युत्। यही देखे कि सभी स्थलों पर हमारेही परम समर्थ (जौर) प्राण प्यारे चराचर के हृदयमें रम रहे हैं। जैसे मछली जल से प्रति सजकर, जल ही में रहती है, और जल ही के परतन्त्र में अपना जीवन मानती है; उसी भाँति आशिक भी प्रियतम पयोनिधि में मगन दीन मीन बन कर रहे। अपने सद्गुरु प्रदत्त रस ज्ञान को विशेष रूप से धारण करे। इस प्रकार सच्चे इश्क का बल पाकर, मृत्यु के माथे पर भी काँटी ठोक देवे अर्थात् काल से निर्भय रहे।

❀ मूल छन्द ❀

१६१—अटके छैल सुफैल गैल में खटके नजर निगाहैं।
पटके पंच प्रपंच मंच चढ़ि मगन माह मुख माहैं॥
भटके होश भुलाय अवध सरजू तट केलि निशा है।
युगलानन्य शरन हटके हरसायत अपर न चाहै॥ ३४॥

शब्दार्थः—फैल=क्रीड़ा। गैल=गली। खटके = खले, अनुचित जान पड़े। नजर= प्रियतम से भिन्न वस्तु पर दृष्टिपात। निगाह=भिन्न विचार। पटके=माथे पर से डाल दे। पंच प्रपंच = पाँच भौतिक जगत का व्यवहार बोझ। मंत्र चढ़ि = व्यावहारिक जगत से ऊपर उठ कर। मगन= ध्यानस्थ। माह फा०=चन्द्रमा। माहै=में। निशा=मस्ती। हटके= बरजते हैं, रोकते हैं।

भावार्थः—आशिकों का कर्त्तव्य है कि श्री अवध छयल दिलदार यार की क्रीड़ा गली में मन को अटकाये रहे। उससे भिन्न वस्तु पर दृष्टि पड़े या विचार जाय तो अपने मन में अनुचित जाने (खटके)। व्यवहार जगत से ऊपर उठकर, पाँच भौतिक नश्वर जगत के क्षणिक काम आने वाले परमार्थ बाधक व्यवहार बोझ को अपने माथे पर से पटक डाले। इस प्रकार निर्व्यवहार होकर निश्चिन्त अपने प्राणेश के मुखचन्द्र दर्शन में ध्यान मग्न रहे। प्रियतम के विहार दर्शन जन्य मस्ती में बाह्य जगत एवं शरीर का भान भूलकर, श्रीअवध धाम के सरयू पुलिन पर विचरा करे। यहीं साक्षात्कार होने की भी संभावना है। श्री आचार्य चरण आशिकों को सदैव मना (हटके) करते रहेंगे कि युगल दिव्य विहार दर्शन से भिन्न अन्य किसी भी वस्तु की चाहना कभी नहीं करें।

—: मूल छन्द :—

१६२—दस्तबस्त अलमस्त बहरदम दायम हाजिर बासी।
मुखड़ा मधुर सुधा सागर में मगन विशेष विलासी॥
अंग अंग अनुराग बाग वर फूल्यो सुमन सुबासी।
युगलानन्य शरन खटका तजि सजि जिय खाश खवासी॥११५॥

शब्दार्थः—दस्तबस्त: फा०=हाथ जोड़े हुये। अलमस्त (अल्मस्त फा०)=नशे में चूर। दायम (दाइम अ०)=सदैव। हाजिर बासी अ० फा० = समीप में सदा सेवा में तत्पर रहने वाला। मगन=चन्द्र चकोर वत टकटकी लगाये। विलासी=छबि रस भोक्ता। सुमन सुबासी= पुष्प सुगन्ध। खटका=भय, चिन्ता।

भावार्थः—छवि सिन्धु अवध लाल की रूप वारुणी पीकर नशे में चूर आशिक सदैव अपने प्राण प्यारे के सम्मुख हाथ जोड़े सेवा के लिये समुत्सुक रहता है। प्यारे की मधुर मनोहर मुख छवि मानो सुधा सिन्धु है, उसी में डूबकर, उसी को अपना विषय विलास मानता है। प्रियतम के अंग प्रत्यंग क्या हैं मानों अनुराग की पुष्प वाटिका है, उसमें नाना प्रकार के सुगंधित पुष्प खिल रहे हैं। श्री भगवद् गुण दर्पण में लिखा है कि प्रियतम के किसी अंग में कस्तूरी, कहीं कपूर, केतकी, कहीं खश, कहीं काले अगर, कहीं मुरामांसी, कहीं चम्पा, कहीं अशोक पुष्प, कहीं केतकी, कहीं मालती, कहीं जूही, कहीं कमल, कहीं पारिजात की सुगन्ध भरी है, जिससे परिकर वृन्द गन्धोन्मादित रहते हैं।

'कस्तूरी वासनोज्ञेषु कर्पूर स्थिरवासकः। केतकी कोटि गन्धयज्ञः पाटीरपटुगन्धकः ॥
कृष्णागरु सुगन्धयज्ञो सुरामांसी सुगन्धकः। चम्पाशोक शोकघ्नः केतकायुत सौरभः।
मालती यूथिकाम्भोज मन्दारामोद मोदृदः। पारिजात प्रसूनौधतुल्यः स्वजन मादनः ॥

ऐसे मन मोहन सौन्दर्य, माधुर्य, सौकुमार्य, सौगन्ध्यादि मधुरातिमधुर गुण गण विशिष्ट प्रियतम प्राणेश को आत्म सर्म्पण पूर्वक निर्भय मन से, खाश सेवा में सदैव तत्पर रहना चाहिये।

॥ मूल छन्द ॥

१६३—कायम रहे कदम बोशी सरशार यार रुख रंगी।
कान न करे वात वातिल भव शव सम सदा अभंगी॥
कीमत करामात कुदरत रत काफिर संग असंगी।
युगलानन्य शरन छन छन कुर्वान प्रान गुन अंगी ॥१२५॥

शब्दार्थः—कायम रहे = बना रहे। कदमबोशी = चरण चुंबन। सरशार फा० = मस्त। रुख फा० = मुख। वातिल = पागल। शव = मुर्दा। अभंगी सं० = जिसका कोई कुछ भी न ले सके। कीमत अ० = मान बड़ाई। करामत अ० = चमत्कार। कुदरत (कुद्रत अ०) = धन संपत्ति। काफिर अ० = नास्तिक। कुर्वान = न्योछावर। गुन अंगी = गुणों का साकार रूप।

भावार्थः—जो रसिक महानुभाव प्राण प्यारे श्रीजानकीरमण जू की श्रीमुख छबि अवलोकन में अनुरक्त रहते हैं, उनका सदा चरण चुम्बन होता रहे। आशिकों की दृष्टि में प्रभु प्रेम हीन सांसारिक लोग पागल हैं। उनकी बातों को सुने भी नहीं। लोक समाज में मुर्दे की भाँति असंग बने रहें जिसमें हमारी कोई भी गोप्य वस्तु कोई हमसे छीन न सके। अपनी सिद्धाई का चमत्कार दिखाकर जगत में पुजाने एवं उसके द्वारा संचित अर्थ से भोगों में फँस रहे हैं, तथा जो नास्तिक हैं, उनके संसर्ग से बचे रहें। तात्पर्य कि विजातीय संसर्ग से बचकर तथा सजातीय रसिकों में पूज्य-भाव बनाकर, हम गुण गण निधान श्री जानकी जीवन जान पर क्षण क्षण अपने को निछावर करते रहें।

* चौथा खंड, अन्तर्जगत प्रकाश *

॥ पहला अध्याय, अन्तर्देश प्रवेश ॥

॥ मूल छन्द ॥

१६४—गारत कर डारे आरत सब यार इशारत पाई।
ज्यारत करे हमेशे अंदर सनम सनेह सजाई॥
लानत लाख वार भेजे तिन ऊपर अधिक रिसाई।
युगलानन्यशरन जिनके नहि मौत मोहब्बत भाई ॥५६॥

शब्दार्थः—गारत अ०=नष्ट। आरत (आर्ति सं०)=मनोव्यथा। इशारत (इशारा का-बहुवचन) अ०=संकेत। ज्यारत (जियारत अ०)=तीर्थयात्रा। सनम=प्रियतम। लानत अ०=धिक्कार। मीत=प्रियतम। भाई=रुची।

भावार्थः आकाशवाणी श्रवण, चित्रदर्शन, स्वप्न दर्शन छाया दर्शन, रूपान्तर दर्शन, प्रत्यक्ष दर्शन आदि प्रियतम दर्शन के कई प्रकार हैं। प्राणप्यारे के किसी प्रकार से क्षणिक दर्शन भी हो जाये; और कृपासिन्धु अपनी प्रसन्नता का किंचित भी संकेतकर दें, तो इतना अपरिमित आनन्द का अनुभव होता है कि भूतपूर्व सारी विरह व्यथा एकदम मिट जाती है। प्रश्न–ऐसे क्षणिक ही सही, दर्शन होंगे कैसे ? उत्तर–अजी, सतत हूबहू साक्षात्कार होता रहेगा। मधुर प्रेम संभाषण भी उनसे होगा, उनकी विहार लीला के भी स्पष्ट दर्शन होंगे। तीर्थयात्रा तो करो। बाहर के चार धामों की नहीं, अन्तर्जगत के ध्यान देश की यात्रा करो और वहीं क्षेत्रन्यास लेकर, आजीवन जम जाओ। तीर्थयात्रा के लिये कुछ संवल, [खर्च वर्च] भी साथ में चाहिये। प्रियतम के प्रति स्नेह की राशि जमा करके तीर्थ के लिये प्रस्थान करना। जिस भाग्यहीन, अकर्मण्य को प्रियतम श्रीजानकीरमण के लिये मधुरा प्रीति नहीं रुचती है, उनके ऊपर अधिकाधिक कोप करके, लाखों वार धिक्कार भेजा करना।

॥ अन्तर्जगत में प्रवेश—साधन, जागृत दशा ॥

आरत होय पुकारो नाम को। गारत कीजे कहर करन कुल काम को ॥
ज्यारत जीवन जान भली विधि कीजिये। हरिहाँ, युगल अनन्य इमारत पर चढ़ि जीजिये ॥
प्रेमप्रकाश, १६८।

शब्दार्थः—गारत=मिटा दें। कहरकरन=दुर्दशादायक। काम=कामना, वासना। ज्यारत=तीर्थयात्रा। इमारत=कनक महल।

॥ मर्त्यलोक और दिव्यदेश में अन्तर या ध्यान की स्वप्नावस्था ॥

मोर तोर व्यवहार जगत परतच्छ का। है आलम नासूत जागरित पच्छ का ॥
नाना रंग उछाय मुलुक मलकूत है। हरिहाँ, सोई सूक्ष्मदेश कहैं अवधूत है ॥ वही, २२३

शब्दार्थः—आलम=दुनियाँ। नासूत=मर्त्य। मुलुक=देश। मलकूत=दिव्य। सूक्ष्मदेश=स्वप्नावस्था का।

॥ निर्गुण सगुण तारतम्य तथा ध्यान की सुषुप्ति दशा ॥

जहाँ न मन मति करन कलेवर भान है। सो आलम जबरूत बदै बुधिमान है।
समुझ सुषोपति तौन संत गुरु बैन सो। हरिहाँ, इसके परे अजूब महल निज ऐन सो ॥ वही, २२५

शब्दार्थः—तुरीय=सर्वोपरि चौथी ध्यानावस्था। लाहूत=ब्रह्मतन्मय। रहस=गोप्य विहार लीला। रसराज=शृंगार भावना मयी। (उस) जा=जगह। वजन=महत्त्वतौल।

❀ मूल छंद ❀

१६५–त्यागि सदन सुख साज सोहावन कौन रहस्य किया है ?
सर्वपरि निज इष्ट आस तजि तिरगुन शरन लिया है ॥

अय दिल फिरि फिर हेरि पलक टुक क्या रसरंग हिया है।
युगलानन्य शरन, हरसायत वरत विनोद दिया है॥ २६८

शब्दार्थः—त्यागि=छोड़कर। सदन=हृदय भवन। सुख साज=युगल विहार की प्रेमलीला। सोहावन=मनोरम। रहस्य=उपहास कार्य। सर्वेपरि=सबसे बड़ी। तिरगुन=त्रिगुणात्मक जगत। शरन=मन का अवलंब। अयदिल=हे मेरे मन। फिर फिर फेर=जगत से दृष्टि मोड़ कर। हेरि=अन्तर्जगत को देखो। पलक=क्षण मात्र। टुक= थोड़ा ही सा। रसरंग=प्रेमानंद। हिया=हृदय के ध्यान देश में। वरत=जल रहा है। विनोद=युगल विहार के आनंद का। दिया=स्मरण रूपी दीपक, सुरति के दियारा। (श्रीयुगल प्रिया यह छवि निरखन को हिय बिच वारो सुरति के दियरा॥)

भावार्थ:—हमारे अनंत सुखदाता हृदय विहारी ने हमारे हृदय भवन में ही सपरिकर साज सज्जा सहित सम्पूर्ण प्रमदा वन को प्रगट कर लिया है। वे यहीं अपना आह्निक एवं वर्षोत्सव विलास निरन्तर करते हैं। अतः अपने ही हृदय भवन में परम सुहावन, हिय हुलसावन सुखसाज भरपूर हो रहा है। सुखान्वेषण के लिये अन्यत्र जाने की कतई आवश्कता नहीं। अरे पाजी मन! यह तो बता, उस ध्यान सुख को छोड़कर, तुम्हारा बहिर्जगत में भाग आना, कैसी अटपटी लीला है, कुछ समझ में नहीं आता। रहस्य हो रहा है। अन्तर्जगत में बने रहते तो अपने अपरिमित सम्पत्ति शाली पतिदेव का सारा भोगैश्वर्य तुम्हें हाथ लगता जिसे "अवधराज सुरराज सिहाहीं। दशरथ धन लखि धनद लजाहीं।" वहाँ रहते तो उन्हीं की आशा उन्हीं का भरोसा बना रहता। वे स्वार्थ सुख नहीं दे सकते कि परमार्थ देने में संकोची हैं? क्या वेद पुराण विश्रुत उनकी सर्वोपरि उदारता में कुछ कमी आ गई हैं? मालूम पड़ता है तुम्हारे परमाचार्य श्री गोस्वामि पाद ने तुम्हें जो पाठ पढ़ाया सो भूल हो गये।

"करिहौ कौसलनाथ तजि, जबहि दूसरी आस।
जहाँ तहाँ दुख पाइहो, तबही तुलसी दास॥"

अरे मन, अब समझ आया। जागतिक त्रिगुणात्मिका माया की शरण में भोगलालसा से गये हो न? याद रखना ठगिनी माया का काम है सुख का मुलम्मा दिखा कर, भोली भाली जनता को अपार दुःख सागर में डाल देना। ऐसे धोखे बाज की शरण में आकर तुमने बड़ी भूल की। मेरे मित्र मन! अब भी बात मान। एक ही पलक के लिये सही, माया की ओर से दृष्ठि मोड़ कर, जरा सा अन्तर्जगत की ओर तो देख। यहाँ युगल मनरंजन लाल कैसी रस रंगमयी विहार लीला ठाने हुये हैं। यहाँ तो विनोद विलास की नित्य दिव्य दिवाली मची रहती है।

"बेगमपुर में वास किया तब डर क्या है? सबसे भये उदास आस फिर घर क्या है!
चाह चपलता मिटी खुशी बरतर क्या है? युगलानन्य नाम ढिग विधि हरिहर क्या है!

श्री प्रेम उमंग, ३८।

अगले छन्द से अन्तर्जगत प्रवेश की रीति सीखिये।

॥ मूल छन्द ॥

१६६—आसन अमर समर जीतन हित कसि के कमर किया है।
मुद्रा मधुर उन्मुनी मानस अर्चन रहस लिया है॥
आपहि आप खुला दिलबर दर देखा दरस पिया है।
युगलानन्य शौक सावित सजि जसनिधि साज सिया है॥२७५॥

शब्दार्थः—आसन अमर=सिद्धासन। समर (स्मर सं० =काम विकार अथवा माया के साथ युद्ध। कमर कसि के =तत्पर होकर। उन्मुनी मुद्रा=नासिकाग्र पर टकटकी लगाना। मानस अर्चन= मानसिक सेवा। रहस=युगल विहार चिंतन। दर=द्वार। सावित=सच्चा। शौक=उत्साह, उमंग। जसनिधि=सुयश प्राप्त कराने वाला। साज=पोशाक।

भावार्थः—अन्तर्जगत में कविश्री का प्रवेश किस रीति से हुआ श्री सुख से ही सुनिये। विना आसन की दृढ़ता के ध्यान जमता नहीं। अतः मैं सिद्धासन लगाकर बैठता था। सिद्धासन से काम विकार पर तो विजय होता ही है। माया के साथ लड़ने में भी बनता है—। माया के साथ द्वन्द युद्ध इसी ग्रन्थ में पढ़िये।

"श्री सतगुरु ललकार श्रवन करि सत समसेर चलाया है।
मोह मान मत्सर मद मनसिज फौज समौज पलाया है॥
जगत जाल जालिम समाज सब सौज जमात जलाया है।
युगलानन्य सुरंग लगा के गढ़ की गुनन गलाया है। पृ०...

ध्यान सुगमता के लिये आसन लगाने पर दृष्टि निरोधिनी मुद्रा भी धारण करनी पड़ती है। मैंने नासिकाग्र पर दृष्टि जमाने वाली उन्मुनी मुद्रा लगाई। रहस्योपासना में मैंने मानसी अष्टयाम पूजा का नियम चालू रखा। इतने ही साधन से मेरे प्रवेश के लिये प्रियतम का दरवाजा खुल गया। भीतर जाकर प्राण सर्वस्व प्यारे की मनमोहनी बाँकी झाँकी देखी। मेरी लगन पक्की थी। इसी से सुयश रूपी पोशाक सी कर पहन ली।

❀ मूल छन्द ❀

१६७—रफतम महल मानसी मनिमय मशनद मौज मुरादी।
दीदम तत्र विचित्र तमाशा रंग रहस आबादी॥
नजर मोबारक पड़ी यार की मुश्क पै अमल अजादी।
युगलानन्य रफीक बातनी पाय सरस सुख शादी॥१५७॥

शब्दार्थः—रफतम फा०=मैं गया। मसनद (मस्नद अ०)=बड़ा तकिया। मुरादी अ०= आशय के अनुकूल। मौज अ०=आनन्द। दीदम फा०=मैंने देखा। तत्र सं०=वहाँ। विचित्र= लोक विलक्षण। तमाशा=मनोरंजक दृश्य। रंग रहस=ऐकान्तिक युगल विहार। आबादी फा०=

चहल पहल, धूम धाम। नजर मोबारक=मंगलमयी कृपा दृष्टि। आजादी फा०=खुलाशा। रफीक अ०-परम सुहृद, प्राण सखा। बातनी (बातिनी अ०)=हृदय विहारी। शादी फा०=आनन्द।

भावार्थः—मैं ध्यान मार्ग से अपने हृदय में ही स्थित दिव्य मणिमय कनक महल में गया। अपनी भावन के अनुरूप ही वहाँ पर्यंक पर मसनद सजा था। मैंने वहाँ लोक विलक्षण मनोरंजक दृश्य देखा। श्रीयुगल विहारी जू के समाज में नृत्य गान का आनन्दोत्सव हो रहा है। यद्यपि वहाँ बहुत भीड़ भार थी, फिर भी प्रियतम की कृपा दृष्टि स्पष्ट रूप से खुलाशा मेरे सम्पूर्ण शरीर पर पड़ी। मैंने पहचाना यह तो हमारे ही हृदय विहारी प्राण सखा हैं जिन्हें मैं चिर काल से ढूढ़ रही थी। उन्हें पाकर जो रसमय दिव्यानन्द हुआ, वह वचन का विषय नहीं है।

'श्रीसाकेत निकेत विभव वर वल्लभ विशद विहारे।
कलित निकुंज केलि नाना विधि दृग दरसत द्युतिधारे॥
लोचन ललित लखे लोनी तसवीह ललन सुकुमारे।
युगलानन्य कदंव मोद प्रभु भजन हमेश सँवारे॥

—श्री भक्ति कान्त, ८३।

॥ मूल छन्द ॥

१६८—गमन विदेश कलेश लेश नहिं ऐसा देश हमारा है।
इश्क चपेटा लगा जिन्हों को तिनका तहाँ गुजारा है॥
उरझे प्रीतम राम रंग में जगत रंग ते न्यारा है।
युगलानन्य युगल मूरति पर तन मन धन सब वारा है॥२६६॥

शब्दार्थः—गमन=यात्रा। कलेश=पथ श्रम। लेश=थोड़ा भी। चपेटा=चोट। गुजारा=निर्वाह। उरझे=फँस गये। न्यारा=विलक्षण। मूरति=झाँकी। वारा=निछावर कर दिया।

भावार्थः—हमारे अन्तर्जगत में स्थित दिव्य विहार देश श्रीसाकेत प्रमदावन ऐसा सुगम है कि वहाँ जाने के किये बहुश्रम साध्य, बहुव्यय साध्य सुदूर देश की लम्बी यात्रा की अपेक्षा नहीं है। हाँ, वहाँ पहुँचना और टिकना उसी के लिये सम्भव है, जिसको इश्क की चोट लग चुकी है। वहाँ श्रीमैथिली रघुनन्दन युगल विहारी जू का निरन्तर संगीतोत्सव पूर्वक दिव्य प्रेम लीला होती रहती है। वहाँ जो गया,सो उसीमें उलझकर वहीं रह गया। तीनों लोक के विषयानन्द से वह सर्वथा विलक्षण है। कविश्री वहाँ अपने युगल मनरंजन को देखते ही, उन पर फिदा हो गये। उन पर तन, मन, धन, सर्वस्व सब कुछ लुटा दिया।

॥ मूल छन्द ॥

१६९—दर मंजिल जाना न हमेशे देश इमन हम पाया।
खतरा खौफ न आमद अंदक शहर लहर बिच आया॥

है किसकी क़ुदरत हज़रत अब्र करे जो अपनी माया।
युगलानन्य ज़ुहूर जसी दरसाय हुज़ूर लखाया ॥२०१॥

शब्दार्थः—दर = में। मंजिल अ० = लम्बी यात्रा। ऐस इमन अ० = विनोद विलास। खतरा = विघ्न। खौफ = भय। आमद फा० = आगमन। अंदक फा० = थोड़ा भी। शहर (शह्र फा०) = नगर। क़ुदरत (क़ुद्रत अ०) = शक्ति। हजरत (हज़्रत अ०) = बदमास, धूर्त। माया = जादू जाल, छल कपट। ज़ुहूर अ० = अवतार। हुज़ूर = साक्षात्।

भावार्थः—अन्तर्जगत में प्रवेश पाने के लिये नित्य प्रति सदा सर्वदा किसी लम्बी यात्रा की अपेक्षा नहीं हैं। एक बार प्रवेश हो गया, द्वार सब दिनों के लिये खुल गया। कविश्री कहते हैं कि इसी अन्तर्देश में मुझे दिव्य विनोद विलास का अनुभव हुआ। मैं ऐसे आनन्दोल्लासमय नेह नगर में आया हूँ जहाँ किसी प्रकार के विघ्न के आगमन की किंचित सम्भावना नहीं है। परम समर्थ रघुवीर धीर के रक्षक रहते, किस शैतान की सामर्थ्य है कि यहाँ अपने जादू टोना, यंत्र मन्त्र आदि कपट जाल फैला सके। हमारे गुरुदेव कृपावतार हैं, हमारे जैसे असंख्य पामरों के उद्धार करने का सुयश इन्हें प्राप्त है। इन्हीं कृपालु ने मुझे श्रीसरकार का साक्षात्कार कराया।

—: मूल छन्द :—

१७०—गली भली छवि मिली रली रस तहाँ सदा हम बसते हैं।
मन नव नेह सरोवर मधि नित गरक न कभी निकसते हैं॥
नाम अमोल अतोल दाम अभिराम धारि दिल लसते हैं।
युगलानन्य ज्ञान योगादिक गुंज पुंज लखि हँसते हैं॥२१९॥

शब्दार्थः—रसरली = विहारानन्द से सम्मिलित। छविमिली = प्यारे की छवि से युक्त। गरक (गर्क अ०) = डूबा हुआ; निमग्न। दाम = माला। गुंज पुंज = घुंघची का ढेर।

भावार्थः—अब मुझे अन्तर्जगत के भावना देश में प्रवेश करने की गली (संक्षिप्त राह) मिल गई है। इसी गली में मुझे श्रीयुगल मनभावन जू की छवि छटा के दर्शन होते हैं, तथा यहीं आपकी दिव्य विहार लीला का भी अनुभव होता है। हम तो भई, अब यहीं सदा सर्वदा रहा करते हैं। इससे भी बढ़कर कोई निरवधि आनन्द है जिसकी खोज में हम अन्यत्र जायँ? हमारा मन नित्य नवल, शीतल, सुखद नेह रूपी मानसरोवर में निमग्न रहता है। यहाँ से कभी निकलने का नाम भी नहीं लेता। श्रीसीताराम नाम अमोल एवं अनुपम चिन्तामणि की मनोरम माला है। हृदय से निरन्तर अखंड नाम स्मरण ही नाम माला हृदय में धारण करना है। इससे हमारे हृदय की शोभा बेहद बढ़ गई है। ऐसे महार्ह नाम मणिमाला के सामने ज्ञान योग आदि शुष्क साधन जंगली घुंघची के ढेर के समान प्रतीत होते हैं। घुंघची का लाल काला रंग आकर्षक होता है सही, पर उसमें कीमत नहीं होती। जंगल से मुफ्त गाड़ी पर लाद कर ले आओ।

'फिकर सिन्धु से पार सन्त सिरताज हैं। जिकर युगल वर बरन ब्रह्म समराज हैं ॥
खोके अपनी रीतिं प्रीति पन पगे हैं। हरि हाँ, सोके सहज समाधि रूप तकि ठगे हैं ॥

—श्री प्रेमप्रकाश, २३८।

॥ मूल छन्द ॥

१७१—श्री रामेश मोद मंदिर में जौन सुजन नित बसते हैं।
तिनकी कलित कथा कमनी तिहुँ लोक वही जन लसते हैं ॥
काम कर्म कुल कठिन कोश अफसोस रोस बिन डसते हैं।
युगलानन्य शरन आशक महबूब रूप लखि हँसते हैं ॥२६०॥

शब्दार्थः—श्री=सिया स्वामिनी जू। रामेश (राम+ईश) = ईश्वर राम, कर्मधारय समास। मोद मन्दिर=भोग भवन श्रीकनक महल। बसते हैं=मन से रहते हैं। कलित=मधुर। कथा=आनन्द चर्चा। कमनी (कमनीय सं०) = वाञ्छनीय, सुन्दर। काम = काम विकार या कामना। काम कर्म=सकाम कर्म, मनोरथ पूर्ति के निमित्त सत्कर्म करना। कोश=भंडारघर। कठिन=गंभीर संस्कार युक्त होने से छोड़ना मुश्किल। रोस (रोष सं०) = विरोध। डसना= त्यागना। हँसना=आनन्दमग्न होना।

भावार्थः—जो श्री मिथिलेन्द्रदुलारी जू सहित श्री कौशलेन्द्र राज दुलारे जू के विहारनन्द सम्पन्न श्रीकनक महल में मन से निरन्तर निवास करते हैं, उनके सौभाग्य की कैसे स्तुति की जाय? तीनों लोकों में उनकी मोदमयी चर्चा होती है और अन्वनय अलंकार की भाषा में कहना पड़ता है कि उनके समान बड़भागी केवल वही हैं।

"उनसे बड़ा और नाहीं जिनकी मति रंग रस भोई है।
योगी यती तपी ज्ञानी तिसके आगे सब छोई है ॥"

सकाम कर्म करने वाले के मनोरथों का संस्कार बड़ा ही गंभीर होता है १—अन्नमय कोश से गहरा २—प्राणमय कोश है—मनोमय कोश उससे भी गहरा है। उसी मनोमय कोश में कामनाओं के सभी बीज इक्ठ्ठे होकर, कारण शरीर बन जाता है। कारण शरीर को त्यागे विना जन्म मरण के चक्कर से छूटना कठिन है। मानसी भावना में छके रहने वाले आशिक ही उससे पिंड छुड़ा (डसते) पाते हैं। मनोमय कोश को भेदने में न उन्हें विशेष (रोष) उत्साह श्रम करना पड़ता है, इसके त्यागने में न उन्हें कोई पश्चात्ताप (अपसोस) ही होता है। अपने प्रेमास्पद श्रीजानकी रमण के मनहरण रूप को देख देख कर ऐसे आशिक आनन्दातिरेक से खिलखिलाकर हँसते रहते हैं।

॥ मूल छन्द ॥

१७२—विमल विहार वाटिका बल्लभ भाव-भानु भल भाके हैं।
भाल भलाई भीति विगत, भव भारी भान न ताके हैं ॥

ख्वाहिश ख्वार ,खबर निजपर की, फरामोश खद साके हैं।
युगलानन्य रसीले रसनिधि अवध शहर के बाँके हैं ॥ ६१

शब्दार्थः— विमल विहार=दिव्य विलास। वाटिका=फुलवाड़ी। भावभानु=सम्बन्धानुगा-प्रीति रूपी सूर्य। भाके=प्रकाशित कर दिखाया। भाल=ब्रह्मा जी की लिखी भाग्य-रेखा। भीति=भय। विगत=मिट जाता है। भव=वाह्य जगत। भान=सुधि। ताके=देखे। ख्वाहिश=वासना। ख्वार=बुरी। फरामोश=भूल गये। सद फा०=विघ्न बाधा। शाके अ०=दुष्कर, अरुचिकर। रसीले=रसास्वादी। बाँके=अनोखे।

भावार्थः—पुष्प वाटिका के समान सदा प्रफुल्लित रहने वाले दिव्य विहार देश का वहिमार्ग अनधिकारियों से छिपाने के लिये पावस की अमावस रात से भी सघन अन्धकार से आवृत रहता है। मन से दिव्य अवधनगर के अनोख निवासी की सम्वन्धानु गाप्रीति सूर्य रश्मि बनकर, उस अन्धेरे आवरण को प्रकाशित कर देती है। ब्रह्मा जी किसी के ललाट में सुख लिख देते हैं, वह प्रसन्न होता है, दुख लिखते हैं तो भयभीत रहता है। श्री अवधवासी राम आशिक को ऐसे सुख दुख की परवाह नहीं होती। मन संसार में रहे तव न यहाँ के सुख दुख का अनुभव हो ? आशिक का

"मन तहँ जहँ रघुवर वैदेही। विनु मन तन दुख सुख सुधि केही ॥"

आशिक वाह्य जगत की सुधि की ओर ताकते भी नहीं। भोग पदार्थो की बुरी वासना एवं अपने पराये के स्थूल शरीरों की यादगारी इन्हें अरुचिकर (शाके) एवं विघ्न रूप (सद) प्रतीत होते हैं। अतः इन्हें आशिक भूल जाते (फरामोश) हैं। रस की खान (रसनिधि) श्री अवधनगर के रसास्वादी, मानसिक वासी, आशिक वड़े ही अनोखे (वाँके) होते हैं।

❀ मूल छंद ❀

१७३—खुशखबरी हर रोज अजूवाँ खूवाँ महल खवासी।
माह रूय महवूबा दीदन होके खलक उदासी ॥
ताजे तरह तमाम खाम खुद ख्याल जवाल जलासी।
युगलानन्य तमाशबीन रंगीन हमशे खुलासी ॥ २४०॥

शब्दार्थः—खुश खवरी फा० अ०=शुभ संवाद। अजूवाँ (अजूबः अ०)=अनोखा। खूवाँ=अत्युत्तम। महल खवासी=दिव्य कनक महल की रसमयी टहल। माह फा०=चन्द्रमा। रूय (रू फा०)=मुख। महवूवा फा०=प्राणप्यारे। दीदन फा०=देखना। खलक अ०=वाह्यजगत। उदासी=निरपेक्ष। ताजे=तत्कालीन। तरह=भाँति भाँति के। तमाम=समस्त। खाम=कच्चा। खुद=अपने शरीर का। ख्याल=भानु सुधि। जवाल अ०=पतन कराने वाला। जलासी पं०=जला देते हैं। तमाशवीन=कौतुक देखने वाला। रंगीन=अनुरागी। हमेशे=सदा। खुलासी=स्पष्ट रूप से।

भावार्थः—दिव्य विहार महल की रसमयी परिचर्या बड़ी उत्तम होती है। इसके द्वारा युगल विहारी जू की सारी मंगलमयी गोप्य ऐकान्तिक प्रेम लीलाओं से परिचारिकाएँ सतत अवगत होती

रहती हैं। प्रियतम मुखचन्द्र के निरन्तर दर्शन इसी से संभव हैं। वहाँ के दिव्य भोगों के समास्वादन से, इस मायिक जगत के दुःख परिणामी सारे भोग पदार्थ घृणित प्रतीत हैं। अतः जगत से निस्पृह, निष्प्रयोजन हो जाते हैं। अपने शरीर सम्बन्धी (खुद) तत्कालीन भाँति भाँति की समस्त प्रयोजनीय वस्तुओं की ओर चित्तवृत्ति ले जाना [ख्याल] उन्हें पतनकारी प्रतीत होता है। क्योंकि ऐसे विचार अन्तर्जगत से मन को खींच कर वहिर्मुख वनाने वाले हैं। अतः आशिक प्रपंच चिन्ता को जलाकर भस्म कर देते हैं। इस तरह इन्हें जीवित विदेह दशा प्राप्त हो जाती है। कविश्री कहते हैं ऐसे ही जगत से उदासीन महानुभाव श्रीयुगल विहारीजू की सारी रसमयी केलि क्रीड़ाओं को प्रत्यक्ष की भाँति स्पष्ट रूप से मानसिक दर्शन करने (तमाशवीन) के अधिकारी हो जाते हैं।

॥ मूल छन्द ॥

१७४—युगलकिशोर महल मोहन मन मधुर मदन मद हारी।
प्रीतम प्रिय परिकर प्रमोद कर प्रेम पयोनिधि वारी॥
कलित निकुंज केलि मंडित अनुराग अदाग बहारी।
युगलानन्यशरन आशक वर वास खाश निरधारी ॥८४॥

शब्दार्थः—मधुर=क्षण क्षण में नवायमान होने वाली रमणीयता। परिकर=महलटहल प्रयोजनवती सहचरी, अलि, सखी, किंकरी आदि। प्रमोदकर=निरतिशय आनन्द प्रदायक। कलित=युक्त। निकुञ्ज=सघन द्रुमलता विनिर्मित गुप्त विहार स्थली। मंडित=सुसज्जित। अदाग=स्वसुख वासना कलंक से रहित। वहारी=आमोद प्रमोद परिपूर्ण। वरवास=मानसिक निवास। खाश=निजी। निरधारी=निश्चय किया।

शब्दार्थः—श्रीजनक लड़ैती एवं रघुवंश लाडिले, युगल मनहरण, यौवनारंभ माधुरी विशिष्ट ललनजू का प्रमुख भोग भवन है श्रीकनकमहल। यह महल अपनी रमणीय शोभा एवं भोगैश्वर्य के प्राचुर्य से सपरिकर युगल मनभावनजू के मन को मोहने वाला है। इन्हें मधुर इसलिये कहते हैं कि यहाँ का संगीतानन्द श्रुतिमधुर, शोभा दृष्टिमधुर, अंग सुगन्ध एवं पुष्प सुगन्ध घ्राण-मधुर. युगल अधरोच्छिष्ट प्रसाद स्वादमधुर, एवं सेवाकालीन युगल अंग स्पर्श एवं युगलललन अंग स्पृष्ट पवन स्पर्शमधुर हैं। अपनी शोभा सम्पत्ति से कामदेव को रूपाभिमान विभंजन हैं।

श्रीमहल मानो प्रेम के सुधा सिन्धु हैं तथा सपरिकर युगल ललन एवं यहाँ के भोग पदार्थ उस सिन्धु के जल (वारी) हैं। प्रियतम के अतिशय प्यारी सखीवृन्द के लिये निरतिशय आनन्द दायक है। भीतर महल में, तथा वाहरी प्राङ्गण स्थित चित्र, विचित्र, अद्भुत और आश्चर्य उपवन में नाना प्रकार के क्रीड़ा निकुञ्ज बने हैं। यथा—द्रुमनिकुञ्ज, लतानिकुञ्ज,पुष्पनिकुञ्ज, मणि निकुञ्ज विद्रुम निकुञ्ज आदि। ये सभी निकुञ्ज विहार शय्या, भोज्यपेय भोगपदार्थ, इत्र ताम्बूल आदि भोग वस्तुओं से (मंडित) सुसज्जित रहते हैं। सर्वत्र स्वसुख वासना शून्य निष्कलंक अनुराग की शोभा (विहारी) सरस रही है। श्रीजानकीरमणजू के रंगीले आशिकों ने इसी कनकमहल को अपना निजी मानसिक परमोत्तम निवास स्थान सुनिश्चित किया है।

॥ मूल छन्द ॥

१७५–जीवन जान जवाहिर जगमग जड़ित महल में रहते हैं।
ललित लाडिली लाल लोनाई लखि लोचन, दृग बहते हैं॥
मन माशूक़ मिलाय निरंतर इश्क़ कहानी कहते हैं।
युगलानन्य शरन जग ठगमग निंदा सुनत न दहते हैं॥ ८५॥

शब्दार्थः—जीवन जान=प्राण संजीवन ललन। जवाहिर जगमग=मणि रत्नों के जटित नगों की जगमगाहट। ललित सं०=क्रीड़ासक्त। ठगमग=ठगों से भरे मार्ग। दहते हैं=दुःख से छाती नहीं जलती है।

भावार्थ:—प्राण संजीवम युगल नवल ललन जू का श्री कनक महल मणिरत्नों से जटित होने के कारण, अपने प्रकाश से जगमगाता रहता है। आशिक मन से वहीं निरन्तर निवास करते हैं। केलि क्रीड़ासक्त लड़ैती लाल जू के अनूपम रूप लावण्य को अपने नयनों से बार बार देखते रहते है। अतः उनके नयनों से सतत प्रेमाश्रुओं की धारा वहती रहती है। ऐसे आशिक अपने मन को प्रिया प्रियतम के मन में मिलाकर, उन्हीं की मनोनुकूल टहल में तत्पर रहते हैं। इश्कमय जीवन होने के कारण इनकी सारी बातें इश्क से सनी होती हैं।

स्वार्थ परायण संसारी जीव एक दूसरे को ठगने में चतुराई देखाते हैं। उनकी दृष्टि में भावमगन आशिक, जगत के लिये निकम्मे प्रतीत होते हैं। अतः इनकी खिल्ली उड़ाया करते हैं। जगत का उपहास सहिष्णु आशिकों को अपनी निंदा सुनकर क्रोध नहीं होता। क्रोध ही तो छाती जलाता है।

❀ मूल छन्द ❀

१७६–आठयाम आराम मौज रस धाम बीच जो बसते हैं।
काम खाम बदनाम बाम के तरफ़ ताकते हसते हैं॥
ग्राम निवासी निर्गुन निंदक नीच न तिन से ख़सते हैं।
युगलानन्य शरन प्रीतम के मिलन हेत कटि कसते हैं॥ ८७॥

शब्दार्थः—याम सं०=प्रहर। आराम फा०=आनन्द। मौज अ०=उल्लास। धाम=महल। खाम काम=अनुचित काम। बदनाम=निन्दित। बाम=रूपवती तरुणी कामिनी। ग्राम=प्रदेश। निर्गुन (ण)=सद्गुण हीन। खसते=कर्तव्य विचलित। हेत=निमित्त।

भावार्थ:—आशिक उस युगलविहार रस से सम्पन्न श्री कनक भवन में मनसे आठो पहर निवास करते हैं, जहाँ सदा आनन्दोल्लास की तरंग उठती रहती है। उस दिव्य सच्चिदानन्दमय नेह नगर में रहते रहने, इन्हें हाड़मांस, मलमूत्र से भरी स्थूल शरीर वाली कामिनियों के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाती है। जहाँ जगत की कामिनियाँ निंदित काम विकार का विषय है, वहाँ श्री महल दिव्य काम का देश है। संसार के विषयी जीव इन कामिनियों के प्रति दृष्टि गड़ा कर, उसकी मुख छबि को

भले घूरघूर कर निहारा करें, आशिकों को तो उस पर नजर उठाकर देखना में भी उपहासास्पद प्रतीत होता है। भदेस वासी नीच प्राकृति के सद्गुण हीन निंदक, महापुरुषों में भी छिद्र ही ढूढ़ते रहते हैं, उनकी निंदा किया करते हैं। आशिक अपनी निंदा सुनकर, अपने कर्त्तव्य पथ से विचिलित नहीं होते। कविश्री की मान्यता में ये प्रियतम से साक्षात मिलने के लिये कमर कस कर तीव्र प्रेम साधना में डटे रहते हैं।

॥ मूल छन्द ॥

१७७–खिलवत खवर खलक क्या जाने खालिक महल महाला।
पहुँचे जहाँ न पीर पयम्बर अम्बर बीच बेहाला॥
जिस पर करे करम कायम उह सुरुख डोपट्टे वाला।
युगलानन्य शरन सोई निज भेटे श्री नृपलाला॥ १०३॥

शब्दार्थः—खिलवत अ० = एकान्त मिलन। खवर=सुख स्वाद। खलक अ० = सांसारिक प्राणी। खालिक=अखिल भुवन सम्राट् श्री कौशलेन्द्र राजदुलारे। महल=विहार भवन। महाला (महालः अ०)=उपाय, साधन। पीर=धर्म गुरु। पयंवर फा०=ईश दूत, अवतार कोटि के महापुरुष। अंवर=ऊपर के सप्तलोक। बेहाला फा०=अचेत। करम=कृपा। कायम=स्थायी। सुरुख (सुर्ख फा०)=लाल रंग। डोपट्टे (दुपट्टे)=चादर।

भावार्थः—उभय विभूति नायक (खालिक) श्री रघुनायक जू के कनक महल के प्राप्ति साधन क्या हैं, मुग्धा भावाविष्ट आशिक वहाँ जाकर किस प्रकार से प्रियतम के ऐकान्तिक मिलन का सुख स्वाद लूटते हैं? वे सभी बातें संसार में आसक्तचित विषयी जीव क्या समझेगा? बड़े बड़े मत मतांतर के प्रवर्तकाचार्य एवं अवतार कोटि के महापुरुषों के लिये भी वह दिव्य विहारदेश अगम अगोचर है। वे लोग तो ऊपर के सप्तलोक के भोग सम्पन्न पुण्य लोकों के भोगों में ही उलझ कर रह जाते हैं। उससे आगे वाले इस दिव्य विहार देश की उन्हें क्या खवर?

वहाँ के प्रवेश का एक मात्र उपाय है भगवत्कृपा। लाल रंग के अनुराग मय चादर ओढ़ने वाला वह अवध छयल जिस पर स्थायी कृपा कर दे, वही वहाँ पहुँचकर श्री कौशलेन्द्र राज दुलारे को गले लगा कर मिल सकता है।

॥ मूल छन्द ॥

१७८–जै जै हाटक सदन बिहारी प्यारी सहित सोहावन।
व्यजन छत्र चँवरादि अलीगन लीन्हें अति मन भावन॥
मृद मुसक्याहि पगे नव रहसनि चितवनि चाल चवावन।
युगलानन्य सनेही संपति दंपति केलि लुभावन॥ १४३॥

हाटक=सोना। हाटक सदन=कनक महल। जय=उत्कर्ष को प्राप्त हो, बढ़ा करे।

भावार्थः—हे श्री कनक भवन विहारी लाल! आपका दिव्य विनोद विलास उत्तरोत्तर उत्कर्ष को प्राप्त होता रहे, सदा समृद्धिमान बना रहे। श्री प्राणप्यारी जनक राज दुलारी के साथ आप की झाँकी बड़ी ही सुहावनी होती है। छत्र चँवर व्यजन, पानदान पीक दान इत्रदान आदि सेवा साजों को अपने अपने हाथों में लेकर जब सखी समाज आपको परिवारित करती है, उस समय आप युगल ललन अतिशय मनभावन लगते हैं। नित्य नवायमान विहारानन्द में पग कर, कभी मंद मंद मसकाते हैं, कभी रसभरी चितवनि से अपनी रमाणियों को अवलोकन करते हैं, कभी झुक झूमते हुये मस्तानी चाल से चलते हैं, कभी पान चबाने की रसीली अदा दिखाते हैं। और भी आपकी नाना प्रकार की केलि क्रीड़ एँ परिकरों के मन को लुभाने वाली है। ऐसे दिव्य दम्पति तो स्नेहासक्त आशिकों के लिये निजी सम्पत्ति हैं, सर्वस्व हैं।

* दूसरा अध्याय, अन्तर्जगत्त में नखशिखदर्शन *

॥ मूल छन्द ॥

१७९—श्यामा श्याम सुभग सरसीरुह सरिस असित सित सोहैं।
मधुर मनोज मान मर्दन कर कंज रसिक जन जोहैं॥
अवलोकनि रसभरी परस्पर सखिजन लखि ललचोहैं।
युगलानन्य शरन दंपति उर उपमा योग न को हैं॥ २०५॥

शब्दार्थः—श्यामा=षोडश वर्षीया पूर्ण यौवना के समान श्री प्रिया जू। श्याम=श्याम रंग वाले कामदेव एवं शृंगार रस के समान प्रभाव वाले अतिमनहरण श्याम वरण वाले श्री रघुलाल जू। सुभग=सुन्दर, महाभाग्यवता संयुक्त। सरसीरुह=कमल। असित=नील। सित=श्वेत, यहाँ पीत से तात्पर्य है। मनोज=कामदेव। मान मर्दन=रूपाभिमान भंजन करने वाले। कर कंज=कमल कोमल लाल तलहत्थी। अवलोकनि=चितवनि।

भावार्थः—छबीली रंगीली श्रीमिथिलेश राजदुलारी एवं छबीले छयल श्री रघुराज दुलारे दोनों ही ऐसे सुशोभित हो रहे हैं, मानो सुषमा-सरोवर में दोनों नीलपीत कमल प्रफुल्लित हो रहे हों।

"युगल छवि देखे नयन सिरात।
जनु सुषमा सर मध्य लसत दोउ नील पीत जलजात॥" श्रीरसिक अली।

मदन मान भंजन रघुनंदन के मधुर मनोहर कोमल लाल लाल तलहत्थी को रसिक आशिक ललचौहैं नयन से अवलोकन करते रहते हैं। युगल सुकुमार परस्पर गलबहियाँ डाले एक दूसरे को अपनी रसीली चितवनि से देख रहे हैं। युगल मनभावन की पारस्परिक प्रीति एवं युगल रसीली झाँकी सखिगणों के लिये परम रखनीय वस्तु है, अतः सतृष्ण नयनों से ललक कर उसे अवलोकन कर रही हैं। कविश्री को दिव्य सम्पति श्री जानकी रघुनायक जू के प्रेमसिन्धु हृदय के लिये उपमा अन्वेषण की चाहना हुई। कोई उपयुक्त उपमा नहीं फुरने से कहना पड़ा कि इनके समान और कौन होगा?

॥ मूल छन्द ॥

१८०—लीला ललित लाल प्यारी प्यारे रसिकन उर खटकी।
कीला गया काम काफिर अहि भार भार बिच पटकी ॥
पीला पटवारे प्रीतम से सुरति सुहागिन अँटकी।
युगलानन्य चढ्यो चीरा सरसब्ज सुनागर नटकी ॥२५६॥

शब्दार्थः—लीला ललित=केलि क्रीड़ामय चरित्र। खटकी=प्रेम पीड़ा उत्पन्न की। कीला-गया=मंत्र मुग्ध किया गया। काफिर अ०=दुष्ट। अहि=सर्प। भार=प्रपंच का बोझ। भार (भाड़)=भड़भूजों की भट्ठी जिसमें वे अनाज भूनते हैं। सुरति=स्मृति। चीरा=पगड़ी। सरसब्ज=लहरियादार हरा। सुनागर=चतुर, प्रवीण। नट=नृत्यक।

भावार्थः—श्रीप्रमोदवन रास विहारिणी विहारी प्रिया प्रियतमजू की सुन्दर रासलीला भाव समाधि में देखकर, प्यारे के रूपासक्त उन्मत्त रसिक आशिकों के हृदय में प्रेम की मीठी टीस उत्पन्न हो जाती है। रासलीला दर्शन के प्रभाव से आशिक हृदय का दुष्ट कामविकार, उसी प्रकार शक्तिहीन बना दिया गया जैसे निठुर सर्प को मंत्र मुग्ध बनाकर डसने में असमर्थ बना दिया जाता है। आशिक ने अपने माथे पर से व्यावहारिक प्रपंच बोझ को भड़भुज्जे के भाड़ में झोंककर भस्म कर दिया। पीताम्बरधारी श्याम सुन्दर से लगन लग गई, लगन या अखंड स्मृति लालजू की प्यारी होने से ही उसे सुहागिन कहा गया। नर्तकी सखियों के मध्य में श्रीरासेश्वरी जनकदुलारीजू के साथ बड़े कलाकौशल के साथ सांस्कृतिक नृत्य करने वाले रासविहारी रघुलालजू के माथे पर सुशोभित हरी पगड़ी, स्मृति में चढ़ गई है।

❀ मूल छंद ❀

१८१—लाल पाग अनुराग बढ़ावत सोहत लाल दुशाला।
लाल अंग अंगा मनमोहन सोहन लाल रुमाला ॥
लालजरी से जड़ित कंजपद पनही लाल रसाला।
युगलानन्य निहारि लाल छबि परिकर निकर निहाला ॥१४०॥

शब्दार्थः—अंगा=वागा। सोहन=शोभायमान। पनही=जूती। रसाला=सुन्दर।

भावार्थः—हिम ऋतु का अगहन महीना है। वार्षिक व्याह उछाह के मंगलमय अवसर पर, नवल नौशय लाल, लाललाल वसन भूषणों का शृङ्गार धारण किये हुए हैं। मनोहर माथे पर तुर्रा, कलंगी, झब्बा, सिरपेंच से सजीली लाल पाग धारण किये हुए हैं। इसको देखकर लालवरण वाले अनुराग का हृदय भी हुलस रहा है। सन्ध्या की गोधूलि की मंगल वेला पर पश्चिम दिग्वधू अरुणिम आभा ओढ़कर, घूंघट ओट से लालजी की लाल झाँकी झाँक रही है। गुलाबी ठंढी पड़ने लगी है, अतः लाल रंग का ही जड़ाऊ दुशाला ओढ़े हुए हैं। मनमोहन अंगों में मनमोहन-

लाल के लाल ही रंग का अनुरागमय मनमोहन बागा भी खूब फब रहा है। लाल कर कमल में सुगन्धसना सुकोमल लाल रुमाल क्या ही शोभा सज रहा है? नवल लालजी के लाल रसाल पद कमल में लाल रंग की मखमली जड़ाऊ जूती भी लाल रंग कीं जड़ी से जटित है। नवलनौशय लाल की अनुरागमयी लाल श्रृङ्गार शोभा अवलोकन कर सेवा तत्पर सन्निकटवर्ती सखीसमाज निहाल होकर, फूले नहीं समाती।

॥ मूल छन्द ॥

१८२—समला सबज झुकाय कलंगी झब्बा झमक विलसि के।
पटुका परम विचित्र पीत बाँकी छवि से कटि कसि के॥
बीरी विशद बदन चरवन करि, नव नागरि रस रसि के।
युगलानन्य तरफ ताको अब मधुर मोरि मुख हसि के॥१९९॥

शब्दार्थः—समला=पाग। सबज (सब्ज फा० =हरी। विलासि=विशेष शोभित करके। पटुका=कमरबन्द, कमर कसना वस्त्र। बीरी=पान का बीड़ा। बदन=श्रीमुख। रसिके= प्रेमासक्त होकर।

भावार्थः—मेरे मनभावन लाल, आज तुम्हें मेरी रुचि के अनुरूप शृंगार सजना होगा। अपने मनोहर माथे पर बाँध लेना हरी लहरियादार पाग। पाग में सुढंगी कलँगी झुका लीजियो और खूब मजेदार झब्बा झमकाकर पाग को खूब सजा लेना। हाँ, तो तुम्हें श्री प्रियाजू के अंग-वरण वाले सुनहले वसन अधिक पसंद है न? ठीक तो है, यह लो चित्र विचित्र जड़ीदार यह पीत पटुका। अपनी केहरि कमनीय कटि में खूब कलात्मक ढंग से कसकर लपेट लेना। मनरंजन लाल लो यह मसालेदार पान का बीड़ा है। श्रीमुख में रख लो। जरा मजे से चबाओ तो सही। सावधान! नवल नागरी श्रीजनक लाडिली के अनुराग रस में सदैव मगन रहना। अब आप अपनी प्यारी हेमलता की ओर, मुख मोड़कर, मधुर मधुर मुसकान से रस की वर्षा तो जरा करदो।

—: मूल छन्द :—

१८३—बादसबा खुशबोय चली आती अजहद यह प्यारी।
दर दरयाफ्त शुदे दिलबर बर जुल्फ वस्ल हिय हारी॥
चंद हजार बहारदार गुलजार निहारि बिहारी।
युगलानन्य शरन लालन लखि शरम सकोच सुधारी॥२००॥

शब्दार्थः—बाद सबा (बादे=पूर्वा हवा। सबा=सुबह की)=प्रातःकालीन पुर्वैया हवा। खुशबोय फा०=सुगन्धित। अजहद फा:=अत्यधिक। दर दरयाफ्त फा०=पूछ ताछ करने पर। शुदे (शुदः शुदः)=एक के बाद दूसरे, दूसरे के बाद तीसरे इसी क्रम से। वस्ल अ०=संयोग। बहारदार=शोभा सम्पन्न। गुलजार=प्रफुल्लित पुष्पोद्यान।

भावार्थः—प्रातः काल का सुहावना समय है। विरहोत्कंठा से अकुला कर मैं घर से श्री-सरयू पुलिन विहारी के फिराक में निकल पड़ी। श्रीसरयू तट पर पहुँचते ही ऐसा लगा कि तन मन को जुड़ाने वाली अतिशय शीतल सुगन्धित हवा पूरब की ओर से चली आ रही है। उस सुरभित समीर के संस्पर्श से मेरे रोम रोम पुलकित हो रहे थे। मैं एक एक नवेली मनोरमा से पूछ ताछ करने लगी बहन! यह इतनी प्यारी सुरभित वायु कहाँ से आ रही है? पता लगा उसी चितचोर कौशल किशोर की सुरभित जुल्फों से दिव्य सुगन्ध लेकर, यह सौरभबोझिल हवा, प्रातःकालीन सौरभ प्रसाद वितरण करती हुई आ रही है। इतने ही में देखती क्या हूँ कि हजारों दिव्यामोद से पूरित प्रफुल्लित पुष्पोद्यान की शोभा एवं सौरभ अपने अंग अंग में सजाकर, वही मनरंजन आ पहुँचा, जिसके बिना मैं छटपटा रही थी। मैं ठहरी लजीली नवोढ़ा। अपने नवल प्राणपति को अपने ही सम्मुख देखकर मैं लोक लाज से सिकुड़ गई। झट घुंघट काढ़ कर, एक लता कुंज की ओट में छिप गई, नवेली दुलहिन की शोभा है लाज संकोच सम्हालने में।

॥ मूल छन्द ॥

१८४—जुल्फैं चिलकदार रसमय मुख मधुर माह में छूटी।
उपमा कौन कहे मन मति गति ज्ञान पलक में लूटी॥
अद्भुत छटा छैल छवि मिलि मनमथन मान मद कूटी।
युगलानन्य शरन आशक की असल सजीवन बूटी॥ ३८॥

शब्दार्थः - चिलकदार=चमकीली। रसमय=इत्र से सराबो तथा श्रृंगार वरण की रसो द्दीपनी। मनमथन=कामदेव। मानमद=रूप और शौर्य का गुमान। कुटी=मिटा दिया। सजीवन बूटी=मृत संजीवनी जड़ी। माह=चन्द्रमा।

भावार्थः—श्यामले सलोने नवेले लाल की लोनी लोनी काली चमकीली सुगंध सनी घुंघराली अलकावली श्री मुखचन्द्र के गोल गोल कपोलों पर छहरा रही थी। मनमोहनी अलकावली आवृत चन्द्रवदन की उपमा ढूढ़ने निकली कवि बुद्धि। इतने ही में जालिम जुल्फों ने मनमति को दौड़ाने वाली शक्ति, ज्ञान की विवचेनी शक्ति—इन सबों को एक एक कर लूट लिया। अब आप ही बताइये इन अपहृत मनमति से उपमा अन्वेषण कैसे बने? इसी असमंजस के अवसर पर, बिना बुलाये, अपने रूप गौरव से उन्मत कामदेव श्रीमुख की समता करने के लिये आ धमका। इस पर छबीले छयल की छवि छटा भी जुल्फों की शोभा से जा मिली। दोनों ने मिलकर काम पर धावा किया। मदन के मद और मान कूट पीट कर चूर चूर कर दिया। बेचारा मनमथ किसी प्रकार अपने प्राण लेकर भाग गया। गनीमत हुई। नहीं तो न जाने उस पर और क्या क्या बीतता? इससे आप यह न समझें चोरी बरजोरी करने वाली श्री जुल्फ केवल आततायी है। नहीं नहीं यह आशिकों के लिये असली मृत संजीवनी जड़ी है। विरहिनी के गये प्राण इनके दर्शन करते ही पलटा आते हैं।

॥ मूल छन्द ॥

१८६–जुल्फैं जुलुम जहर की भीनी दरसे डसे नवीनी है।
रोम रोम में छाय रहा विष मंत्र यंत्र गति हीनी है॥
बेदरदी दिलवर अलवेला छैला छैल छवीनी है।
युगलानन्य प्रान संजीवन देखें तें दुख छीनी है॥ ८॥

शब्दार्थ—जुलुम (जुल्म अ०)=दुर्बल प्रपीड़क। जहर=विष। भीनी=सराबोर। डसे-डंक मारती है। गति हीनी=शक्ति को तुच्छ बनाने वाली। बेदरदी=निठुर। अलवेला=बेपरवाह। छैला=बाँका, सजीला, शौकीन। छवीली=छवि से भरी।

भावार्थः-श्री अवध छवीले की अलवेली जुल्फैं तो अबलाओं को सता सता कर प्राण लेने वाली हैं। न जाने जुल्फैं हैं कि महाविषैली काली नागिन हैं! नहीं जी, काली नागिन इसके सामने क्या है? इतने गजब का विष नागिनी में कहाँ पाइये? नागिनी काटेगी तब न विष चढ़ेगा, इनके तो दर्शन मात्र से विष चढ़ता है। नागिनी का विष धीरे धीरे चढ़ता है, जुल्फों का महा विष तो विद्युत धारा के समान क्षणमात्र में सर्वांग में, रोम रोम में भर जाता है। नागिन का विष मंत्र यंत्र आदि उपचार से उतर भी जाता है। जुल्फ विष के लिये सारे उपचार निरर्थक! सबों की शक्ति प्रतिहत हो जाती है। जिसके के द्वारा वह जुल्फ विष उतर सकता है, वह है वही जुल्फ वाला मनभावन। किन्तु क्या बताऊँ? बताने में भी संकोच होता है। वह है निठुर राज शिरताज। कोटि-कोटि मनोरमाएँ उन पर प्राण निछावर करने को समातुर हैं, उसे काहे को किसी के लिये कसक होगी? वह मनोज्ञ नयनाभिराम बड़ा लापरवाह है। वह कोटि काम कमनीय कान्त भाँति-भाँति का शृंगार सजाने का बड़ा शौकीन है। इतना होने पर भी कबिश्री के लिये वही है प्राण संजीवन। दूर से भी सही उसकी टुक झाँकी मिल जाय, तो सारे दुख शीघ्र लापता हो जायँ।

घायल जो जन हुये जुलुम जुल्फान में। बेशक सोई पड़े कठिन तूफान में॥
मायल मन माशूक मेहर को चाहते। हरिहाँ, पायल धुनि सुनि नेह नाह निरबाहते॥
—श्री प्रेम प्रकाश, २२६।

❀ मूल छन्द ❀

१८६–जिस को राग दिमाग लाग अनुराग झलक झलकावै।
दूजी दाह दरद तिनको फिरि कैसे आय सतावै?
जुलुफ जंजीर असीर भये सो छूटन केहि विधि पावै?
सतमन सूता उरझि रहा तिस को क्यों 'युग' सुरझावै॥ २५१॥

शब्दार्थः—राग=पराकष्ठा पर पहुँची हुई मिलनोत्कंठा वाली स्नेहासक्ति। लाग=तत्पर मन का लगाव। अनुराग=क्षण क्षण मैं नवायमान होने वाली प्रेम दशा। दूजी=दूसरी। दाह=

ज्वाला। जुलुफ जंजीर=जंजीर की कड़ियों के समान घुघराली जुल्फ की पेचदार ऐंठन। असीर अ०=कैद। सतमन द्विअर्थक=सौमन तौल में, द०—सच्चा, निर्मल मन। युग श्लेष=कविश्री की छाप, युग व्यापी काल तक।

भावार्थ:—कभी कभी प्रियतम की छवि की झलक आँखों के सामने आ जाती है। इसका श्रेय आप रागदशा वाली स्नेहासक्ति को दीजिये, अथवा प्रियतम में मन की संलग्नता को दीजिये अथवा उनके प्रति अनुराग को ही दे सकते हैं। उस छवि झलक का फल होता है विरह की तीव्र छटपटी, मर्मान्तक विरह वेदना। विरह संतप्त हृदय में दूसरा ताप नहीं व्याप सकता। जिस हृदय में विरह पीड़ा है, उसमें अन्य पीड़ा का प्रवेश अगम है।

"राम लग्यो जाको और न लागै।
नवग्रह भूत प्रेत दिव दानव ऊत पित्र जम किंकर भागै॥
कर्म काल कुल क्लेश कुमारग काम क्रोध कोई आवै न आगै।
चोर चुगुल चिंता छल जादू, यंत्र मंत्र जग कबहूँ न जागै॥
दगा दोष दुर्वाद दूत दुख, दाग दरिद्र दूर ते त्यागै।
ठग ठाकुर काँकरि कटु कंटक संक पंक पर अंक न पागै॥
लाज लोभ लालच अपलच्छन, पाप पीर पाखंड न दागै।
अनल अनिल जल थल खे के चर गोचर परचर विघ्न विरागै॥
जाग्रत सुपन मनोरथ मादक माया मोह की मुर गई बागै।
कृपानिवास कहैं मोरि लाग्यो जानकिवर पाग्यौ अनुरागै"

चितचोर अवधकिशोर के जुल्फ रूपी जंजीर से जकड़बंद बनाकर जिसका मन कैद कर लिया गया, वह मन वहाँ से छूट कर कैसे भाग सकता है? निर्मल मन सौ मन सूतों के समान उलझ गया है। थोड़े से उलझे धागे को सुलझाने में तो कालात्यय देख धीरज छूट जाता है, सौ सौ मन उलझा सूता! कविश्री कहते हैं युग युगान्तकर सुलझाते रहो, एक तरफ सुलझाओगे; दूसरी ओर उलझता जायगा। सौमन जो ठहरा!

"क्या कहूँ जुलफन उरझानी। निकसन कठिन समुझि हैरानी॥
जुलुफ जंजीर असीर कहानी। वचन अगोचर अकथ कहानी॥
अधिक करेजे आह समानी। नैनन में नित नेह निशानी।
चमकनि चाह चतुर जिय जानी। युगल अनन्य सुमति दरसानी॥"

—श्री रूप रहस्य पदावली, ५१।

—: मूल छन्द :—

१८७—अय दिल दमकदार पिल के काकुल के तरफ न जा रे।
हरएक तरह तरज तुर्रन के कसदन तहाँ सजा रे॥

एक एक वर वाल बीच दो दो शत फंद रचा रे ।
युगलानन्य शरन कोटिक विधि किये न निकसन पारे ॥३०२॥

शब्दार्थः—दमकदार=चमकीली। पिल के=एकबारगी ढलकर । काकुल फा०=जुल्फ। तरज (तर्ज अ०)=बनावट। तुर्रन (तुर्रा का बहुवचन)=घुंघराली अलक की लट, २—पुष्प गुच्छा। कसदन (क़स्दन अ०)=जानबूझकर फँसाने के मतलब से ।

भावार्थः—श्रीराम विरहिणी का रागान्ध मन बेहाथ हो चुका है। उसे समझाबुझा रही है। मेरे मीतमन, श्री अवध छयल की जुल्फें रसीली चमकीली चित्ताकर्षिणी है सही, पर है वहाँ धोखा। सावधान! विना समझे उधर ढुलकियो नहीं। अरे! वह चतुर रसिक नवयौवना मनोरमा का ही शिकार करता है। उसने जानबूझकर, अपनी जुल्फों में असंख्य फंदे सजा रखे हैं। घुँघराले लटों के जो गुच्छे देख रहे हो, उसे में पुष्पगुच्छ, पक्षी पर, कलंगी, फुदने आदि का भ्रम नहीं करना। सब पेंचदार लटों के गुच्छे हैं। एक-एक वाल में दो दो सौ फन्दे रचे हैं। कोई गिनती है, फन्दों की? सारे फन्दे तुम्हारे अंग-अंग में लिपटकर कसके जकड़ लेंगे, फिर करोड़ों उपाय करते रहे, निकला दूभर हो जागया ।

॥ मूल छन्द ॥

१८८—सादा सरस सनम सबही विधि काकुल कलित वकाई है ।
पेंच पेंच में पेंच परम परपंच उदंच रचाई है ॥
जिसजा जाय जिगर आलम का कतल न देर लगाई है ।
युगलानन्य शरन जालिम की जुल्फें जहर जमाई है ॥३०१॥

शब्दार्थः—सादा=विना श्रृङ्गार सजावट के। सरस=श्रृङ्गार रस को उद्दीप्त करने वाला। सनम अ०=माशूक, प्रियतम। काकुल=जुल्फ। कलित=सुसज्जित। बँकाई=टेढ़ापन, अँगूठीनुमा ऐंठन। पेंचपेंच=ऐंठन के प्रत्येक घुमाव वा फेरे में। पेंच=फसनावाला दाँवपेंच । उदंच - ऊपरी झुकाव। जा फा०=जगह। जिगर फा०=ध्यान चक्षु। आलम=आशिक। जालिम=निठुर।

भावार्थः मनभावनजू की जुल्फें विना श्रृङ्गार सजावट के भी गजब की करामात करने वाली है। जुल्फों में कामोद्दीपिनी शक्ति भरी है। इन जुल्फों में जो अँगूठीनुमा ऐंठन है, उसी में तो सारी कुटिलाई भरी है। कुटिलाई यही है कि प्रत्येक ऐंठन में नायिका मनको फँसाने के लिये दावपेंच बने हैं। सो पेंच भी साधारण नहीं, ऊँचे से ऊँचे ढंग को हैं। आशिक का ध्यान नयन जुल्फ के जिस भाग पर जा पड़े, वहीं से घातिनी शक्ती का प्रयोग होगा। प्राणेश आज प्राणों के गाहक बन रहे हैं। तभी तो जुल्फों में जहर जमा कर रखा है।

द्रष्टव्यः—प्रस्तुत तथा पिछले छन्द में श्री जुल्फ जी में कुटिलाई, फन्दा, धोखा आदि निन्दा सूचक शब्द प्रयुक्त हुए हैं, इसे पाठक व्याज स्तुति समझें; क्योंकि प्यारे में मन फँसाना सौभाग्य है। शब्द निन्दा के हों और आशय स्तुति से हो, तो उसे काव्यानन्द प्रदायक व्याज स्तुति नामक अर्थालंकार मानियेगा। अतः उपर्युक्त छन्द श्री जुल्फ की स्तुतिपरक हैं।

॥ मूल छन्द ॥

१८६—पाव पलक जो झलक अलक दुतिसागर आशक पावे।
तौ बेखटक खुशी हर रंग प्रति रोम एक रस छावे॥
बड़भागी अनुरागी सो सब रोज सुखोज करावे।
युगलानन्य शरन दिलवर गर लाय स्वरूप समावे॥ ३००॥

शब्दार्थः—पाव पलक=क्षण का चतुर्थांश। दुतिसागर=अति चमकीले। बेखटक=निस्सन्देह। खुशी=परमानंद। छावे=स्थायी रूप से बस जाय। स्वरूप=अपने सच्चिदानन्द सखी स्वरूप में। समावे=भावाविष्ट हो जाय।

भावार्थः—प्राण प्यारे की श्री जुल्फों में बड़ी ही चमक दमक है। चमक दुतिसागर कहना सर्वथा योग्य है। यदि किसी दर्शनातुर आशिक को किसी अन्य धन्य अंग के दर्शन नहीं हों, केवल श्री अलक जी की ही झलक मिल जाय, वह भी किंचित् काल ही के लिये सही, तब तो वह निहाल हो जाय। उस बड़भागी के नश नश में, रोम रोम में, परमानन्द की विद्युत तरंग सदा के लिये निस्सन्देह रूप से परिपूर हो जायगी। जिन्हें ऐसे दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, वह नित्य प्रति यदि श्री जुल्फ झाँकी के लिये ध्यानानुसन्धान ही करते रहते हैं, तौभी वे बड़े भाग्यवान् हैं और हैं अनुरागी। प्रेम की सर्वेच्चदशा है अनुराग। श्रीआचार्यचरण का आश्वासन वचन है कि श्री-जुल्फ दर्शनों के लिये ध्यानानुसन्धान करने वाले को एक दिन प्रियतम से साक्षात् मिलन भी हो जायगा। उस समय वह आशिक अपने निज मनोरमा सखी रूप में स्थित होकर, अपने नायकमणि को हृदय में चिपका लेगा।

॥ मूल छन्द ॥

१९०—नाजुक नाज नरम निरमल निज नैनन बीच विचारे हैं।
छोड़ि छाँह छल छाकि रहे छबि दाम उछाह हजारे हैं॥
किस ही से मतलब नाहीं माशूक इश्क हुशयारे हैं।
युगलानन्य शरन जुल्फन के जाल माँझ थकि हारे हैं॥ १८३॥

शब्दार्थः—नाजुक फा०=सुकुमार। नाज फा०=हावभाव। नरम=कोमल। निर्मल=निर्मायिक, दिव्य। दाम=समूह। उछाह=आनंद की धूम। हजारे=असंख्य। थकि=रूक कर। हारे है=अपने आपा को गवाँ दिया।

भावार्थः—अन्तर्जगत के ध्यान देश में प्रियतम की सुमधुर लीलाओं के दर्शन हो रहे हैं। उसी समय कविश्री की दृष्टि प्यारे के नयनों पर पड़ी। उस समय श्री नयन में ललित हाव विलस रहा था। ललित हाव में सुकुमारता की प्रधानता होती है। अंग भंग आदिक नाज बड़ी सुकुमारता के साथ अदा किया जाता है। नयन को भ्रू विलास मनहरण करने वाला होता है यथा—

"विन्यास भङ्गिरङ्गानां भ्रूविलास मनोहरा ।
सुकुमारा भवेद्यत्र ललितं तदुरितम् ॥" श्री उज्जवल नीलमणि,

लीला स्वारस्य जानने के लिये अन्यान्य हावों के लक्षण भी जान लेना चाहिये। यथा-१-लीला, २-विलास, ३-विच्छित्ति, ४-विभ्रम, ५-किलकिञ्चित, ६-मोट्टायित, ७ कुट्टमित, ८-विब्वोक, ९-ललित १० विहृत और ११-मौग्ध्य। हावों का लक्ष्य होता है अपने माशूक के हृदय में मदनोद्वेग जागृत करना। प्रियतम के श्री नयन में ललित हाव देखकर, अपनी भी वही मदनातुर दशा हो गई। परन्तु याद रखना चाहिये कि वहाँ की दृष्टि भोगिनी नायिकाओं की काम पीड़ा केवल प्रियतम की रसीली झाँकी मात्र से शान्त हो जाती है। पिछले क्रमांक १८५ वाले छन्द में पढ़िये 'युगलानन्य प्रान संजीवन देखे तें दुख छीनी हैं।' अतः मैं छल की छाया तक छोड़ कर, प्रियतम छबि दर्शनों में मग्न हो गई। स्वसुख चाह ही छल है। "स्वारथ छल फल चारि बिहाई।" अब मुझे अपने प्राण सर्वस्व श्री जानकी रमण में ऐसी स्नेहासक्ति हो गई है कि उनसे भिन्न किसी अन्य व्यक्ति से कोई प्रयोजन ही नहीं रह गया ॥

"राम है मातु पिता गुरु बन्धु औ संगी सखा सुत स्वामि सनेही ।
राम की सौंह भरोसो है राम को राम रँगी रुचि राच्यो न केही ॥
जीवत राम मुये पुनि राम सदा रघुनाथहि की गति जेही ।
सोई जिये जग में तुलसी नतु डोलत और मुये धरि देही ॥" श्रीकवितावली

कविश्री कहते हैं कि मैं तो प्रियतम के जुल्फ जाल फँस कर, वहीं रह गई। उसी देश में अपने आपा को गँवा दिया। अर्थात् आत्म विस्मृति हो गई। यहाँ तक सात छन्दों में जुल्फ दर्शन का प्रभाव कहा गया। यहाँ से अगले छन्दों में प्रियतम के नयन, चितवनि तथा कटाक्ष दर्शनों का अनुभव कहेंगे ।

❀ मूल छन्द ❀

१९१-निरखत नैन नेह से वारक तारक श्याम सजीवन ।
थिथकित होय रहे सचकित चित हित हेरत निज जीवन ॥
कलित कांति कमनीय कला तकि छकि छकि प्रिय रस पीवन ।
युगलानन्य शरन इत उत कहुँ चलन चाह नहिं छीवन ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—वार=एक वार भी। तारक=नयन पुतली। श्याम श्लेष=१-काली (पुतली), २-श्याम सुन्दर प्रियतम। सजीवन=प्राण दान देने वाले (यह विशषण पुतली तथा प्रियतम दोनों में उपयुक्त है)। थियकित=मुग्ध होकर जकथक रह जाना। सचकित=विस्मित, आश्चर्यान्वित। हित हेरत=धन्य समझती हूँ। कलित=युक्त। कांति=छटा। कमनीय=मनोहर। कला=चातुरी। तकि=देखकर। छकि छकि=अघाकर। छीवन=स्पर्शकरने की ।

भावार्थः—यदि कोई एकबार भी नेह भरे नयनों से प्राण संजीवन श्रीरघुलालजू के नयनों की संजीवनी शक्ति सम्पन्न काली पुतली को देख ले, तो उसकी दशा लोक विलक्षण हो जाती है। वह आश्चर्य चकित होकर अपने देह भान को भूले हुए, उसी दर्शानन्द में मग्न रहेगा। अपने जीवन को हित समझकर उसे धन्य धन्य मानेगा। प्राण प्यारे के नयनों में न जाने कितनी अदा, कान्ति सम्पन्न कितने हावभाव भरे हैं ? उन्हीं में प्रेमान्ध होकर, उन्हीं नयनों के कला चातुर्य में मुग्ध रहेगा। अघा अघाकर युगल विहार रस का पान करेगा और उन्मत्त बना डोलता रहेगा। कविश्री की वही दशा हो गई है। आप कहते हैं, अब चित्तवृत्ति को श्री नयन छवि छोड़कर, अन्यत्र कहीं जाने की इच्छा मन को छू भी नहीं पाती।

"नैन नेह निधि तोरे सलोने।
बारक तकत छकत अनमिष दृग, मगन होत हिय हेरे।
सरस स्वाद सुख सजत शौक शत, गत मत हरत सबेरे॥
इत उत चाह राह नाशत द्रुत, देत उछाह उजेरे।
युगलानन्य शरन जीवन धन, छन छन मुद घन घेरे॥"

॥ मूल छन्द ॥

१९२—सुरमे सहित सलोने सुन्दर सुषमा सर श्री सरसे।
अनुपम अमल अमोल असल अनुराग बूंद वर बरसे॥
ज्ञानी गरक गुमान मान मन मति गति बरबस करषे।
युगलानन्य नैन प्रीतम अति अद्भुत लखि हिय हरषे॥३९॥

शब्दार्थः—सुरमे=काजर। सलोने=लुनाई भरी। सुषमा सर=परमा शोभा का सरोवर। श्री=शोभा। अनुराग बूंद=प्रेमाश्रु। असल=सच्चा। अमोल=महामहिम, अतुलित प्रभाव वाले, नयनाश्रु से ही श्री सरयु उत्पत्ति। अमल=छल रहित। गरक=डूबे हुए। करषे=खींच लेता है।

भावार्थः—प्रस्तुत छन्द में श्री प्रियतम के नयनों की शोभा तथा विलक्षणता कही गई है। श्री नयन सहज सुन्दर हैं। काजर लगाने पर तो लुनाई गजब करने वाली हो जाती है। उस समय श्री कजरारे नयन, शोभा और सुषमा के शीतल सुखद सरोवर बन जाते हैं, जिन में अपने मन को अहर्निश डुबोये रखें। सहज स्नेहाधिक्य प्यारे के नवनीत कोमल हृदय को सतत द्रवणशील बनाये रहता है। फलतः कमल नयनों में अनुरागाश्रु सदा छलकते रहते हैं। उस अश्रु कला में अनेक विलक्षण गुणप्रभाव समाये रहते हैं। अश्रुबूंद के लिए मोती आदिक उपमा अयुक्त हैं, अतः अनुपम हैं। ब्रह्मद्रवप्रवाहिनी श्री सरयू जननी अश्रु कला का मोल कौन लगा सकता है ? आजकल के फिल्मी अभिनेता और अभिनेत्रियाँ नकली रोना, कृत्रिम अश्रु विमोचन की कला जानती हैं। हमारे निश्छल सरल रघुलालजू में प्रेमाश्रु बूंद अगाध अनुरागी हृदय का सहज गुण है, अतः बूंद असल हैं, नकल नहीं। अपने ही को परब्रह्म मानने वाले अद्वैतवादी ज्ञानी, ज्ञान गुमान

और ज्ञान का बोझा मस्तक पर लिये हुये, जब प्रभु कृपा से श्री नयन सुषमा की किंचित ही झाँकी पा जायँ, तो उनके सारे ज्ञान गुमान चकनाचूर हो जायेंगे और वे अपनी मति गति सब श्री चरणों पर चढ़ा देंगे। हमारे परमाराध्य आचार्यचरण जब श्री नयन शोभा की विलक्षणता पर विचार करते हैं तो आपके अगाध हृदय में भी आनन्दातिरेक नहीं अँट पाता।

॥ मूल छन्द ॥

१६३–चितवन सांग चलाय यार मम तन मन छेद किया है।
टाँका लगे न सीने माफिक ऐसा दरज दिया है॥
अगर हकीम मसीहा आवे तौभी भीति हिया है।
युगलानन्य शरन सुन्दर मुसक्यान विलोकि जिया है॥ २३४॥

शब्दार्थः– साँग=फेक कर मारने वाली शक्ति। माफिक (मुआफिक अ०)=अनुकूल। दरज (दर्ज फा०)=दरार, फटन। मसीहा अ०=मुर्दे को जिलाने वाले हजरत ईशा। भीति सं०=(मरने का) भय।

भावार्थः—मेरे परम प्यारे श्री रघुराज दुलारे ने चितवनि रूपी साँग फेंक कर मेरे तन में, मन में सर्वत्र अनेकों छेद कर दिये। दरार फट कर, दोनों ओर के चमड़े इतनी इतनी दूर पड़ गये कि आजकल का कुशल सिविल सर्जन भी आकर टाँका लगाना चाहे, तो चमड़े ही नहीं जुट पायेंगे। टाँका लगावेंगे कैसे? मुर्दे को जिलाने वाले हजरत मशीहा भी हकीम बनकर आ जायें तो वे इतने बड़े बड़े दरारों को देख स्वयं भयभीत हो जायेंगे। अथवा मुझे भी स्वयं मरने ही का भय बना रहेगा। उनकी चिकित्सा से भी अच्छे होने की आशा नहीं होगी। बलिहारी है प्यारे आपकी! आपने आ कर थोड़ा मुसका दिया। वह मुसकान मेरे लिये मृतसंजीवनी बन गई। अब तो मैं पुनर्जीवित हो गई हूँ।

"कौन सहे चितवनि की चोटें?
करत विहाल ढाल नहि मानत, गिनत नहीं कोटन की ओटें॥
अँग अँग दंग अनंग रंग रस, घायल पड़ी भूमि पर लोटें॥
'सियाराम' हिय बेधि नयन सर, जान लिया जनपति के ठोटे॥"
आ करके मेरी कब्र पर तुम ने जो मुस्करा दिया।
बिजली चमक के गिर पड़ी, सारा कफ़न जला दिया॥
–हजरत जिगर मुरादाबादी॥

॥ मूल छन्द ॥

१६४–चश्म चोट को ओट न करना लोट पोट हो जाना है।
लाज मोट को पटक शीशसे इश्क कोट खुद खाना है॥

खतरा खौफ जुदा कर फौरन नेह निशान बजाना है।
युगलानन्य खबरदारी से सोवे मन मस्ताना है ॥ ७॥

शब्दार्थः—चश्म चोट=नयनों की मार। ओट=कवच की आड़। लोटपोट=१-घायल होकर धाराशायी होना। २-मदमस्त हो जाना। लाजमोट=लोक लाज वाले शिरके बोझ। कोट=किला। खाना=घर (जैसे दवाखाना)। खतरा खौफ=विघ्न भय। जुदाकर=अलग करके। फौरन=शीघ्र। निशान=डंका। खबरदारी=मोहनिसा सब सोवनि हारा से बचकर सावधानतापूर्वक। सोवे=ध्यानस्थ होवे। मस्ताना=नशे में चूर होकर।

भावार्थः—मनभावन चितवनि का सांग चलावें, तो कवच को आड़ मत करना। उनकी वार खाकर धराशायी हो जाने में ही मजा है। अपने माथे पर से लोक लाज रूपी बोझे को पटक कर फेंक दो।

"बड़ी मूढ़ता जिय गही, लही लोक की लाज। पाछे गर्दभ के फिरे, मनहु महा गजराज ॥"

इश्क रूपी किला बंदी के अन्दर अपना सुरक्षित निवास सजाना चाहिये। इश्क किले में कौन भय? विघ्नों के भय को हटाकर, नेह का विजय डंका बजाना चाहिये। इस स्थिति में मन प्रेममस्त होकर सुषप्तिदशा में सोने के समान ध्यानमग्न हो जायगा।

"चपल चख चाह लखि भई बाल बेहाल।
कहन लगी निज नेह नशा छकि, रँग अकि जीवन जाल ?
कहा कहों कहते न बने कछु, नैन सैन सर साल।
युगल अनन्य अली घायल हित, कठिन किधौं करवाल ॥"

—श्री रूप रहस्य पदावली, ४६।

॥ मूल छन्द ॥

१६५—गजब नैन की हेरनि फेरनि आह जिगर बिच देती है।
पल में प्रान विहाल करे, सद इश्क कसौटी येती है ॥
राग रंग अनुराग जंग जप, सदन रहस गुन खेती है।
युगलानन्य शरन श्रुतिमत सत साबित शरह सुनेती है ॥ २६३ ॥

शब्दार्थः—गजब=अंधेर का। हेरनि=चितवनि। फेरनि=मरोड़। आह=विरहव्यथा। जिगर फा० =हृदय। कसौटी=सोना परखने वाला पत्थर। येती=इतना ही। राग=आसक्ति। रंग=आनंद। जंग=तीव्र साधन। जपसदन=जपस्थान। रहस=विहार। खेती=उपजाने वाली आधार भूमि। मतसत=सच्चासिद्धान्त। साबित=पक्का। शरह (शर्हः अ०)=स्पष्टार्थ। सुनेती=न इति कहने वाला वेद।

भावार्थः—मनभावन लाल के कमल नयनों की चितवनि और मरोड़ गजब की है। यह प्रेमिका के हृदय में विरह उत्पन्न करने वाली है। आशिक हृदय में क्षणमात्र में व्याकुलता जगा देती है।

इश्क परखने की सच्ची कसौटी भी प्यारे की चितवनि ही है। किस आशिक के हृदय में इससे कितनी अधिक चोट पहुँचती है ? चितवनि कला में वह प्रभाव है कि आसक्ति दशा प्रगट कर दे, अनुराग का संघर्ष छेड़ दे, लगन लगा दे। जप का तो मानो घर ही है। चितवनि देखा कि दिन रात्रि प्रियतम नाम की माला फेरा करेगा। प्रियतम की रहस्य लीला को उपजाने वाली आधार भूमि नयन शयन ही है। मधुरानन्ददायिनी लीला शक्ति भृकुटि विलास के ही सहारे रहस्य लीलाओं की व्यवस्था बनाती है। कविश्री की मान्यता में वेद का सच्चा सिद्धान्त तथा वैदिक संहिताओं का स्पष्टार्थ भी इश्क ही है।

"रमाई पिय तोरी चितवनियाँ।
मनमोहन महलन जालन बिच अधर मंद मुसकनियाँ ॥
रंग भरी तर तान गान धन, सम बेधो दिल जनियाँ।
युगल अनन्य अली जीवन धन, लालन ललित लखनियाँ ॥"

॥ मूल छन्द ॥

१६६–राजे रैन ऐन चितवनि चख चलन ललन लखि लोयन।
छाजे छैल छलाव भाव चित चाव चढ़ाय सुकोयन ॥
गाजे गरक गंभीर धीर गुन रमन करत खुशचोयन।
युगलानन्य शरन बाजे वर बीना विशद विलोयन ॥ ३५ ॥

शब्दार्थः– राजे = शोभा सजाता है। रैन = रात। ऐन = दिन। चख = नयन। लोयन = अपनी आँख। छाजे = बस जाय। छलाव भाव = छलने का ढंग। चाव = उमंग। सुकोयन = अपनी आँख की श्याम पुतली में। गाजे = मन ही मन प्रसन्न होवे। गरक = निमग्न रहकर।

भावार्थः श्री नवेले लाल के नयन और चितवनि के संचालन को आशिक को चाहिये कि अपनी आँखों से रात दिन देखा करे। आशिक अपनी नयन पुतली में ऐसा उमंग बढ़ावे कि श्री अवध छयल के नयन में नायिकाओं के मन को छलने की जो कला है, वह अपने ही नयन में बसा लेवे। कल्याण गुणगण निधान प्रियतम सुजान के धैर्य गांभीर्य आदि गुणचिंतन में निमग्न होकर उन्हीं के आमोद में मन को रमाते हुये, मन ही मन प्रसन्नता का अनुभव करे। कविश्री कहते हैं कि श्री राजिवनयन के विशाल नयनों में आनन्द की मधुरी वीणा सतत बजती रहती है।

"तिहारी चितवनि अजब रंगीली।
बारक ही हेरत उमगत उर, नशा अजूब रसीली।
लोक लाज कुल काज नसी सब, अदभुत कला कटीली।
युगल अनन्य चाह चौगुन चित, चढ़त चैन चटकीली ॥

॥ मूल छन्द ॥

१७७–गुल भी खार मिसाल मुझे मालूम हुआ अब तब ते।

जब से चसक चश्म खूनी का लगा गया मैं सब ते ॥
गिरियागिरि झरने के मानिंद लोचन पलक न दबते।
युगलानन्य शरन देखे बिन जान लगा अब लब ते ॥ १०० ॥

शब्दार्थः—गुल फा० = फूल। खार फा० = काँटा। मिसाल अ० = समान। चसक = चखावट। चश्म फा० = नयन। खूनी = कातिल, हत्यारा। मानिंद = समान। गिरिय गिरि = अश्रुस्रावी पर्वत। दबते = रुकते। जान = प्राण। लब फा० = ओठ।

भावार्थः—प्रस्तुत छन्द में व्याजस्तुति की भाषा में सर्व सुखदाता प्राणसंजीवन लाल को प्रणय कोप वश खूनी हत्यारा आदि संज्ञा से अभिहित किया गया है। कातिल कौशल किशोर की नयन छवि देखते रहने का चस्का मुझे जब से लगा है, तब से मेरी क्या क्या न दुर्दशा हुई ? देखो न फूल भी मुझे काँटों के समान चुभते हैं। वियोग में सभी सुखद दुखद बन जाते है–"जे हित रहे करत तेइ पीरा।" जैसे अश्रुस्रावी पर्वत के झरने से निरन्तर अश्रुधारा झहरती है, वही दशा मेरे नयनों की भी हो गई है। काहे को एक पलक भी रुके ? उस प्राण संजीवन को देखे विना मेरे होठों पर प्राण आ लगे हैं।

"घड़ी दो घड़ी में निकसता है प्रान।
जो आवे नहीं तू अभी जान जान ॥"
"युगलानन्य अली बिरहिनियाँ चाहत अबही मिलन मा ॥"

॥ मूल छन्द ॥

१६८–कुटिल कटाक्ष सिलीमुख मनसिज धनुष भौंह वर बाँकी ॥
नाजुक नवल निशाना नेही हनि हनि करत बिकाकी ॥
शरबत शौक पिलाय लाय उर भेंटत साहेब साकी।
युगलानन्य शरन प्रीतम मिलि नरद आम पटु पाकी ॥ २५२ ॥

शब्दार्थः—कुटिल कटाक्ष = तिरछी चितवननि। सिलीमुख = वाण। मनसिज = कामदेव। नाजुक = सुकुमार। निशाना = लक्ष्य। बिकाकी = निःशेष। शौक = उमंग, लगन। साकी अ० = शराब पिलाने वाला। साहेब = मालिक, प्राणेश। नरद = चौपर की गोटी। आम = कच्ची। पटु = चतुराई से।

भावार्थः—प्राणनाथ की कुटिल भौंह मानो काम धनुष है। तिरछी चितवनि ही मानो काम वाण हैं। तन मन वचन की परम सुकुमारी मिथिलाकुमारी आशिक ही मानो उस वाण का लक्ष्य है। वारंवार प्रहार करके निःशेष करके प्राण हर लेते हैं। प्राणनाथ ले लो जान ! तुम्हारी ही वस्तु तो है।

"नैन मैन सर चैन सम, मम मन सरस निशान।
मारिय मुद दोहन जलद, भौंह कमानहि तान ॥"
–श्री प्रेम परत्व प्रभा दोहावली।

मुग्धा नायिका को कामी नायक से मिलने में भय और लाज दोनों दबाते हैं। यदि वह शराब पिलाकर नशे में चूर कर दी जाय, तो उसकी लाज और भय नशे की बेहोशी में गायब हो जाते हैं। हमारे प्राणनाथ की भी यही रीति है। पहले अपने आशिक को उमंग की भंग पिलाकर वह मदपान करने वाला प्राणेश नशे में चूर कर देता है, फिर अपने हृदय से चिपका कर उससे मिलता है। कविश्री को प्रियतम से इस प्रकार से मिलने पर कच्ची गोटी भी खूब परिपक्व हो गई। गोटी लाल हो गयी, बाजी जीत ली। प्रियतम के हृदय में बसने वाली नायिका को क्या नहीं मिला ?

॥ मूल छन्द ॥

१९९—लली लाल लय लाड़ ललित लिपि लिखी विचित्र हमारे।
लोचन ललकि लगे लालच वश लोभी लगन लगा रे ॥
लीला लाह नाह नूतन निज जीवन जान निहारे।
युगलानन्य लखन लोनी दिन रात हिये बिच धारे ॥७६॥

शब्दार्थः—लय = प्यार। ललित = मनचाही। ललकि = चाह उमंग में भर कर। लिपि = भाग्य रेखा। लाह = लाभ। नाह = प्राणनाथ। नूतन = नवीन। जीवन जान = प्राण संजीवन। लखन = चितवनि। लोनी = सुन्दर।

भावार्थः—कविश्री कहते हैं कि विधाता ने हमारे भाल में ऐसी विलक्षण भाग्य रेखा लिखी है कि हम अपने प्रेमास्पद लाडिली लाल को मनमाना लाडप्यार किया करेंगे। कविश्री के चरित्र लेखक ने बताया है कि एक बार किसी विज्ञ ज्योतिषी ने आपकी जन्म कुण्डली देखकर, यही उपर्युक्त बात बताई थी। हमारे दर्शन लोलुप नयन ललक कर इष्ट युगलछवि में जाकर चिपक गये। तभी से उनसे अटूट लगन लगी है।

'मन सों अपर महीप नहिं, दृग सों दिगर दिवान।
दृग दिवान जेहि आदरे, मन तेहि हाथ बिकान ॥'

इसका लाभ यह हुआ कि हमने अपने प्राण संजीवन का साक्षात्कार किया तथा आपकी नित्य नई नई विहार लीला का अनुभव होने लगा। प्रियतम चाहे किसी भी लीला में लगे हों, हमारी दृष्टि तो रातदिन उनकी सलोनी चितवनि ही में ही, लगी रहती है। श्री चितवनि हृदय में बस गई है।

'चटकीली चितवनि चमक, चोरति चित्त चलाक।
चमन चाय दरसाय दुति, देत जहान तलाक ॥

. श्रीप्रेमपरत्व प्रभा दोहावली पृ० २०।

यहाँ से दो छन्दों में पाठक को प्रियतम मुस्कान और हसन का मजा चखाया जायगा।

❁ मूल छन्द ❁

२००–सिय वल्लभ मुसक्यान शान सर अमित असमसर मोहन।
ऐसो कौन जौन वरवश वश होय न जोहत सोहन॥
बाल युवा वर वृद्ध बिके बिन मोल फिरे लगि गोहन।
युगलानन्य शरन आशक की संपति सुख संदोहन॥ ३६॥

शब्दार्थः- शान अ० = तेज, प्रताप। अमित = असंख्य। असमसर = कामदेव। जोहत = देखते ही। सोहन = शोभा सम्पन्न। गोहन = पीछे पीछे। संदोहन = समूह, पुंज।

भावार्थः—श्री जानकी वल्लभ रंगीले लाल की मुसकान में प्रवल प्रताप है। इनमें अनन्त काम वाण से भी अधिक सम्मोहन प्रभाव है। काम के पंच वाण प्रसिद्ध हैं—यथा–१–सम्मोहन, २–उन्मादन ३–स्तंभन, ४-शोषण और ५–तापन। ये सभी प्रभाव श्रीमुसकान में कामवाण से बढ़ चढ़ कर हैं। आप की सुशोभन मुसकान देखते ही हठात् आपके वश में न हो जाय, ऐसा कोई भी व्यक्ति न मिलेगा। मुसकान मंत्र से मोहित होकर, क्या बालक, क्या युवा, सभी विना मोल के आपके हाथों विक जाते हैं और श्री मुसकान का मजा चखने के लोभ से आपके पीछे पीछे डोलते रहते हैं। कविश्री की मान्यता में श्री मुसकान आशिकों के लिये सुख पंज सम्पत्ति है।

"हसनि पिय तेरी नीकी लागे।
चमकनि चपल चाँदनी चख चहि, रोम रोम अनुरागे।
दमक दामिनी महामनिन की, छटा न समता जागे॥
रसिक चकोर चतुर चारो दिसि, चितै माधुरी रागे।
युगल अनन्य ज्ञान साधन फल, समल समुझि तृन त्यागे॥"

श्री रूप रहस्य पदावली।

अगले छन्द में प्यारे के प्रेम संभाषण श्रवण का प्रभाव पढ़िये।

—: मूल छन्द :—

२०१–गुफतम इश्क लपेटी बानी सानी सुधा सयानी।
ज्ञातं नैव मया किञ्चित गुन सिंधु प्रवाह समानी॥
हम तुम टेक विवेक छोड़ि सब तेरे करन बिकानी।
युगलानन्य नेह नैनन से निरखि हँसो दिलजानी॥ ७८॥

शब्दार्थः—गुफतम = कहा। वानी = वचन। सयानी = चतुराई भरी। ज्ञातं सं० = जाना। मया सं० = मैं ने। नैव = नहीं। किञ्चित = कुछ भी। प्रवाह = धारा। समानी = डूब गई। टेक = आदत। विवेक = समझ। करन = हाथों। निरखि = देख कर। दिलजानी = अन्तर्यामी यहाँ प्राण सर्वस्व।

भावार्थः—रंगीले लाल, तुमने मुझ से जो प्रेमामृत सनी चतुर वाणी कही थी, उसे सुनते ही मैं तो मंत्र मुग्ध हो गई। उस समय मुझे अपने पराये एवं जगत का कोई भी भान नहीं रह गया। केवल तेरी रसीली बोलनि हसनि चितवनि आदि मधुर गुण गणों की मधुर धारा मेरे ज्ञान देश में बह रही थी। मैं उसी में डूब गई। अर्थात् गुणचिंतन में मग्न हो गई। चिरकाल से मैं अरु मोर तोर तैं माया॥ की भाषा में बोलने और सोचने समझने का स्वभाव पड़ा था। तेरी रसीली वाणी श्रवण और गुण गण चिंतन से सभी मिट गये। मैं तो तेरे ही करकंजों में विना दाम के बिक गई हूँ। मेरे प्राण सर्वस्व, जीवन धन! कृपया नेह भरी चितवनि से मेरी ओर दृष्टि दीजिये और थोड़ा ही सा हँस तो दो। मुसकान में मृत संजीवनी शक्ति है।

बलि जाउँ बैन सुधा रस भीने।
अति अमोल मृदु मोल लेत मन, मनहुँ बसीकर कीने॥
श्रवन सरस सत स्वाद प्रकाशत, चित्त एकरस दीने।
युगल अनन्य बकाई पूरन प्रेम सुधा छबि छीने॥"

अगले चार छन्दों में कविश्री के प्रियतम कुंडल दर्शन का अनुभव पढ़िये।

॥ मूल छन्द ॥

२०२—क्या तारीफ करें कुंडल दुतिदार हजारों हारे हैं।
विशद विधू वर वदन काँति लहि लहलह लहर बहारे हैं॥
नेही नैन नवीन नशा निज नस नस विमल विहारे हैं।
युगलानन्य शरन आशक को तिल की ओट पहारे हैं॥ १८५॥

शब्दार्थ—तारीफ फा०=प्रशंसा। दुतिदार=प्रकाश कर्त्ता, सूर्य चन्द्रादि। वदनविधू=मुख चन्द्र। कांति=चमक, प्रभा। लहर=चमक का चढ़ाव उतार। बहारें=रौनक। तिल की ओट=दर्शन में स्वल्प व्यवधान।

भावार्थः—प्राण प्यारे के मणिजटित स्वर्णमय मकराकृत कुंडल की प्रशंसा किन शब्दों में करूँ? इनमें इतने प्रकाश हैं कि इनके सामने हजारों सूर्य चन्द्रादि के प्रकाश फीके पड़ रहे हैं। श्री कुंडल प्रकाश में श्री मुखचन्द्र की आह्लाद प्रसारिणी छबि छटा मिल गई है। इससे इनकी कांति चौगुनी बढ़कर. उसकी लहलहाती हुई लहर विशेष जगमगा रही है। स्नेही दर्शकों के नयनों में नई प्रेम-मादकता छा गई है। इनके नस नस में, रोम रोम में, दिव्यानन्द की विद्युद्धारा प्रवाहित हो रही है। कविश्री का स्वानुभव है कि श्री कुंडल छबि अवलोकन में तिलमात्र का व्यवधान पहाड़ के समान आँखों में खटक जाता है। किंचित भी विक्षेप सह्य नहीं हैं।

॥ मूल छन्द ॥

२०३—कल कुंडल कमनीय करन हिय हरन हमश झूमते हैं।
अमल अनूप आदरस मिलि मदमस्त सुखूब दूमते हैं॥

आशक असल कतल करिके फिरि फंद फरेबी घूमते हैं।
युगलानन्य शरन परिकर चित चख चमकन चल चूमते हैं ॥१७२॥

शब्दार्थः कल=सुन्दर। कमनीय=मनोहर। करन [कर्ण सं०]=कान। अमल=दिव्य। आदरस (आदर्श सं०)=दर्पण (यहाँ दर्पणवत कपोल से तात्पर्य है। मद मस्त=प्रेम नशे में चूर। दूमते=डोलते। फंद=फँसाने की युक्ति। फरेबी फा०=धोखेबाज। चख [चक्षु सं०]=आँख। चल=चंचल।

भावार्थः—ललचावनी छबि से सम्पन्न मणिमय मनोज्ञ कुण्डल की सुछबि, दर्शक चित्त को बरबश चुराये लेती है। श्रवणदेश का गौरवमय निवास पाकर, ये निरन्तर आनन्दातिरेक से झूमते रहते हैं। प्रियतम कपोल दर्पण के समान प्रतिबिम्बग्राही है। उनके परमानन्दमय संस्पर्श पाकर, उनकी छवि छटा से विशेष प्रभासित होकर, आनन्दोन्मत्त बन बैठे हैं। उसी की खुमारी में खूब झूम झमक रहे हैं। श्री कुण्डल में न जाने कैसी अलक्ष्य धार है, कि सच्चे आशिकों को कतल करके भी संतोष नहीं। और भी अधिक गजब ढाने की नीयत से छल कपट धोखेबाजी रचने के चक्कर में इधर उधर घूम रहे हैं। (श्रीकुण्डल की व्याज स्तुति में यह व्यंगभाषा आनन्द सरसाने के गुण प्रकाश निमित्त प्रयुक्त हुई है।) कविश्री का अनुमान है कि श्रीकुण्डल की चंचल चमक जब प्रियतम परिकर समाज के नयनों में, चित्त में प्रतिभासित होती है, तो उन्हें लगता है मानो यह चमक दुलार में भर कर इन स्थलों का (नयन चित्त का) चुम्बन कर रहे हों।

❀ मूल छंद ❀

२०४—लागी जन जीवन जगमग मनि मधुर लगे हर रंगी।
पाँचों रस चहुँ पास फँसे रति रसे लसे सद संगी॥
वारक दृग ताकत ताकत उर उमगत रहस तरंगी।
युगलानन्य शरन कुण्डल छबि कवि क्यों कहे उतंगी॥१८६॥

शब्दार्थः—लागी=प्रेमासक्त। जन=स्वजन, शरणागत। मधुरमनि=मणि कणिकाएँ। हररंग=पाँचों में प्रत्येक रंग। रति=स्थायी भाव। लसे=सुशोभित। सद=सच्चे। वारक=एक वार। ताकत=१ देखने पर, २-बल। तरंग=उत्साहावेश। उतंगी=अत्युत्तम।

भावार्थः—श्री स्वर्ण कुण्डल में पाँच रंग की जगमग प्रकाश करने वाली मणि कणिकाएँ नग रूप में जटित हैं। मानो प्रेमासक्त भक्तों के पंच प्राण हों। अथवा भक्ति के पाँच रस १-श्रृङ्गार, २ सख्य, ३-वात्सल्य, ४-दास्य और ५-शांत ही श्रीकुण्डल के पाँच रंगों की मणिकणिकाओं के व्याज से बस गये हैं। रस शास्त्र में श्रृङ्गार रस का वर्ण श्याम, सख्य का पीत, वात्सल्य का लाल, दास्य का चित्र विचित्र और शांत रस का उज्ज्वल माने गये हैं।

ये पाँचो रस अपने अपने रति, वत्सल, आदिस्थायी भावों के साथ रस से परिपूर होकर, श्रीकपोल का सत्संग एवं श्री श्रवण का आश्रयण पाकर, आनन्द में फूले नही समाते, मद मस्त डोल रहे हैं।

पंच रस के भक्तों ने अपने अपने भाव्य रसों को ही अपने अपने प्रतिनिधि बनाकर श्री श्रवणदेश के कुंडल वाली केन्द्रीय सभा में नियुक्त किया है। बड़ों के कान होते, आँखे नहीं होतीं, यह लोकोक्ति श्री जानकीकांत जू में विशेष चारितार्थ होती है। 'देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने॥' श्रीकान दरबार में ये रस रूपी प्रतिनिधि, अपने अपने आश्रित भक्तों की ओर से उचित पैरवी किया करेंगे।

कोई आशिक एक बार भी श्री कुंडल छवि अवलोकन कर ले, तो उसके हृदय में नवल स्नेहोत्साह का बल (ताकत) उमड़ आता है, तथा रहस्य भावना की हलोरें अलोडित होने लगती हैं। कविश्री की मान्यता में लोक भाषा में कवित्त करने वाले कवि श्री कुंडल की परमोच्च (उत्तुंगी) दिव्य शोभा कहने में सर्वथा असमर्थ हैं।

॥ मूल छन्द ॥

२०५–जिसके झोंक झमक झाईं अन्दर मन मौज मोहब्बत हैं।
जाने जिगर जहान जलाने वाले रसनिधि सोहबत हैं॥
डोलन अनमोलन गाँठी दिल खोलन अदभुत तोहमत हैं।
युगलानन्य शरन सुमिरन सजु शान समेत न ओहमत हैं॥ १८७॥

शब्दार्थः—झोंक=डोलन। झमक=प्रकाश, चमक। झाईं=प्रतिबिंब। मौज फा०=तरंग। जिगर फा०=हृदय। जहान फा०=संसार। रसनिधि=रस समुद्र श्री कपोल। सोहबत फा०=संग। तोहमत (तुहमत अ०)=शंका, संदेह। शान=उत्तमता पूर्वक। ओहमत (वहमत अ०)=भ्रान्ति।

भावार्थः—श्री कुंडल की डोलन कालीन चमक, जब श्री कपोलदेश में प्रतिबिंबित होती है, तब की कपोल के अभ्यन्तर प्रकाश की लहर किलोलती हुई प्रतीयमान होती है। मन में मधुररति की लहर भी उसी भाँति मौज दरसाती है। श्री कुंडल को रसनिधान श्रीकपोल के संस्पर्श में क्या रसानन्द मिलता है, किसी चिरवियोगिनी से कान्त मिलन सुख का स्वाद पूछिये। शृंगार रस में संयोग सुख की उत्तरोत्तर उदीयमान चारस्तर वालें चार प्रकार की दशाएँ बताई गई हैं। १–संक्षिप्त २ संकीर्ण, ३–संपूर्ण और ४–समृद्धमान चिरवियोगिनी को प्रियतम संयोगमें सर्वोच्च समृद्धमान रसानंद का अनुभव होता है। यही रससुख श्रीकुंडल को प्राप्त हैं। 'सुखेन ब्रह्म संस्पर्श मत्यन्तं सुखमश्नुते।' (श्री गीता) यदि आशिक के हृदय में किसी विलक्षण संदेह शंका की वज्रागाँठ पड़ गई हो, तो वह श्रीकुंडल की डोलन देख ले। शंकागांठ खोलने की अनमोल करामात है इनमें। कुंडल डोलन देखा कि सारीशंका निवृत! कविश्री का उपदेश है कि श्री कपोल श्रवण सहित कुंडल का स्मरण करते रहिये, मोह भ्रम की संभावना नहीं रह जायगी।

॥ मूल छन्द ॥

२०६–चिबुक बिन्दु शुचि श्याम पीत अवलोकत आप भुलाये हैं।
लीन हुये लाशक तिस ही थल बिन ही दाम भुलाये हैं॥

हर हमेश दीदार यार रुखसार बहार झुलाये हैं।
युगलानन्य शरन वरवस वर वल्लभ विशद दुलाये हैं ॥१८२॥

शब्दार्थः—शुचि=शृङ्गार रस। अवलोकत=देख देखकर। लाशक=निस्सन्देह। मलाय=विक गये। दीदार फा०=दर्शन। रुखसार फा०=कपोल। बहार=छवि छटा। झुलाये=मस्त झूलते हैं। दुलाये=दोनों मनभावन को ले आये हैं हृदय में।

भावार्थः—कविश्री को युगल मनरंजन ललन की सर्वांग शोभा अवलोकन करते करते, दृष्टि अब श्री चिवुक विंदु पर आ अँटकी है। देखते क्या हैं कि श्री सिया जीजी के गौर चिवुक के सुरम्य नोंकिले भाग पर, कस्तूरी की सूक्ष्म विन्दु विलस रही है तथा उधर प्यारे के चिवुकाग्र भाग पर गोरोचन की अल्पविंदु न्यारी ही शोभा सज रही है। इन चितचोर नील पीत विन्दुओं की मनोरम शोभा देखते देखते कविश्री अपना देह भान भी भूल गये। मानो अपनी हस्ती [अस्तित्व] ही मिट गई। श्रीविन्दु ने विना दाम के मोल खरीद लिया। विंदु से श्री कपोल देश दूर नहीं है। कपोल शोभा ने चुम्वक की भाँति दृष्टि को अपनी ओर खींच लिया। वहाँ पहुँच कर निरन्तर श्री-कपोल [रुखसार] शोभा को देखते रहते हैं। उस छविछटा से ऐसा दर्शनानन्द उमड़ आया है कि उसी मस्ती में मतवाले की भाँति झूमने लगे हैं। कविश्री को अपने को खोने में कोई पश्चाताप नहीं है। क्योंकि एक गया तो दो हाथ लगे हैं। दोनों मनभावन को अपने हृदय भवन में अपना सर्वस्व वनाकर ले आये हैं। मालोमाल हो रहे हैं अब तो।

'प्रीतम प्यार अपार माँझ मनमाना है। दुविधा दूरि दुराय नेह नजिकाना है।
चिवुक चारु वर विंदु अजूव देखाना है। युगलानन्य शरन ताकत मस्ताना है॥'

श्री प्रेम उमंग, ८५।

॥ मूल छन्द ॥

२०७—कनक कड़ा मनि रतन जड़ा उर अंतर अड़ा हमेशे हैं।
कल केयूर मधुर मुदरी कटि किंकिनि सुरव सुदेशे हैं॥
मोती माल रसाल आभरन सजे सहित आवेशे हैं।
युगलानन्य शरन अंगन की कांति माँझ नित ऐशे हैं॥१०४॥

शब्दार्थः—कनक कड़ा=सोने के चूड़े। श्री हाथ के पतले, श्रीचरण के अपेक्षाकृत मोटे होतेहैं। उर अन्तर=हृदय के देश में। अड़ा=अटके हैं। केयूर=विजायठ नामक भुज भूषण। मधुर=छोटे आकार के। मुदरी=छल्ले। सुरव=मनोरम ध्वनि। सुदेशे=श्रवण मधुर। रसाल=रसोद्दीपक। आभरण=भूषण। आवेशे=उमंग से। ऐशे=शोभा विलास।

भावार्थः—स्वर्ण रचित मणि रत्न खचित कड़ा नामक भूषण श्रीरंगीलेलाल को सुकुमार कलाई पर विलस रही है तथा कड़ा ही नामक कुछ मोटे आकार के उसी शान वाले भूषण मनरंजनी लड़ैतीजू के श्रीचरण गुल्फों पर फब रही है। ये भूषण अपनी शोभा संपति के सहित हृदय देश में

जा कर अटक गये हैं। अर्थात् ध्यान में सतत दर्शन देते रहते हैं। युगल सुकुमार की सजीली भुजाओं पर केयूर की कुछ और ही शोभा है। करांगुलियों में मधुर मनोहर मुद्रिकाएँ धारण कर रखी हैं। उभय रूपवंतों की केहरिकमनीय कटि में किंकिणी नामक घुंघरूदार भूषण अंग संचालन काल में संगीत रीतिकी श्रवण मधुर ध्वाने प्रकटाते रहते हैं। हृदय देश पर मोति माला तथा अन्यान्य रसीले मणि भूषण बड़े शौक से युगल अलबेले जू सजे हुये हैं। श्री भूषण न भी रहें, तौभी श्री युगल किशोर की चित्ताकर्षिणी अंग कांति मात्र अपने शोभा विलास से दर्शक के मन को मस्त बना रहते हैं।

"नखशिख सुंदर सुछबि सहस रविधूरी है। जाय जहाँ मन मत लहे रसभूरी है।
वारक नजर निगाह करत जन नूरी है। युगलानन्य नाम रमु जीवन मूरी है॥

॥ मूल छन्द ॥

२०८—मेहदी मधुर मोहब्बत मनसिज मेहरवान मृदु ताजी है।
मान समान मानती महरम ललित लालसा राजी है॥
रीति पुनीत मनोहर सोहर सरस स्वाद सत साजी है।
युगलानन्य कंज करतल लखि नेह सुनौवत बाजी है॥ ७५॥

शब्दार्थः—मधुर मोहब्बत=पति पत्नि संबंध वाली प्रीति। मेहरवान फा०=कृपालु। मृदु=कोमल। ताजी फा०=नवीन। मान समान=मान में लीन। मानती=मानवती विलासिनी। महरम=(मान मोचन कला के) मर्मज्ञ। ललित=कामुक। लालसा=मनोरथ। राजी=अनुकूल बनी। सोहर=शोभन। नौवत बजाना=प्रताप की घोषणा होना।

भावार्थः—श्री जानकी रमण जू की लाल लाल तलहत्थी में लाल रंग की मेहदी क्या है मानों पति पत्नि सम्बन्धिनी मधुरा प्रीति हीं, इस व्याज से करकंज में विलस रही है। करपृष्ट भाग का श्यामवर्ण उमदेश में दाम्पत्यरति प्रगाढ़क कृपालु काम हीं का निवास बता रहा है। करके उभय भाग दर्शनों से वह कोमल प्रीति और भी नवायमान हो जाती है।

"दम्पत्योर्प्रीतिरन्योन्यं या भवेत्काम कारणात्।
सा शृंगार रसो ज्ञेयो रस तत्त्व विशारदैः॥" साहित्य दर्पणे।

मेहदी मानिनी मनोरमा के मानमोचन कला की मर्मज्ञ है। क्योंकि मेहदी दर्शन करते ही उसके मन में इतना मदनावें उमड़ आता है कि वह विना मनाये रसिक लाल की राजी हो जाती है। मेहदी की प्रीति रीति मनोज्ञ है, शोभन है। मेहदी रंजित करकंज के संस्पर्श में क्या सुख स्वाद है, दिव्य विहार देश की भुक्तभोगिनी कामिनियों को छोड़ और कौन जानेगा? कविश्री को रंगीले लाल के मेहदी रंजित लाल करतल देख कर, उसी रंग का अनुराग इतना उमड़ा कि वहाँ नेह का नगाड़ा बजने लगा।

॥ मूल छन्द ॥

२०९—नाजुक अदा सदा चश्मों में बसे जुदा नहि होंदी।

काम कमान वंक भृकुटी भल तमक तिरपुटी खोंदी ॥
चमकदार दीदार चाल चित चोरन चैन निचोंदी ।
युगलानन्य गुमानी गभरू गरक सनेह सुखोंदी ॥ २६८ ॥

शब्दार्थः—नाजुक अदा=सुकुमारता विशिष्ट ललित हाव। चश्मों फा०=नयनों। जुदा फा० =अलग। होंदी प०=होती है। काम कमान=काम धनुष। वंक=टेढ़ी। तमक=तेजी से। त्रिपुटी सं०=त्रिकोण वाण। खोंदी पं०=फेंका। दीदार फा०=छवि। निचोंदी पं०=निचोड़ कर निकाल दिया। गभरू पं०=दुलहा। सुखोंदी=प्रसन्न हुआ।

भावार्थः—प्राण प्यारे की सुकुमारता विशिष्ट अंगभंगी ललित हाव कहाती है। यह ललित हाव कविश्री के नयनों में दिन रात बसा रहता है, क्षणमात्र भी विस्मरण नहीं होता। प्यारे की टेढ़ी भौंह काम धनुष की शोभा सज रही है। त्रिपुटी पर तनक सा जोश का संचार ऐसा होता है मानो रोष में आकर, त्रिकोणाकार वाण धनुष पर चढ़ा कर चला दिया है। प्यारे की चमकीली सुछवि तथा मस्तानी चाल चित्त को चुराने वाली है तथा हृदय की शान्त दशा को निचोड़ कर फेंकने वाली है। कामिनी संयोग सुख के लिये सदा बेचैन रहती है। गर्वीला दुलहा औरों को सनेह में डूबा कर ही प्रसन्न होता है।

"छबीली चमक चाल न्यारी।
करिवर हंस प्रसंस आदि सब उपमा निरसनहारी।
मृदु मुसकाय धरत धरनी पद जीव जिवावन वारी ॥
परिकर प्रान समान प्रेम पन पूरन सरस सँवारी।
युगल अनन्य शरन अनुछन सब भाँति सुमति बलिहारी ॥"

❀ मूल छन्द ❀

२१०–तेरी ऐंड गरूरी रूरी भूरी भाग भला है।
मुझे जीवनी मूरी नूरी पूरी प्यास सला है ॥
तूरी मोह मोहब्बत सब की कूरी काम कला है।
युगलानन्य सबूरी दरदिल पिलके रंग रला है ॥ ६४ ॥

शब्दार्थः—एंड=अकड़। गरूरी=घमंड। रूरी=मन भावनी। भूरी=बहुत। जीवनी मूरी =संजीवनी जड़ी। नूरी=प्रकाश। सला फा०=बुलाना, अवाज देना। तूरी=तोड़ डाला। कूरी= बुरी। सबूरी फा०=धैर्य। पिलके=मिलके। रंग रला है=आनन्दोत्सव मचा है।

भावार्थ:—प्राणेश, आपकी अकड़ और गर्व भी बड़े मनोरम हैं। मेरे लिये तो सौभाग्य घन ही है। मेरे लिये यह शोभा विलास संजीवनी जड़ी है। इस से दर्शन प्यास की मांग बढ़ती है। आप ही के लिये तो मैंने जगत के सारे नेह नाते तोड़ डाले हैं। क्या करूं, नायिका हृदय के लिये काम की संदीपन कला बहुत बुरी होती है। कविश्री को संतोष है कि मिलन सुख तो यथा अवसर होगा ही। इससे धैर्य ने मिलन आशा का आनन्दोत्सव मचा रखा है।

॥ मूल छन्द ॥

२११—नख शिख नवल माधुरी मनसिज मान मथन अवलोके ।
मख मन हरन नाम अंतर उर रचत रहे अविशोके ॥
चख चख गुन पीयूष महारस तके न काहू लोके ।
युगलानन्य परम प्रियतम प्रिय नेह नाज नव नोके ॥३३॥

शब्दार्थः—नवल माधुरी=क्षण क्षण में नवायमान होने वाली रूप मधुराई । मनसिज मान मथन=कामदेव के रूपाभिमान को भंग करने वाले । अवलोके=देखते रहे । मख=यज्ञ । रचत रहे=स्मरण करते रहे । पीयूष=अमृत । लोक=पुण्य देश । यथा जन लोक, तपलोक आदि । नोकना=ललचाना ।

भावार्थः—श्री मनभावनलाल के श्रीचरण नख से मस्तक की शिखा पर्यन्त सर्वांग शोभा में नव नवायमान माधुरी भरी है जो कामदेव के स्वाभिमान को भंजन करने वाली हैं। इन्हें सतत ध्यान मार्ग से देखते रहना, आशिकों का अनिवार्य कर्त्तव्य है ।

श्रीराम नाम कीर्तन करने वालों को राजसूय यज्ञ से सहस्रगुणा अधिक फल मिलता है ।

राम रामेति रामेति कीर्त्तयेच्छुद्धचेतसा ।
राजसूय सहस्राणां फलं प्राप्नोति मानवः ।।

अपने फलदान में नाना प्रकार के बहुव्यय साध्य यज्ञों के मन को हरने वाले श्रीसीताराम नाम को अपने हृदय में निरन्तर स्मरण करते रहें । नाम उच्चारण बैखरी वाणी में विहित है। नख शिख दर्शन की ध्यान मग्नता में अन्तर्जप ही सम्हलेगा । इससे सारे शोक मिट जायेंगे। प्राण-प्यारे के अनन्तानन्त कल्याण गुणगणों की सुधा माधुरी निरन्तर समास्वादन करते रहें। इससे ऐसी तृप्ति होगी कि विविध पुण्यलोकों के भोग सुखों की ओर आँख उठा कर ताकने की भी इच्छा नहीं होगी । कविश्री का अमृत उपदेश है, कि प्रियतम प्राण श्रीजानकीजानजू के नेह भरे हावभाव अवलोकन करने का लालच सतत बढ़ाना चाहिए ।

* तीसरा अध्याय, अन्तर्जगत में लीला दर्शन *

॥ मूल छन्द ॥

२१२—मधुर मिजाज पसंद फंद दिल विशद बराबर दीदम ।
उसी रोज से खोज और सब त्यागि चशम चस्पीदम ॥
प्रेमानन्द प्रेमप्रद प्रीतम सुगुन सुभाव सुनीदम ।
युगलानन्य शरन रस सागर पाय न नेक तपीदम ॥९८॥

शब्दार्थः—मिजाज अ०=स्वभाव । पसंद फा०=रुचिकर, प्रिय । विशददिल फंद=निर्मल

हृदय को रूप गुण, शील जाल में फँसाने वाले। दीदम फा० = मैंने देखा। चशम (चश्म अ०) = नयन। चस्पीदम फा० = मैंने चिपका दिया। प्रेमप्रद = प्रेम देने वाले। सुनीदम फा० = मैंने सुना था। तपीदम फा० = मैं संतप्त हुआ।

भावार्थः—संतों के मुख से सुनकर शास्त्रों के दर्शन से मैं जानता था कि हमारे प्राणप्यारे को वही सज्जन प्रिय (पसंद) है जिनका शील स्वभाव मीठा हो। आप स्वयं भी मधुर शीलस्वभाव विशिष्ट हैं। विशुद्ध हृदय सज्जनों को अपने रूप गुणों के जाल में फँसा लेते हैं। एक दिन की वात है कि मैंने ठीक उसी रूप में आपका दर्शन किया, जैसा सुनता था। उसी दिन में नित्य नवीन सुखों के अन्वेषण करने वाले मेरे नयन सभी सुख खोजों को त्याग कर, उन्हीं के रूप में जाकर चिपक गये। लाख कहने पर भी वहाँ से हटते भी नहीं। सुने हुये थे कि हमारे प्राणसर्वस्व प्रेम और आनन्द के स्वरूप हैं। दुर्लभ दुष्प्राप्य तत्त्व को सेंतमेत में बाँटते रहते हैं। ऐसे उदार चूड़ामणि हैं आप।

आप उत्तमोत्तम गुण गण एवं शील स्वभाव विशिष्ठ रस के अपार सुधासिंधु हैं। आपको जब से पा गई हूँ, तब से मुझे लौकिक त्रिताप एवं दिव्य विरहताप किञ्चित भी नहीं आँच पहुँचाते हैं। भला, रस सुधासिंधु में डूबे रहने वाले को ताप?

❁ मूल छंद ❁

२१३—चढ़िके तरहदार तुरगन पर संग सखा सुठि लीये।
वाग बहार विहार विवरधत चित चितवन में लीये॥
कबहूँ अश्व कुदावत कल करि निरखि कौन नहिं जीये।
युगलानन्य अवध छैला छबि बसत हमेशे हीये॥१४१॥

शब्दार्थः—तहरदार अ० फा० = हावभाव प्रदर्शक सुन्दर। तुरगन = घोड़ों। सुठि (सुष्ठु सं०) = अत्यन्त सुन्दर। वहार फा० = वासन्ती शोभा सम्पन्न। विहार सं० = आमोद प्रमोद पूर्वक भ्रमण। विवरधत [विवर्धत सं०] = महोन्नत, समृद्ध करते हुए। अश्व = घोड़ा। कल = कला, चतुराई। छैला = बना ठना शौकीन।

भावार्थः—हमारे परमाराध्य आचार्य चरण अपने भाव जगत में एक दिन क्या देखते हैं कि श्री अवध छयल छबीलेजू अपने प्राण सखाओं के साथ हावभाव प्रदर्शक मदन सुन्दर घोड़ों पर सवार होकर, सर्वदा वासंती शोभा सम्पन्न श्रीप्रमोदवन के पुष्पोद्यान में विचरण करने जा रहे हैं। जहाँ जहाँ आपका शुभागमन होता है, वहाँ वहाँ की वाग रमणीयता और भी अधिक वढ़ जाती है। आप में आभिरुप्य नामक गुण ही ऐसा है कि सम्पर्क में आने वाले कुरूप को भी रूपवान वना दे। श्रीप्रमोदवन तो स्वतः सुन्दर है। इनमें अतिशय रमणीयता का पुट चढ़ जाना सहज है। किन्तु एक काम आपका अटपट होरहा है। मार्गमें जिन जिन दर्शक विचारों के ऊपर रस भरी चितवनि डालते हैं, उन सबों के चित्त को चुराये अपने साथ लिये जा रहे हैं। बिना चित्त वाले

विचारे कैसे जीयेंगे ? कभी कभी अपने घोड़े को कलापूर्वक नचाते कुदाते हैं।

तुरग नचावहिं कुवरवर, अकनि मृदंग निसान।
नागर नट चितवहिं चकित, डगहि न ताल बंधान ॥'

आपकी यह अश्व नचावन कला देखकर मुर्दे में भी जान आ जाती है। फिर मरणासन्न विरहिनी क्यों न जी जायगी ? कविश्री के हृदय में ऐसे अवध सुन्दर की चित्त चोरनी झाँकी निरन्तर निवास करती है।

॥ मूल छन्द ॥

२१४—जिस जा कदम सदम सम अपना नाज समेत धरा है।
अमित माह खुरशेद कैद में मानो तहाँ परा है ॥
सजि के शौक सरोषा खुशदिल किसका जी न हरा है।
युगलानन्य नाजिनो मूरति सूरति मौज भरा है ॥१०६॥

शब्दार्थः—जा फा०=स्थान, जगह। कदम अ०=डेग, पाँव। सदम (सद्म सं०)=टिकने की जगह। नाज फा०=हावभाव। माह फा०=चन्द्रमा। खुरशैद (खुरशेद फा०)=सूर्य। शौक अ०=अधिक चाह। सरोषा=उमंग सहित। खुशदिल फा०=सदा प्रसन्न। हरा [क्रिया]=चुराया है। हरा [विशेषण]=हराभरा, आनन्दित। नाजनी फा०=हावभाव युक्त। सूरति=शोभा, सौन्दर्य स्मरण। मौज अ०=आनन्द।

भावार्थः—श्री प्रमोद वन विहारीलाल बाग विहार करने जा रहे हैं। पुष्प पाँवड़े बिछे मणिमय रौश पर, बड़े अदा के साथ श्रीचरण पधारते जा रहे हैं। प्रत्येक श्रीचरण स्थापन काल में श्रीचरण आधार स्थान के चारों ओर विलक्षण जगमगाहट फैल जाती है। लाल लाल तलवे से विकीर्णित अरुण आभा में असंख्य उदय कालीन अरुण सूर्य कैद पड़े हुए प्रतीत होते हैं तथा नख-मणि की शीतल रश्मि में अनेक चंद्रमा नजरबंद पड़े प्रतीत होते हैं।

आँखें लगी रहेंगी बरसों वहीं सभों की।
होगा कदम का तेरा जिस जा निशाँ जमीं पर ॥'मीर'

अजी, बाग विहार तो व्याज मात्र है। उसकी नीयत कुछ और है। वह चला है अनेक मृगशावक नयनी, सिंह कटि वाली नव यौवना मनोरमाओं के चित्तों का शिकार करने। उस हसौंहे नयन वाले का जरा उमंग उत्साह तो देखो। उसकी चित्त चोरनी कला उसकी खूबसूरती में चार चाँद लगा रही है। अब भला किस का चित्त चुराये बिना रहेगा ? न जाने इतने चित्तों का खजाना जमाकर आखिर करेगा क्या ? कविश्री कहते हैं कि उस हावभाव कला चातुर्य विशिष्ट व्यक्ति की शोभा के स्मरण में भी परमानन्द परिपूर रहता है।

'अजब छटा छवि छैल फैलि रही प्यारी है। चंद चाँदनी चमक दमक लखि हारी है।
रंग रंग सजि सरस सुमन फुलवारी है। युगलानन्य उसी ऊपर बलिहारी है ॥
श्री प्रेम उमंग, ४७।

॥ मूल छन्द ॥

२१५–शरबत शान सरोज वदन वर आज पिलाय चला है।
रग रग रोम रोम दे अंदर शीतल सीर सला है॥
चाह तमाम आम की सिमटी निपटी बुरी वला है।
युगलानन्य मनोरथ तरुवर अद्भुत फहम फला है॥ ६५॥

शब्दार्थः—शरबत (शर्वत अ०)=चीनी सुगंधमिश्रित जल। शान अ०=तेज। सरोज= कमल। वदन=मुख। दे पं०=के। सीर=ठंढक। सला=भिदा। तमाम अ०=समस्त। आम अ०=सर्द साधारण। वला=विपत्ति। फहम (फह्म अ०) विवेक, विज्ञान।

भावार्थः—मेरे अंग प्रत्यंग विरह ज्वाला से जल रहे थे। दर्शन प्यास के मारे मरना ही चाहती थी कि उस करुणामय का हृदय द्रवित हो गया। मेरी प्यास और तपन बुझाने के लिये उसने झटपट शर्वत पिलाया। शर्वत था श्री कमल मुख की शोभा दर्शन। शर्वत में जल, शर्कर और सुगंध तीनों का मिश्रण होता है। श्री मुखारविंद में भी रस है, माधुरी है, सुगंध है। अतः शर्वत का रूपक बहुत उपयुक्त है। मैं भी पिपासातुर थी ही। नयनों के दोने बनाकर गटागट पी गई। मेरे नस नस में तनमन को जुड़ाने वाली ठंढक प्रविष्ट हो गई। अब समस्त लोक सुख वासना सिमट कर श्रीमुख दर्शन चाह में डूब गई। वासना बुरी वला है। चलो अच्छा हुआ, निवृत हुई। अब तो मेरे मनोरथ सुरतरु में विलक्षण विज्ञान रूपी सरस मधुर फल फला है।

॥ मूल छन्द ॥

२१६–तोरन तरहदार दरदर पर प्रीतम विशद विवाहू।
लट्टू लटकि रह्यो मंगलमनि सूचत सहज उछाहू॥
चाहत चाह चारु चित अंतर जंतर रसिक रमाहू।
युगलानन्य शरन सरसत तनमन गुन मिटत सुदाहू॥ १५६

शब्दार्थः—तोरन (तोरण सं०)=वंदनवार। तरहदार अ० फा०=सुन्दर। दरदर=प्रति- द्वार। विशद=दिव्य। लट्टू=झब्बे। उछाहू=उत्सव। जंतर (यंत्र सं०)=तांत्रिक तावीज। रमाहू (रमाऊँ)=लाड़ प्यार करूँ। सुदाहू=विरह ज्वाला।

भावार्थः—हमारे प्रेमास्पद श्री जानकी रघुनन्दन तो अनादिसिद्ध दिव्य दम्पति हैं। इनकी व्याह रचना तो लीला मात्र है। सभी लीलाओं में व्याहलीला महामधुर है। श्री दिव्य जनकपुर धाम में नित्यव्याह लीला संघटित होती रहती है। श्रीदिव्य अयोध्या धाम में भी वार्षिक विवाहोत्सव अगहन शुल्क पंचमी को मनाया जाता है। कविश्री भाव जगत में उसी वार्षिक विवाहलीला के आयोजन का ध्यान दर्शन कर रहे हैं। देखते क्या हैं कि श्री अवध नगर के द्वार द्वार पर उत्तमोत्तम वंदनबार बाँधे गये हैं। मांगलिक अमोल मणियों के गुच्छे यथा स्थान झुलाये गये हैं। इन सभी

मंगल रचनाओं से नवल बना बनी वेष में विभूषित युगलकिशोर का वार्षिक विवाहोत्सव मनाने की सूचना मिल रही है। आज हमारी चाह को भी चाहना हो गई हैं। रसिक चूड़ामणि लाल नवल नौशय के प्रति इतना प्यार उमग आया है कि इन्हें कलेजे के भीतर यंत्र बनाकर चिपका लेने की ललक जग उठी है। अपने मनोमंदिर में ही इनसे लाड लड़ाया जाय। हमारे तन में, मन में, रंगीले लाल के गुण गण हुलस रहे हैं। पूर्वराग जन्य सहज बिरहज्वाला शास्त्र मिलन कराने वाले व्याहोत्सव के आगम जानकर शांत हो रही है।

॥ मूल छन्द ॥

२१७–माथे मौर मनोहर मनिगन जड़ित ललित छबि छाजे हैं।
वदन विहार बहार सोहावन बीरा सहित सुराजे हैं॥
मंद मधुर मुसक्यान मानती मनसिज हित छकि छाजे हैं।
युगलानन्य शरन लखि इह सुख मोद सुनौवत बाजे हैं॥ २०३

शब्दार्थ—विहार=विनोद विलास। बहार=रमणीयता। बीरा=पान का। मनसिज=काम। छाके=कामोन्माद। हित=निमित्त। मोद=आनंद।

भावार्थः—नवल नौशय लाल के मनोहर माथे पर मांगलिक मणिगण जटित सेहरा सहित मौर खूब फब रहा है। श्री मुख पर आमोद प्रमोदमयी रमणीयता विलस रही है। ताम्बूल चर्वन से मुखमाधुरी और भी सरसा उठी है। अलबेले लाल के वरवेश में मंद मधुर मुसकान गजब की शान दर्शा रही है। जो मानिनी गुरु मान करके प्रियतम से रूठ बैठी थी, उसके मन में भी कामोन्माद जग गई है। मान भूल कर प्यारे को ललक कर गले लगाने को समुद्यत हो रही है। मुसकान का मतलब भी यही है। नवल वर जू के इस सुख विलास को देखकर कविश्री के मनोमन्दिर में सरसानन्द की बधाई बजने लगी है।

॥ मूल छन्द ॥

२१८–रसिक राज शिरताज साज शुभ विशद विवाह बनाई है।
तैसी भाँति लड़ैती लोनी ललित आभरन छाई है॥
मंडप मधुर मध्य मनिभूषित प्रतिबिंबन झलकाई है।
युगलानन्य भाँवरी दंपति लखि रतिपति ललचाई है॥ २०६

शब्दार्थः—विशद=दिव्य। लोनी=लावण्यमयी। लड़ैती=अत्यधिक दुलारी। ललित=प्रमोद प्रवर्द्धक। आभरन (आभरण सं०)=भूषण। मधुर=नयनाभिराम। रतिपति=कामदेव।

भावार्थः—आज रसिक चक्रचूड़मणि श्रीजानकीवर नवल लालजू ने अपने श्री अंगों में श्री विवाह का मंगलमय दिव्य विग्रहुती भूषण वसन धारणकर, मेंहदी, महावर, काजर, चन्दन चित्राम से अनुरंजित होकर, सेहरा संयुक्त मणिमय मौर श्री माथे पर धारण कर, मदन विमोहन

नवल छयल का नयमाभिराम सुखद साज सजाया है। उसी प्रकार परिकर मात्र की निरतिशय दुलारी, रूपलावण्य की निस्सीम निधि, श्रीमिथिलाधिपराजनन्दिनी जू के श्री अंगों पर, श्रीव्याहोचित मंगलमय भूषण वसन सुशोभित हो रहे हैं।

प्रारम्भिक विवाह विधि सम्पन्न होने पर, जब नवल वर वधू भाँवर फिरने लगे, उस समय श्याम गौर की मिलित प्रभा से सारा मंगल साज भूषित नयनाभिराम व्याह मंडप जगमगा उठा। खंभे खंभे में युगल मनोहर जोड़ी का प्रतिविम्ब प्रतिभासित होने लगा। ललक ललक कर दर्शनानन्द लूटने के लिये काम का मन मचल उठा।

"नवल दोउ भाँवर देत सुहाई।
आगे पीछे चलत परस्पर, श्याम गोर छबि छाई।
भौंरी मौर युगल शिर सोहत, मणिमुक्ता सु गुँथाई॥
व्याह विभूषन वसन मनोहर, अनुपम अंग छबि छाई।
मणि खंभन प्रतिविम्ब सुझलकत, जनु रति पति बहु आई॥
अमित रूप समता हित कीन्हेउ, छबि लखि मोहि लजाई।
ताते प्रगटत दुरत छिनहि छिन, दश दिशि देत दिखाई॥
भये मगन सब देखन हारे, देह दशा विसराई।
गान निशान सुमंगल जय धुनि, देव सुमन भरि लाई॥
यहि विधि भाँवरि सब सखियन को, सिय संग भइ मनभाई।
भाँवरि दै मंडप तर राजे, वर दुलहिन-समुदाई॥
सिय सिर सेंदुर देकर प्रीतम, सब की माँग लगाई।
प्रेमलता सम्बन्ध अनादी, रास मध्य बरसाई॥"

❀ मूल छन्द ❀

२१९—जोरी युगल किशोर किशोरी गँठजोरी युत जोही है।
सूरति सरस सुगोर साँवरो देत भाँवरी सोही है॥
उपमा सकल हेरि हारी पुनि कहा मुनिन मति मोही है।
युगलानन्य शरन सिय सुन्दर रूप ताग मन पोही है॥२०७॥

शब्दार्थ: गँठजोरी=विवाह कालीन गँठबंधन। जोही=देखी। सूरति=मंगल विग्रह। सरस=मधुर रस पूरित। हेरि=खोजकर। हारी=थक गई। रूपताग=सौन्दर्य रूपी डोरे में। पोही=गूँथ लिया।

भावार्थ:—यौवनारम्भ की मधुमयी किशोरावस्था बड़ी ही चित्ताकर्षिणी है। इस मनोरम अवस्था के प्रफुल्लि सुष्ट-पुष्ट अंग प्रत्यंग में लुनाई और मधुराई उमगती रहती है। इस अवस्था में

कुरूप भी नयनाभिराम प्रतीत होते हैं । भला, इन युगल सौन्दर्य सुधासिंधु का क्या कहना है ? भाँवर फेरने के पहले युगल मनहरण की गांठ जोड़ी गई है । नवल वर की पीत पिछौरी के छोर में शाश्वत सुहागिनी नवल दुलही की अँचल खूंट बाँध दी गई है । दर्शनार्थियों के नयन निहाल हो रहे हैं । व्याह उछाह का दर्शनानन्द लूटने के लिये महा मुनिगण यत्र तत्र से जुट रहे हैं । इनके जी में आया कि, जो अल्पभागी इस परमानन्द विवर्द्धिनी शोभा को देखने से वंचित रह गये हैं, उन्हें हम जा जा कर श्रवण दर्शन करायेंगे । वर्णनोपयोगी उपमा तो जुटालें । इन महामुनियों की ऋतम्भरा प्रभा उपमा खोजने के लिये चौदहों भुवनों की दौड़ लगाने लगी । जब कहीं न मिली तो हार कर अपनी बुद्धि को भी उसी शोभा में रमाने लगे । अपने आप तो मुग्ध हो ही गये थे, बुद्धि भी मोहित होकर, वहीं जक थक ही गई । कवि श्री ने भी अपने मन को युगल सुन्दर मणि के रूप ताग में पोह कर वहीं छोड़ आये ।

—: मूल छन्द :—

२२०—देखा आज रसीला गभरू अवरू खेंन कमाना ।
सरजू सरित किनारे प्यारे करे कहर कतलाना ॥
संगी नवरंगी अलबेले सखा सजे धनुवाना ।
युगलानन्द यार छबि ऊपर किया काम कुर्बाना ॥ २२८ ॥

शब्दार्थः—रसीला=रस से भरा हुआ । भगरू पं०=दूल्हा । अवरू (अव फा०)=भौंह । कमाना=धनुष । कहर (कह्र अ०)=आफत । कतलाना (कत्ले आम फा०)=सार्वजनिक वध । नवरंगी नवेले हंसमुख तथा भिन्न भिन्न नौ प्रकार के अंग वर्ण वाले-१-पंकज वरण, २-कुंकुम वरण, ३-चंपक वरण, ४-सुवरण वरण, ५-शशि वरण, ६-नील नीरज वरण, ७-घनश्याम वरण, ८-नीलमणि वर्ण और ९-अतसी वरण । अलवेले=बने ठने, सजे धजे । कुर्बाना फा०=निछावर ।

श्री लाल जी से बड़ी उम्र वाले सुहृद सखा, छोटी उम्र वाले नर्म सखा है तथा समवयस्क प्रिय सखा होते हैं । यहाँ प्रिय सखा से तात्पर्य है ।

भावार्थः—कवि श्री एक दिन भाव ही जगत में ध्यान मार्गमे दिव्य सरयू पुलिन पर पधारे । वहाँ एक ललित लीला देखी । घटना दिव्य विवाह उछाह के दूसरे दिन की है । मनहरण लाल ने विचारा कि भाँवर फेरी में जितनी मनोरमा बालाएँ हाथ लग गई हैं, वह तो मेरी खाश स्वकीया हो गई है । श्री अवध की रमणीयता से आकृष्ट होकर, लोक लोकान्तरों की अनूढ़ा बालाएँ श्री सरयू सरित में स्नान करने इस लिए आती हैं कि यहाँ के स्नान से उनके रूप पर अधिक पानी चढ़ जाता है । चलो उन्हीं का शिकार करो आज । उस समय तक आप रात वाले नवल दूलह वेष में ही बने थे । अनेक मनोरमाओं के पाणिग्रहण से आप में रस विशेष रूप से उमग रहा था । अब आप शिकार के लिये तयार हैं । अपनी रसीली भौंहें को बनाया काम कमान और कजरारे कटाक्ष विलास के विष बुझे पैने वाण चढ़ा चढ़ा कर लगे तड़ातड़ छोड़ने । नवला बालाओं का सार्वजनिक वध होने लगा । आप के नवरंग के अंग वरण

वाले हसमुख मदनमोहन प्रियसखा गण भी खूब बन ठन कर धनुष वाण लिये, आप की सहायता में जुटे हैं। प्राण प्यारे, आप जैसे प्यारे हो, उसी भाँति आपकी यह शिकार लीला भी प्यारी है। काश कि ! मैं भी उस शिकार लीला की एक वध्य लक्ष्य होती ! क्या निछावर करूँ आप पर ? सर्वाधिक सुन्दर तो काम ही नजर आता है। चलो, उसीको इस अनूप रूप भूपकिशोर पर निछावर कर दें।

॥ मूल्य छन्द ॥

२२१–अजब आज रस रंग संग सजि सरस वसंत सोहाई।
वसन वसंती भूषन सुन्दर अंग अनंग लजाई॥
विशद बहार बाग विहरन वर वल्लभ अलिन निकाई।
युगलानन्य वारि मन मनिगन निरखत दृगन अघाई॥ २२१॥

शब्दार्थः—अजब = विलक्षण। रसरंग = रंग होरी का सुख स्वाद। सरस = रसोद्दीपक वसंती वासन्ती नामक पीत रंग। अनंग = कामदेव। बहार फा० = वासंती शोभा। अलिन = श्री सीता सखी गण। निकाई = शोभा संपत्ति। वारि = निछावर करके।

भावार्थः—कवि श्री अन्तर्जगत की अनुभूत वसंत विहार लीला का वर्णन कर रहे हैं। वसंत का सुहावना समय है। रंग होरी की नवल उमंग साथ लेकर, अंग अंग में लबालब रस भर कर, वसन्तर्तु सुन्दरी रूपमद से इठलाती हुई, श्री प्रमोद वन में आई है। इधर श्री प्रमोद वन विहारिणी विहारी लाल अपनी रसीली मनोरमाओं को साथ लेकर वासन्ती वेष भूषा से विभूषित होकर, अपने सोभा विलास से मदन को विलज्जित करते हुये श्री कनक भवन से निकल पड़े हैं। उधर श्री प्रमोद वन की द्रुमलताएँ भी नवल पल्लवों के वसन पहन कर, नवोन्मीलित कुसुम कलिकाओं के भूषण धारण कर, नवोढ़ा रूप में विहारी लाल के स्वागत की तयारी कर रही है। वन मार्ग पर ही कविश्री को सपरिकर युगल विहारी के दर्शन हुये। आप अपने मन के साथ और भी विविध अमोल मणिगण निछावर करके, अघा अघा कर उस छवि सिंधुको नयन से अवलोकन करने लगे। नयन तृप्त नहीं हो रहे हैं। (दृग न अघाई)

॥ मूल छन्द ॥

२२२–पी के मैर सैर गुलशन हित हुसन नवीन सजाया।
नव किशोरता सार सलोनी सुषमा सरस सोहाया॥
आँखिड़ियों दी झुकन रुकन वर बैन चैन चमकाया।
युगलानन्य दिमागदार दिलदार छटा छबि छाया॥ ६७॥

शब्दार्थः—मैर फा० = मादक द्रव्य, मधु। सैर फा० = विहार। गुलशन फा० = पुष्प वाटिका। हुसन [हुश्न अ०] = छवि छटा। आँखिड़ियों पं० = [आँखों] दी पं० = की। चैन = सुख। दिमागदार = रूप गुमानी।

भावार्थः—अपराह्न काल में दिवस शयनोत्तर उत्थापन सेवा हो चुकी है। श्री नवल विहारी लाल बाग विहार के लिये समुद्यत हो रहे हैं। पुष्प वाटिका विहार तो वहाना मात्र है। "युवतिन गन तन लता विपट विच खेलत रूप शिकार। तेरी चितवनि मोहे राजकुमार।" श्री रसमालाजी।" आप मनोरमा वालाओं के नयनाभिराम रूपों को लक्ष्य बनाकर शिकार के फिराक में निकले हैं।

शिकारों को फँसाने के लिये जाल की आवश्यकता होती है। अपने सहज सौन्दर्य पर मन मोहिनी छबि छटा को कलई चढ़ा ली है। यही जाल है। कहीं शिकारों पर दया न आ जाय, अतः मद पी लिया है। आपकी सलोनी सुषमा में सहज मदन रसोद्दीपिनी शक्ति है उस पर भी यौवनारंभ की माधुरी तो गजब ढाती है। नशे में चूर होने के कारण आपके रसीले नयन झुक जाते हैं। सुधा सकुचावनी वाणी रुक जाती है। इस शोभा से हृदय में रसानन्द (चैन) की बिजली बार-बार कौंध उठती है। रूप गर्वीले प्राण प्यारे की वह छवि छटा कविश्री के हृदय में बस (छाया) गई।

॥ मूल छन्द ॥

२२३—शाम समे शिर साजि सोहावन शमला सवज सलोना।
जरी जगमगित पंच चमकदारी तुर्रा झलकोना॥
वाग वहार विशाल मनोहर अंग अंग बिच टोना।
युगलानन्य रसिक रसनिधि छवि ऐसा हुआ न होना॥ १६८॥

शब्दार्थः—समे=समय। शमला (शम्लः)=वह पगडी जिस में छोर पीछे की ओर लटक रही हो। सवज (सब्ज फा०)=हरे रंग का। तुर्रा=कलंगी।

भावार्थः—सन्ध्या का सुहावना समय है। श्री जानकी रसिक जू वाग विहार को पधार रहे हैं। हरे भरे वाग में विहार कालीन पोशाक भी हरे रंग की विशेष फवती है। अतः सर्वांग में हरित वसन भूषणों का उपलक्षक शमला हरे रंग का धारण किया है। शमला सोलोना न हो, तो वह सलोना अपने सलोने माथ पर क्यों रखें? शमले की लुनाई पर तुर्रा यह कि उसमें पाँच जड़ीदार चमकीले तुर्रे झलमल प्रकाश कर रहे हैं। उस नित्य वासन्ती शोभा से सुसज्जित नयनाभिराम प्रमोदवन के विशाल विभाग के आभिख्य से मनहरण लाल के अंग अंग में रूप का निखार पड़ गया है। अतः अंग अंग की सुषमा जादू टोनों के समान दर्शनार्थियों पर मोहक प्रभाव डाल रहे हैं। परम रूप निधान रससिंधु रसिक सुजान श्री जानकी जान के समान कोई न अब तक हुआ न भविष्य में होगा ही।

॥ मूल छन्द ॥

२२४—श्री प्रमोद वन सघन निकुंजन पुंजन सखी समाजे।
गान तान रसखान अनूपम वाजे नव रंग वाजे॥
युगल माधुरी मगन महामुद छकी करे नव वाजे।
युगलानन्य सरस आशक की रीति प्रीति तर ताजे॥ १४२

शब्दार्थः- निकुंजन (वहुवचन)=द्रुमलताओं के कृत्रिम भवन। पुंजन=यूथ की यूथ। रसखान =रसीले छन्द प्रवन्ध में सरस रागों के गान। अनूपम=श्री साकेतेतर अन्य लोकों में अलभ्य। नवरंग=नवल रसानंद उद्दीपक।

भावार्थः—रंगीले रसिक आशिकों की प्रीतिरीति क्षण क्षण में नव नवायमान होने वाली एवं विशेष चमत्कार पूर्ण होती है। कभी तो ये श्री सेज विहारिणी विहारी जू की प्रेम लीला दर्शन में छके हैं, तो कभी आह्निक विलास की सरस सेवा में जुटे हैं, कभी श्री प्रमोदवन के षट ऋतु कुंजों के नैमित्तिक रसलीला में सम्मिलित है। प्रस्तुत छन्द में श्रीप्रमोदवन विहार कालीन संगीत दरवार की मनोरम झाँकी है। श्रीप्रमोदवन के विविध सघन निकुंजों में अनेक रूप धारी विपिन विहारी जू के पृथक पृथक संगीत दरवार लगे हैं। कहीं मुग्धानायिकाओं के यूथ संगीत तत्पर है, तो कहीं नवेली नवेढ़ाओं का, कही मध्याओं का, तो कहीं प्रगल्भाओं का। रसीले छंद प्रबंध में रसभरे तान ताललय के साथ गान हो रहा है। अनुपम यंत्र वज रहे हैं। युगल रूप सिंधु की माधुरी पान कर परमानंद के नशे में चूर होकर, विलासिनियाँ नये नये हाव भावों के प्रदर्शन कर रही हैं। श्री प्रमोद वन की संगीत दरवार झाँकी, के साथ ही, हम यहाँ अन्तर्जगत प्रसंग पूरा करते हैं। अतः यह संगीत दरबार सर्वदा ध्येय है।

* पाँचवाँ खंड, साधन सम्पत्ति *

॥ प्रथम अध्याय, श्री गुरु कृपा ॥

॥ मूल छन्द ॥

२२५—हरसे हरफ शरफ फाहिश दल दफे नमूद अशक्का।
जिसने शौक सजन सफीक सें किया सोइ पर पक्का॥
हासिल हुआ उसी को इह रस शरन जो मुरशिद तक्का।
युगलानन्य शरन हरदम दिल लगा लगन दो धक्का॥ १२७॥

शब्दार्थ—हरसे (हरसू फा०)=चारो तरफ। हरफ (हर्फ अ०)=दोष, बुराई। शरफ अ०=सम्मान। फाहिश अ०=लज्जा जनक, बहुत अधिक बुरा। दफे (दफ्ईयः अ०)=निवारण। नमूदा (नुमूद फा०)=ख्याति, धूमधाम। अशक्का=वहुत कठिन। सफीक (सफी अ०)=सखा, मित्र। मुरशिद (मुर्शिद अ०)=सद्गुरु।

भावार्थः—चारो ओर से (हरसे) साधक की निंदा (हरफ) तथा स्तुति [शरफ] होना, जगत की रीति है। थोड़ा सा साधन निष्ट होते ही लोक प्रतिष्ठा (नमूद) बढ़ने लगती हैं। यद्यपि ये सब दुर्निवार (अशक्का) हैं, परन्तु साधकों के लिये येनकेन प्रकारेण इन्हें त्याग ही देना [दफे] आवश्यक है। इस प्रकार जगत से मुह मोड़ कर जिसने परम सुहृद प्राणनाथ जानकी रमण जू से लगन [शौक] लगाई, उसी का काम पक्का होगा। परन्तु यह लगन साध्य इश्क रस प्राप्त उसी को होगा, जिसने सद्गुरु शरणागति ग्रहण कर ली है।

"कोई उह देश कभी लख पावेगा। जब तक मुरशिद मेहर हृदय नहिं छावेगा ॥
दुनियेदारी हवस हिरस बिसरावेगा। युगलानन्य शरन तब मौज समावेगा ॥
श्री प्रेम उमंग, ८६।

प्रभू छिपायो आप को, सदगुरु दियो दिखाय।
दूनो मधि अधिकी कवन, मोहि कहियो समुझाय ॥ श्रीप्रेम प० प्र० दोहावली ॥

कविश्री को इश्क साधक के लिये आदेश हो रहा है कि यदि इश्क हासिल करना है, तो सद्गुरु शरणापन्न होकर; श्रीराम लगन की हृदय में चोट लगावो।

पिछले पृ० १७ के छन्द क्रमांक १० में कहा गया है कि श्रीगुरु उपदेश भी यही कि इश्क पाने के एक मात्र उपाय है, प्रियतम से लगन लगाना अर्थात् सहज अखंड स्मरण जगाना।

जब साधक इश्क प्राप्ति का कोई भी साधन करने से असमर्थ है तो वह श्री सद्गुरु चरण सेवा करे। श्रीगुरु रीझकर उसे इश्क का मद अपनी कृपा शक्ति से पिलायेंगे। वह प्रेम मतवाला हो जायगा। (देखिये पिछले पृ० ३८ छन्द क्रमांक २५।) इश्क मद का चसका लग जाने पर वह स्वयं श्री सद्गुरु से बारम्बार पुनः इश्क मद पिलाने का अनुनय विनय करेगा तथा इश्क मस्ती में एक मात्र रुचिकर वस्तु होती है इष्टगुण श्रवण उसके लिए भी श्री गुरुमुख ही समर्थ है। [देखिये पृ० ४१ छन्दांक २८।] ऐसा नहीं कि साधन के आरम्भ ही में गुरु कृपा की अपेक्षा हो। साधनपथ में असाध्य कठिनाई भी श्रीगुरु कृपा ही से मिटती है तथा पंथ सुकर हो जाता है [देखिये पृ० ८७ छन्दांक ८६] इतना ही नहीं यदि आशिक सदा विघ्नों से निर्भय होना चाहे, तो उसे श्रीसद्गुरु चरणों का प्रेमी बनना चाहिये [देखिये पृ० १३३ छन्दांक १२३।]

❁ मूल छंद ❁

२२६—पानी पाथर पवन पुहुमि तिमि व्योम सोम में व्यापी।
तिससे जुदा नहीं तिलभर कुछ कहत सुसंत मिलापी ॥
बिना फायदे भटकत डोलत करि कटु काज कलापी।
युगलानन्य शरन सतगुरु की कृपा दाह दिल दापी ॥२७७॥

शब्दार्थः—पवन=हवा। पुहुमि=मिट्टी। व्योम=आकाश। सोम=चन्द्रमा। जुदा फा०=पृथक, भिन्न। मिलापी=भगवत्साक्षात्कार प्राप्त। फायदे (फाइदः अ०)=लाभ। कटु=बुरा, अनिष्ट। कलापी=समूह। दापी=नष्ट कर दिया।

भावार्थः—अद्वैतवादी ब्रह्मज्ञानियों के लिये व्यापक ब्रह्म की सत्ता केवल बोध गम्य है, परन्तु हम साकार उपासकों के लिये हमारे इष्ट धनुर्धारी रघुवीर सगुण स्वरूप से ही बाहर भी सर्वत्र दृष्टिगम्य है। जल में, थल में, वायु में, पाषाण (प्रतिमा) में, आकाश में, चन्द्रमा में, जहाँ देखो वहीं श्याम गौर मनोहर जोड़ी, रेणु रेणु में विलस रही हैं। तिलभर भी ऐसी जगह नहीं, जहाँ वह न हों।

'देश काल दिसि विदसहु माहीं । कहहु सो कहाँ जहा प्रभु नाहीं ॥'

यह उक्ति उनकी है, जिनने अपनी आँखों से, उन्हें सर्वत्र व्याप्त देखा है । आपको विश्वास नहीं हो, तो श्री सतीजी से पूछ लीजिये ।

'सती दीख कौतुक मग जाता । आगे राम सहित श्री भ्राता ॥
फिरि चितवा पाछे प्रभु देखा । सहित बंधु सिय सुन्दर बेषा ॥
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना । सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रवीना ॥'

जिस निगुरे को साधन रहस्य अज्ञात है, वह नाना कष्ट साध्य साधनों में बेनाहक रचा पचा करे, व्यर्थ के इधर उधर भटकता फिरे ।

'आशिक क्या ढूढ़ो वन वन में ।
जैसे पय तें घृत नहिं न्यारो तैसे प्यारो मन में ॥
रसिकन के संग जानि परैगो, जनि भूलो साधन में ।
कृपानिवास लखायो सदगुरु, ज्यों मुखड़ा दरपन में ॥'

कविश्री स्वानुभव कहते हैं कि प्रभुकृपा अवतारभूत श्रीसद्गुरु की कृपा से मेरे सारे मनस्ताप मिट गये ।

'श्री सतगुरु सतसंग नाम जस जापना । नाना पथ फरसाद सुमन नहिं थापना ॥
गहे गरीबी गौर मौर मुद चढ़ेगा । हरि हाँ, नेह नशे में मस्त लहर लय बढ़ेगा ॥
श्री प्रेम प्रकाश, १६० ।

॥ मूल छन्द ॥

२२७—किस्से कहूँ हाल अंदर नहि हेच सफीक विलायत ।
इसी वास्ते जिकर फिकर सब छोड़ा मकर मलायत ॥
दर दिल याद यार का हरदम संगी एक शफायत ।
युगलानन्य शरन मुरशिद की मुझको हुई इनायत ॥१२०॥

शब्दार्थः—हेच फा० =कोई । सफीक=मित्र । विलायत=परदेश । जिकर (फिक्र अ०)= चर्चा । फिकर (फिक्र अ०)=उपाय चिंता । मकर (मक्र अ०)=ठगपना, धूर्तई । मलायत=पाप घर । शफायत (शफाअत अ०)=पैरवी, सुफारिश, अभिस्ताव । इनायत अ०=कृपा ।

भावार्थः—विरहिनी कहती है कि मैं अपने हृदय की मर्मवेदना कहूँ तो किस से कहूँ । अपने प्रियतम देश का मर्मी कोई मित्र भी नहीं दीखते । इसी से मैंने वाह्य प्रचार, साधन चिंता के साथ साथ शरीर निर्वाहार्थ घन वंचना करने वाले ढोंग ढांग को भी तिलांजलि दे दी है । वंचन से हृदय की मलीनता बढ़ती है । प्रियतम की मीठी मीठी स्मृति हृदय के अभ्यन्तर सरसती रहती है, एकमात्र यही मेरी ओर से प्रियतम दरबार में सुफारिश [अभिस्ताव] करने वाली मेरी संगिनी है । कविश्री कहते हैं कि ये सब सुयोग तभी घटे हैं, जब मेरे ऊपर श्री सदगुरु की कृपा हुई है । अब मेरा सब कुछ बन गया । बलिहारी गुरु कृपा की !

अवतरण का:—"करहु हृदय अति विमल बसहि हरि कहि कहि सबहि सिखावों।
हौं निज उर अभिमान मोह मद खल मंडली बसावौं ॥ श्री विनय' प० १३२

उपर्युक्त खल मंडली को भगाने का उपाय श्री गुरुदेव बतायेंगे। अगले छंद में पढ़िये।

॥ मूल छन्द ॥

२२८—श्री सतगुरु ललकार श्रवन सुनि सत समशेर चलाया है।
मोह मान मत्सर मद मनसिज फौज समौज पलाया है॥
जगत जाल जालिम समाज सब सौज जमात जलाया है।
युगलानन्य सुरंग लगा के गढ़ ही गुनन गलाया है॥ २६७॥

शब्दार्थ:—ललकार=लड़ने के लिये बढ़ावा देना, प्रचारणा। सत=सतीत्व, अनन्य इष्ट भरोसा। समशेर फा०=कृपाण। मोह=भ्रम, विपरीति ज्ञान। मान=गर्व। मद=अभिमान का नसा। मत्सर=दूसरे के उत्कर्ष पर डाह। मनसिज=काम विकार। समौज=उत्साह पूर्वक। पलाया है=खदेड़ भगाया। जगत जाल=संसार में फँसाने वाली शारीरिक नातेदारी। जालिम=जुल्म मचाने वाला। जलाया=विरहाग में। सुरंग द्विअर्थक=१-अनुराग रंग, २-बारूद। गुनन द्विअर्थक=१-इष्ट चिंतन, २-त्रिगुणों का। गलाया=धीरे धीरे लुप्त कर दिया।

भावार्थ:- प्रेमदेश के आचार्यों ने आशिकों को वीर बाँकुरा योद्धा का प्रतिष्ठित पद प्रदान किया है—

"भजनी ऐसो चाहिये, जथा सूर रन माहिं॥
खंड खंड होइ जाय तन फिरि के चितवै नाहिं॥"

भाव जगत में भी स्वस्वरूप निमिकुल वीर कन्या का तथा रघुवंश वीर वधू का है। माया के दलबल से जूझना हम आशिकों का सहज क्षात्र धर्म है। हमारे अंग अंग में परवैराग्य के अभेद्य कवच है। हाथ में ज्ञान विज्ञान का कृपाण है। बस ढाल तरवार हैं, तो जूझ लेंगे। हम रणांगन में उतरना ही चाहते थे कि इतने में हमारे प्रधान सेना नायक श्री सतगुरु देव के प्रचारण वचन कर्णगोचर हुये। 'बेटा, खड़ा खड़ा क्या देखता है? मारो, मारो शत्रुओं को मार भगाओ।' वश क्या था? हम कमर कस कर कृपाण चलाने लगे। माया के सैनिकों, सेनानायकों के हाथों में थे नकली अस्त्र शस्त्र, हमारे हाथों में असली। बात की बात में शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिये। शत्रुओं के पैर उखड़ गये। देखते देखते हमने मोह, मान, मद, मात्सर्य, कामादि शत्रुओं को दलबल सहित बड़े युद्धोत्साह के साथ खदेड़ भगाया। जागतिक नातेदारों के मोह जाल उलझा हुआ था। व्यावहारिक सम्बन्धियों के साथ मोह ममता प्रबल हो गई थी। ये सब थे प्रेम पथ के बटमार। उनके समाज सौज को प्रियतम विरहाग्नि में जलाकर भस्म कर दिया। त्रिगुणात्मिक माया के गढ़ में हमारे कामादि शत्रु गण छिपे रहते थे। हमें भी उसी में नजर कैद कर रखा था।

इश्क मार्ग पर स्वच्छन्द चलें भी तो कैसे ? हमने त्रिगुण माया के गढ़ में इष्ट चिंतन रूपी युक्ति से अनुराग रूपी बारूद लगा दिया। सारे गढ़ ढह कर धराशायी हो गये। अब हम स्वच्छन्द इश्क पथ पर सरपट दौड़े आगे बढ़ रहे हैं। बिना सतगुरु मार्ग प्रदर्शक के ये विघ्न कैसे टलते ?

॥ मूल छन्द ॥

२२९–क्या कोई कुछ करे हमारा प्यारा निकट निवासी है।
खालिक फलक खलक खारिज नहि खिजमत खैर खवासी है ॥
समुझा सरस शौक, सोहबत सत, शमन फजीहत फाँसी है।
युगलानन्य शरन सतगुरु की मेहर भाव भल भासी है ॥ ८९ ॥

शब्दार्थः—निकट=हृदय में ही, बाहर भी अति समीप। खालिक=जगतपति। खलक= जगत। खारिजअ०=पृथक, अलग। खिजमत (खिद्मत अ०)=सेवा मानसी, राजसी मंदिर विहारी की। खैर अ०=हित साधक। खवास शब्द अर्बी के खास शब्द का बहुवचन है। खास का अर्थ मुख्य। खवासी का अर्थ मुख सेवक। खिद्मत नीच टहल वाचक है। सरस शौक= मधुरा रीति। सोहबत (सुह्बत अ०)=सत्संग। सत=रसिक संतों का। शमन (सं०)=नष्ट करने वाला। फजीहत अ०=निंदा, अपयश। फाँसी=संघातक जाल। मेहर=कृपा। भल भाव= उत्तमोत्तम सद्विवेक। भासी=बुद्धि में प्रकाशित कर दिया।

भावार्थः—(प्रसंग) मेरे किसी हितैषी ने मुझे भय दिखाते हुये कहा मित्र इश्क शूर। तुमने अपने आकस्मिक आक्रमण से, असावधान माया दलबल को मार भगाया है, सही ! पर याद रखना, वह पुनः नये दलबल जुटा कर, नये अस्त्र शस्त्रों से लैस होकर, तुम पर पुनराक्रमण करने ही वाले हैं। देखना सम्हल कर रहना। मैंने उत्तर दिया, मित्रवर तुम मेरी चिन्ता न करना। मेरा परम प्यारा सुहृद, सर्व समर्थ रक्षक धनुष बाण लिये सदैव मेरी रक्षा में सजग रहता है। मेरे भीतर एवं बाहर भी अत्यन्त समीप में सदा सर्वदा बना रहता है। ऐसे अप्रतिम धनुर्द्धर रक्षक के रहते, किस प्रबल शत्रु की मजाल कि मेरा बाल भी बाँका कर सके ? इस विराट् विश्व का कोई भी अणु परमाणु उस विश्व पति की व्यापक सत्ता से विरहित नहीं है। हाँ, अपना हित इसी में है कि उसकी ऊँच नीच जो भी टहल मिल जाय, उसे हाल हाल पूरा करने में सदैव कमर कसे रहें। "सीतहि सेइ करहु हित अपना ॥" "हित हमार सियपति सेवकाई ॥"

मैंने अच्छी प्रकार से समझ लिया है कि इस जगत में नाकों दम करने वाली जितनी भी परेशानी है, सर्वनाश उपस्थित करनेवाले जितनी भी विरोधी जमातें हैं,उन्हें समूल नष्ट करनेके लिये दो अचूक युक्तियाँ हैं। १ श्री जानकी वल्लभ लाल जू के प्रति मधुर भाव से लगन लगाना (सरस शौक) तथा २–संत रसवंतों का सत्संग (सोहबत)। कैसे समझ में आया ? बलिहारी सद्गुरु देव की कृपा की ! उसी से तो उत्तमोत्तम हित साधक सद्भावों का परिज्ञान हुआ है ॥

॥ मूल छन्द ॥

२३०—दीदम दरबाजार तमाशा सखुन बीच नहिं आता है।
गूनागून अजायब नकशा सौदा शौक बिकाता है॥
खरीदार सरदार सलोना सुन्दर रूप दिखाता है।
युगलानन्य शरन मुरशिद की मेहर पाय छबि माता है॥९९॥

शब्दार्थ:—दीदम फा०=मैंने देखा। दर बाजार=बाजार में, प्रमदावन की भीड़ भाड़ में। तमाशा=कौतुक। सखुन [सुखन फा०]=कथन। गूनागून फा०=रंग विरंग के। अजायब [अजाइब, अजीब का बहुवचन अ०]=विचित्रताएँ। नकशा [नक्शः अ०]=दृश्य, छबि छटा। सौदा=विक्रेय वस्तु। शौक=इश्क। खरीदार=ग्राहक। सलोना सरदार=सुन्दर शिरोमणि। मुरशिद=गुरुदेव। मेहर=कृपा।

भावार्थ:—एक दिन की बात है। मैं भाव जगत के प्रेमहाट में पिल पड़ा। वहाँ एक विलक्षण कौतुक देखा। उसे वर्णन कर सुनाने की इच्छा है, परन्तु क्या करूँ? वर्णन करने योग्य उपयुक्त भाषा ही नहीं मिल रही है। अस्तु, जैसे बनता है कहता हूँ, सुनिये। वहाँ के चित्र विचित्र दृश्यों में देखा एक विलक्षण सजीला आढ़त है। उस अढ़तिया के पास थोक माल इकट्ठे थे। दलाल ग्राहकों को बुला बुला कर, आढ़त पर ले आता था। खरीदारों में खरीदार सरदार आया। वह था भी सुन्दर शिरोमणि। अढ़तिया ने पूछा आपके पास थैली में क्या दाम है? गाँठ में जितने दाम होंगे, उसी के हिसाब से माल आढ़त से निकाल कर दूँगा। उस सलोने ने कहा यह लो, देख लो मेरी मुख छबि। इससे भी अधिक द्रव्य मेरे पास है, परन्तु पहले इसी कीमत का माल तो दे दो। अढ़तिया ने सारे आढ़त का माल खोलकर, उस पर लुटा दिया। और कहा आपके रूप के मोल का माल मेरे पास है ही नहीं। खैर, जो है सब आपको समर्पित है। अपनी मुख छबि मेरे को मोल दे दीजिये, हम अपने हृदय में जोगा कर रखेंगे। कविश्री कहते हैं कि सदगुरु कृपा से मैंने इश्क माल बेंच कर, रूप मोल में पाया है। उसी को हृदय में पाकर प्रेमोन्मत्त बन गया हूँ।

❀ दूसरा अध्याय, सर्वोत्तम साधन श्री सम्प्रदाय विहित भक्ति ❀

❀ श्री सीता सम्प्रदाय ❀

२३१—श्री सीता स्वामिनी सम्प्रदा विदित वेद विद जाने।
महाशंभु हनुमंत रसिक सिरताज अगस्त्य बखाने॥
तिन के पद प्रसाद सें मुनिवर मंत्र महारस छाने।
युगलानन्य शरन कलि कायर वकत आन की ताने॥१९१॥

शब्दार्थः—विदित=जगत प्रसिद्ध। वेदविद=वेद के जानने वाले। प्रसाद=कृपा। छाने=मादक पान किया। कायर=करनी में डरपोक। वकत=व्यर्थ दकवाद करते हैं। आन की=नास्तिकों की। ताने=कथनी।

भावार्थः—जीवों पर अहेतुकी करुणा करने वाली श्री सिया स्वामिनी जू ने प्रियतम से परामर्श करके, जीवों के सुगम उद्धारार्थ, श्रीसीतारामीय भक्ति सम्प्रदाय की पद्धति बनाई। श्रीसीताराम युगल तारक मंत्रराज के साङ्गोपागं जप की प्रधानता इस पद्धति के प्राण हैं। अतः इस सम्प्रदाय की आद्य प्रवर्तकाचार्य श्री सिया स्वामिनी जू हैं। उन्हीं के नाम पर श्री सम्प्रदाय या सीता सम्प्रदाय वेद विश्रुत है, जो सभी वेदज्ञ जानते हैं। श्री सिया स्वामिनी जू ने कृपा पूर्वक लोक प्रचारार्थ यह युगल मंत्रराज श्री हनुमत लाल जू को प्रदान किया। क्योंकि आप सदा श्री प्रियतम रघुनंदन के पादारविंद की सेवा में तत्पर रहते हैं।

"श्रियः श्रीरपि लोकानां दुःखोद्धरण हेतवे।
हनूमते ददौ मन्त्रं सदा रामाङ्घ्रि सेवनिने ॥"

श्री हनुमत लाल जू अनादि राम दरबार के अनादि पार्षद हैं। श्री महाशंभु आपके अंश मात्र है। अंश अंशी में अभेद मान कर ही यहाँ श्रीहनुमत लाल जी के पहले महाशंभु विशेषण लगाया गया है। श्रीं हनुमत लाल जू अन्तरंग सेवा में श्री मती चारुशीला रूप से रहने के कारण श्री राम रहस्य के विशेषज्ञ हैं। अतः आप के लिये रसिकराज शिरताज का पद सर्वविदित है। आपने महामुनि श्री अगस्त्य जी को सुयोग्य सत्पात्र मान कर, मंत्र रहस्य से लेकर, सारे रहस्य ज्ञान से अवगत कराया। रसिकाचार्य शिरोमणि श्री हनुमतलाल जू के चरणारविन्द की कृपा से महामुनि श्री अगस्त्य जी भी मंत्ररहस्य के विशेषज्ञ हो गये तथा मंत्रराज रूपी महारस पान कर प्रेमोन्मत बन गये। वेदों के उपबृहण भूत श्री नारद पंचरात्र संहिताओं में ठौर ठौर पर श्रीराम रहस्य का बखान किया गया है। सदग्रन्थों के स्वाध्याय से जी चुराने वाले कायर कलियुगी जीव नास्तिकों की वेद विरुद्ध कथनी सुनकर, उसी का अनुवाद करते फिरेंगे और श्री सम्प्रदाय के आदर्श भक्तिमार्ग पर आस्था नहीं करेंगे।

अगले छन्द में योग ज्ञान की अपेक्षा इश्क मार्ग को श्रेष्ट बतायेंगे।

॥ मूल छन्द ॥

२३२—योगी योग रोग में माते प्रानायाम समाधी।
हासिल एक बराट न यामें केवल बाँट बेआधी॥
ज्ञानी ज्ञान कथैं निशिवासर मत अद्वैत दृढ़ साधी।
युगलानन्य शरन श्रम भ्रम बिन मारग नेह अनाधी॥ २३६॥

शब्दार्थः—माते=मस्त रहते हैं। हासिल=प्राप्ति। बराट=कौड़ी। बाँट=हिस्से में। श्रम=साधन कष्ट। भ्रम=फल सिद्धि में संशय। अनाधी (न+आधि)=नीरोग। यदि तुकानुरोध से अनादि को अनाधी किया होगा तो अर्थ होगा, सनातन। साधी=मन में निश्चय ठहरा कर।

भावार्थः—योगी यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा तथा समाधि क्रम वाले अष्ठांग रोग परणामी हठयोग में लगे रहते हैं। प्रेमियों की दृष्टि में भगवत प्रेम ही सार वस्तु है। योग के फल में भगवत्प्रेम के किंचित अंश भी नहीं है। अतः उन्हें कौड़ी भर भी प्रेम न मिला। मिला हिस्से में शारीरिक रोग (बेआधी)। यही बात ज्ञानियों के लिये भी लागू है। इनमें आर करनी कुछ भी नहीं पाइयेगा, दिन रात ज्ञान कथन के बतक्कड़ में लगे रहेंगे।

"वाक्य ग्यान अत्यन्त निपुन भव पार न पावै कोई।
निसि गृह मध्य दीप की बातन तम निवृत्त नहि होई॥

कविश्री का निश्चय है कि हमारा परिगृहीत भगवत्स्नेह वाला साधन मार्ग अनादि है। प्रेमसाधना में आधिव्याधि का कोई भय नहीं। न साधन काल में शारीरिक या मानसिक परिश्रम की अपेक्षा है। फलोदय में भी संशय नहीं। असंख्येय महज्जनों द्वारा आचरित तथा अनुभूत यह प्रेममार्ग सुनिश्चित फल दायक है।

॥ मूल छन्द ॥

२३३—ब्रह्म अचित्य अनीह अनावृत वेद भेद मत बूझै।
ईश सुदेश अनेक उपासन तामधि कौन अरूझै॥
स्वाद सारवर वस्तु वस्तु विलच्छन बोध बिना बकि जूझै।
युगलानन्य शरन चश्मों में गौर श्याम सुठि सूझै॥ १५१॥

शब्दार्थः—ब्रह्म=जिसमें निरतिशय महत्त्व लक्षण बृद्धिमान होवे, निर्विशेष ब्रह्म। अचिन्त्य= जो मन और बुद्धि के द्वारा चिंतन में नहीं आ सके। अनीह=जो अप्राप्त वस्तु को पाने के प्रयत्न न करे, आप्तकाम। अनावृत=जन्म मरण के चक्कर में नहीं आने वाला। भेद=रहस्य, मर्म। ईश=सगुण ब्रह्म। सुदेश=वैकुण्ठ। उपासन=सेवन, पूजन, ध्यान विधि। अरूझै=उलझा रहे, फँसा रहे। विलच्छन [विलक्षण सं०]=अलौकिक। बोध=जानकारी। बकि=बकवाद करके। जूझै=वाक् युद्ध करते हैं। चश्म फा०=आँख। सुठि [सुष्ठु सं०]=अत्यन्त सुन्दर।

भावार्थः—वेदान्त के अभेद सिद्धान्तवादी ब्रह्मज्ञानियों की समझ से ब्रह्म निर्गुण निर्विशेष है। मन बुद्धि के द्वारा उसका स्वरूप समझा नहीं जा सकता। "मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकइ सकल अनुमानो॥" आप्त काम होने के कारण ब्रह्म में प्रयोजनीय वस्तुओं के संग्रहार्थ उद्योग करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। जीव की भाँति उस ब्रह्म का मायिक सृष्टि में आवर्तन [जन्म-मरण] नहीं होता। जिसका स्वरूप ज्ञान ही असंभव है, उस को पाना भी असंभव ही समझिये।

"कहत कठिन समुझत कठिन, साधन कठिन विवेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जो, पुनि प्रत्यूह अनेक॥"

इसी प्रकार श्रीकृष्ण, श्रीनारायणादि अनेक रूपधारी सगुण ब्रह्म के श्रीवैकुण्ठ धाम भी पंचरात्र संहिताओं के मत से पृथक पृथक हैं। उन विविध वैकुण्ठों की प्राप्ति कराने वाली उपा-

सना पद्धति भी भिन्न भिन्न हैं। इन नाना प्रकार के मतमतान्तों के विचार में कौन उलझा रहे ? एक दूसरे की उपासना पद्धति के खंडन मंडन में वाक्‌युद्ध करने वाले, प्राय: वही होते हैं, जिनने अलौकिक दिव्य देशीय सार तत्त्व का रसास्वादन नहीं किया। सारग्राही अपने सद्‌गुरु प्रदत्त उपासना में ऐसे पग जाते हैं, कि उन्हें अपनी प्रीति रीति से भिन्न बातें करने की छुट्टी ही नहीं मिलती। कविश्री की दृष्टि में अपने ही इष्ट श्री अयोध्या के कनक भवन विहारिणी विहारी श्याम गौर मनभावनजू चुभे हैं। ऐसे श्री जानकी रमणजू से परे न किसी को जानते हैं, न मानते हैं।

॥ मूल छन्द ॥

२३४—भटकत भरम भवन में अटकत लटकत मन मति काँची।
फटकत तुष फोकट, विद्या बिनु, अटपट बदत अवाची॥
खटपट करत सरस सज्जन सें विषम विषय सिर नाची।
युगलानन्य सार सर्वोपर रसिक सम्प्रदा साँची॥१९०॥

शब्दार्थ: भरम भवन=मिथ्या ज्ञान रूपी भूल भुलैयाँ द्वार वाले धोखे के घर में। अटकत=रुके रहते हैं। लटकत=कर्त्तव्य शिथिल हो जाते हैं। काँची=कमजोर, अपरिपक्व। तुष=भूसा। फोकट=फोंका, निस्सार, व्यर्थ। वदत सं०=बोलते हैं। अवाची [अवाच्य सं०]=न कहने योग्य। खटपट=झगड़ा। सरस=रसिक। विषम =भीषण, भयंकर। सिर नाची=माथे पर भूत के समान सवार। सार=सबका निचोड़ सिद्धान्त। सर्वोपर=सर्व श्रेष्ठ, सर्वोत्तम। साँची=असली, नित्य।

भावार्थ:–श्रीसीतारामीय रहस्योपासना वाला रसिक सम्प्रदाय सनातन सत्य और यथार्थ है। सत्संग विमुख एवं भगद्भजन हीन व्यक्तियों के मन माया से दूषित एवं अनिश्चयात्मक बने रहते हैं। इस सद्य: सुख शान्ति प्रदायक रसिक सम्प्रदाय का उन्हें यथार्थ ज्ञान नहीं होने पाता। अत: सुख शान्ति की खोज में भ्रमवश ऐसे ही भटकते रहते हैं, जिस प्रकार भूल भुलैयाँ द्वार वाले भवन में अनजान व्यक्ति चक्कर काटता हुआ, उसी में अँटका रहता है। भ्रम ही के कारण रसिक सम्प्रदाय के सरल सुगम और अत्यान्तिक सुख शान्ति दायक महान लाभ से बंचित रह जाते हैं। अनजान होने के कारण उनका साधन श्रम उसी प्रकार व्यर्थ जाता है, जैसे अन्न के लिए कोरे भूसा फटकने वाले को अन्न के दाने नहीं मिले। यथार्थ ज्ञान के अभाव ही के कारण जो नहीं कहना चाहिये, वह उटपटांग बातें भी करते रहते हैं। "राम भजन बिनु मिटहि कि कामा॥" भजन विमुखी के माथे पर विषय भोग की भीषण धुन भूत के समान सवार रहती है। भोगोन्मत्त बने हुए सही रास्ते पर चलने वाले रसिक संतों से भी वाक्‌युद्ध करते रहते हैं। अपने तो गये हैं ही, इन्हें भी वाधा पहुँचाते।

—: मूल छन्द :—

२३५—तू मेरा, मैं तेरी, मैं तू, तू मैं भेद न रंचक है।
है सब तरह शुद्ध नाता इह बहुत बके ते वंचक है॥
द्वैताद्वैत विशिष्ट आदि मत मधुर मोहब्बत संचक है।
युगलानन्य सनेह वंत सुख लहे दहे परपंचक है॥ २७९॥

शब्दार्थ:—रचक=तनक भी। बंचक=ठग। मधुर मोहब्बत=ब्रह्म श्री जानकीरमणको पति तथा अपने शुद्ध सच्चिदानन्द जीव स्वरूप को पत्नी भाव मानकर मधुर प्रीति करना। संचक= जुटाने वाला। परपंचक=जगत प्रपंच जाल में उलझे रहने वाले

भावार्थ:—शृङ्गार रस मयी मधुरा प्रीति में जीवाशक्ति अपने प्रियतम श्री जानकी रमण जू से कहती हैं कि प्राण प्यारे तुम मेरे जीवन सर्वस्व हो तथा मैं विना दाम की तुम्हारे ललित करकंजों में बिकी तुम्हारी स्वकीया चरण सेविका हूँ। पति पत्नी में हृदय के, मन, प्राणों के, विचारों के पारस्परिक प्रीति के कारण आध्यात्मिक एकत्व होने से शरीर से पृथक रहने पर भी, यथार्थतः एकत्व ही है। एक मन, एक विचार, एक प्राण होने से तुम्हारे और मेरे बीच कोई अन्तर रह ही नहीं गया। तनिक भी भद नहीं है। हम प्राक्कथन प्रकरण में कह आये हैं कि गीता के मत से जीव ब्रह्म की पराशक्ति है, पतंजलि योग सूत्र के मत से चिदशक्ति है। जीव का स्वरूप सिद्ध नित्य स्त्रीत्व परम प्रामाणिक है। सहज स्त्री जीवाशक्ति के एकमात्र पति श्री (रघुजीव) रघुपति ही हैं। अतः ब्रह्म जीव का यह अनादि स्वरूप सिद्ध सम्बन्ध परम पावन है। इस विरोध में कोई लाख कहे, सब धोखेवाजी ही समझी जायगी।

'द्वैताद्वैत विशिष्ट आदि' वाक्य खंड में अपने वैष्णव समाज के चार सम्प्रदायों में ग्राह्य चार प्रकार के विभिन्न वेदान्त सिद्धान्तों का तात्पर्य निहित है। चारो के संक्षिप्त व्यौरा नीचे लिखे जाते हैं।

१-वेदान्त सूत्र के भाष्यकारों में श्री बोधायन स्वामी द्वारा स्वीकृत विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त आज भी अपने श्री रामानन्द सम्प्रदाय में ग्राह्य हैं। इस मत के अनुसार चित् जीव तथा अचित् माया रूपी उभय अंगों से युक्त ब्रह्म तत्व एक ही है। अतः यह मत उभय तत्व विशिष्टाद्वैत कहाता है।

२-पूर्ण प्रज्ञ संज्ञक वेदान्त भाष्यकार श्री माध्वाचार्यके द्वैत मत का कथन है कि ब्रह्म तथा जीव दोनों ही एक दूसरे भी भिन्न अलग अलग दो तत्त्व हैं। उसी प्रकार श्री सिया जू तथा श्री राघव जू तत्त्वतः एक ही ब्रह्म होते हुये भी स्वरूपतः उभय लिंगी दो हैं।

३-अणु संज्ञक वेदान्त भाष्यकार श्री वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत सिद्धान्त माया को भवगदीच्छा संभूत एक विशेष शक्ति मानता है। मायाधीन जीव के लिये मायायुक्त होने का एकमात्र उपाय भगवत् कृपा प्रसविनी भगवद्भक्ति ही है। माया मुक्त जीव ब्रह्म समान हो जाता है।

३-वेदान्त पारिजात नामक भाष्यकार श्री निम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैत सिद्धान्त कहता है कि जीव जगत तथा ब्रह्म तीनों परस्पर भिन्न हैं, तथापि जीव, और जगत का व्यवहार तथा अस्तित्व ईश्वरेच्छा पर अवलंबित है, स्वतन्त्र नहीं है। ईश्वर में ही जीव तथा जगत के सूक्ष्म तत्व रहते हैं।

उपर्युक्त चारो सम्प्रदाय के वेदान्त सिद्धान्त, साधक जीव की, ब्रह्म के साथ मधुराप्रीति के पोषक समर्थक एवं परिवर्द्धक हैं। साधक अपनी रुचि के अनुसार इन चारों में चाहे किसी सम्प्रदाय में दीक्षित होकर, इस प्रकार की मधुरा प्रीति के संचय में प्रवृत्त हो सकता है। कविश्री की मान्यता में मधुर भाव के स्नेहवंत साधक दिव्यानन्द के भागी होते हैं। जगत जाल में रचने वाले तीनों तापों से सतत जला करते हैं।

॥ मूल छन्द ॥

२३६—हरदम हरसायत हरलहजे सहजे शौक समाधी।
जाहिर जेरपेश गुजरा करि दुर्मति दाग उपाधी॥
बेपरवाही नैन निवाही सकल वासना बाधी।
युगलानन्य शरन सुनेहबल अनुपम रहस अराधी॥ २४१ ॥

शब्दार्थः—हरदम फा०=सब समय। हरसायत फा०=प्रत्येक क्षण। लहजे (लह्जः अ०) =पल। सहजे=स्वाभाविक। शौक=उमंग। समाधी=ध्यान मग्न होना। जाहिर फा०=जगत का। जेर=उर्दू अक्षर के नीचे वाला नुक्ता। पेश=उर्दू अक्षर के सामने लगने वाली उ की मात्रा। जेरपेश=अस्त व्यस्त कार्य। गुजरा कर फा०=निवटा कर। दाग फा०=क्लेश, दुःख। उपाधी=विघ्न। वेपरवाही=परिणाम के लिये निर्भय। बाधी=त्याग कर। रहस=दिव्य युगल बिहार। अराधी=उपासना में लगे रहेंगे।

भावार्थः—बड़भागी श्री सीतारानुरागी सज्जनों को दिव्य स्नेह का बल होता है। उसी के सहारे ये श्री सीतारामीय युगल विहार भावना के तलवार धार वत कठिन मार्ग पर चलते हैं। इन का स्वभाव होता है प्रत्येक समय, प्रत्येक क्षण, प्रत्येक पल, अपने युगल मनभावन जू की सुछबि में ध्यान मग्न होने के लिये उत्साह सजाये रखना। इस भाव समाधि के बाधक आते हैं वाह्य जगत के अव्यवस्थित घटना चक्र, माया प्रेरित दुर्बुद्धि, प्रारब्ध प्रेरित दुःख क्लेश तथा अन्यान्य उपद्रव। रसिक साधक किसी न किसी युक्ति से इनसे पिंड छुड़ाकर, अपने अभिप्सित ध्यान देश में बने रहते हैं। सभी वासनाओं को प्रेमपथ के कंटक मान कर, त्यागे रहते हैं। भले बुरे परिणाम से लापरवाह रहकर, अपने प्रियतम के प्रति मधुर प्रेम संचित करने में तत्पर रहते हैं। यही रसिक जन परिगृहीत आदर्श रहस्य मार्ग है।

॥ भक्ति प्रपत्ति तारतम्य ॥

❁ मूल छन्द ❁

२३७—श्री सीतापति भक्त उभय गति भक्ति प्रपत्ति बिचारी।
मर्कट मारजार बालक सम दशा सनेह निहारी॥
एक रहत आधीन पीन मन दूजो अवल सम्हारी।
युगलानन्य शरन आशक श्रीरामाधीन सुधारी॥ १५३॥

शब्दार्थ:—उभय=दो। गति=सहारा, अवलंब। भक्ति=प्रेम पूर्वक सेवा शुश्रूषा। प्रपत्ति=शरणागति। मर्कट=वानर। (मारजार सं०)=बिल्ली। निहारी=दीख पड़ता है। पीनमन=मन में पुरुषार्थ बल। अवल=साधन असमर्थ। सम्हारी=सोच समझ कर निश्चय किया हुआ। श्री राम=श्री जानकी रघुनन्दन। आधीन=पूरी परतंत्रता। सुधारी=अच्छी प्रकार से धारण किये रहते हैं।

भावार्थ:—श्री जानकी वल्लभ लाल जू के भक्तों की साधना रीति की दो पद्धति हैं। एक का नाम है भक्ति, दूसरी शरणागति कहाती है। भक्तों की वृत्ति बन्दर बच्चे की भाँति होती है। वानर बच्चा अपनी मां के शरीर को हाथ पाँव के पंजों से कसकर पकड़े रहता है। ढील करे तो ऊँची छलांग मारती हुई माता के शरीर से छूट कर गिर कर मर जाय। मां भी उसे अपना बल लगाकर पकड़े हुये समझ कर, उसके सार सम्हार से तटस्थ रह कर, अपने अन्य कार्यों में लगी रहती है। उसी प्रकार भक्त अपने इष्ट का अवलंब पकड़े तो रहतेहैं परन्तु इन्हें अपने साधन बलका भी भरोसा रहता है। वानर बच्चे से मिलती जुलती भक्तों की वृत्ति मर्कटी वृत्ति कहाती है।

बिल्ली का बच्चा मा को पकड़ना नहीं जानता। उसकी मा ही इसे अपने दाँतों से हल्के दबाये जहाँ तहाँ लिये फिरती है। सुरक्षित स्थान में रखना, उसे विघ्नों से बचाये रखना, बराबर देख देख करते रहना, समय पर आकर दूध पिला जाना सारी जिम्मेवारी मा पर रहती है। बच्चा तो मा के भरोसे पर, विश्वास किये हुये, वेफिक्र पड़ा रहता है। श्री सीतारामीय शरणागतों को अपने उपाय बल पर विश्वास नहीं होता। उन्हें आशा, भरोसा, विश्वास एक मात्र अपने शरण्य सर्व समर्थ प्रियतम के ही होते हैं। इनकी वृत्ति बिल्ली से मिलने के कारण, इनकी वृत्ति मार्जारी कहाती है।

भक्त भी प्रभु आधीन रहते हैं, परन्तु अपने पुरुषार्थ का मनोबल इन्हें साधन तत्पर बनाये रखता है। शरणागत अपने को सब प्रकार से असमर्थ समझ कर बष्ट आशा विश्वास को खूब पुष्ट बनाये रखते हैं। यों तो कर्त्तव्य पालन शरणागत भी करते हैं, परन्तु उपाय बुद्धि से नहीं, सेवा भाव से। श्री जानकी वल्लभ लाल के आशिक शरणागति के अवलंब को धारण किये रहते हैं।

❀ चार प्रकार के भक्त ❀

॥ मूल छन्द ॥

२३८—आरत जिज्ञासु अर्थारथ ज्ञानी भक्त प्रकारा।
भेद अशेष शेष श्रुति भाषत निज निज मत अनुसारा॥
पंचम प्रेमासक्त भक्तवर आशक श्याम पेआरा।
युगलानन्य शरन तिन की गति अदभुत अलख अपारा॥ १५२॥

शब्दार्थः—आरत (आर्त सं०)=संकटापन्न । जिज्ञासू=जानने की इच्छा वाले । अर्थारथ (अर्थार्थी सं०)=धन सम्पत्ति चाहने वाले । प्रकारा=भेद । अशेष=सम्पूर्ण । भाषत=कहते हैं । मत=सिद्धान्त । अनुसारा=मुताबिक । पेआरा (प्यारा)=प्रिय । अदभुत=विलक्षण । अलख= जो समझ में नहीं आवे ।

भावार्थः– भक्ति रहस्य के प्रमुख वक्ता भगवान शेषाचार्य तथा श्रुति भगवती हैं। इन दोनों ने अनेक दृष्टि कोणों से भगवद्भक्तों के भेद प्रभेद वताये । वे समस्त भेद प्रभेद निम्नलिखित चार वर्गों में ही समाविष्ट हो जाते हैं । १-संकटापन्न आर्त भक्त २-गूढ़ तत्त्वों के जानने की इच्छा वाले जिज्ञासु भक्त, ३-धनादि नाना भोग मनोरथों के इच्छुक अर्थार्थी भक्त, और ४-अपने शुद्ध जीव स्वरूप, इष्ट स्वरूप आदि को पहचानने वाले ज्ञानी भक्त। एक पाँचवा भक्त भेद और है । इनकी वृत्ति पर चतुर से चतुर वक्ता की पैनी दृष्टि भी नहीं पड़ पाती । वह है, श्री जानकी रमण जू के स्नेहासक्त भक्त शिरोमणि । ये होते हैं श्री नवेले अवध लाल के रूप दीवाने आशिक । इन पर प्रेमरिझवार श्री किशोरी कांत की अपार प्रीति होती है । कविश्री की मान्यता में इन्हें प्रेम तत्त्व की गहराई में ऐसी पहुँच होती है कि इनके यथार्थ स्वरूप को लखना तथा इनकी अपार गति का पार पाना सर्व साधारण के लिये कठिन है । लोक विलक्षण प्रेम तत्त्व का लोक भाषा कैसे वखान करे ?

॥ मूल छन्द ॥

२३६–शवदी सहज सरस सुख स्वादी शादी श्रवन सनेही है ।
जाहिर जहर जहान जुलुम बिन जिनसी नेह निरेही है ॥
गरकी गरक तरक दुनियाँ दिलदार रूप रस में ही है ।
युगलानन्य शरन तीनों मिलि मधुर रहस गुन गेही है ॥ २६५ ॥

शब्दार्थः—शवदी=रसिकाचार्यों की महावाणी (शब्द) का ग्राहक । शादी फा०=आनंद । जाहिर=बाहरी प्रगट । जहर=विषय भोग रूपी विष । जुलुम=विपत्ति दायक । जिनसी फा० =समाग्री वाला । निरेही=निष्काम । गरकी (गर्क़ी अ०)=ध्यानी । गरक (गर्क अ०)=ध्यान मग्न । तरक अ० =त्यागना ।

भावार्थः—रसिकाचार्यों की महावाणी के ग्राहक श्रवणानन्दी स्नेहवंत साधक श्री महावाणी के रसास्वादन में तत्पर रहते हैं । निष्काम स्नेह संपत्ति वाले जगत के विपत्ति परिणामी विषय भोगरूपी विष से अलग रहते हैं । रूपासक्त अपने प्रियतम की रूप समाधि में मग्न रहने के लिये वाह्य जगत के भान त्यागे रहते हैं। मधुर रहस्योंपासक उपर्युक्त तीनों वृत्तियों की त्रिवेणी संगम में मज्जन कर, अलौकिक गुण गण निधान वन जाते हैं।

तीसरा अध्याय, ब्रह्म सम्बन्ध तारतम्य

❀ मूल छन्द ❀

२४०—शान्त दास्य रस सख्य स्वाद शुचि सरस सिंगार विराजे ।
वातसल्य रस सहित विहितवर भाव पाँच भल भ्राजे ॥
सकल सनेह सरस सम्पति युत तदपि तीन तरताजे ।
युगलानन्य शरन तामें सिरमौर सुभग रसराजे ॥१२९॥

शब्दार्थः - शुचि द्विअर्थक = १-श्रृङ्गार रस, २-स्वच्छ । सरस = सर्वाधिक सुस्वादु । भल= बहुत सन्दर । भ्राजे = सुशोभित होता है । सिरमौर = सर्वश्रेष्ट । रजराज = श्रृङ्गार रस ।

भावार्थः - भक्ति देश में ब्रह्म तथा जीव के मध्य पाँच प्रकार के दिव्य सम्बन्ध प्रचलित हैं । १-शान्त रस युक्त, २-दास्य भाव की प्रीति भक्ति, ३-सख्य भाव की प्रेयो भक्ति, ४-वात्सल्य भाव की वत्सल भक्ति तथा ५-श्रृङ्गार रस की मधुराभक्ति । पाँचों शास्त्रानुमोदित, शिष्ट परिगृहीत (विहित) बड़े ही उत्तमोत्तम (वर) ब्रह्म सम्बन्ध (भाव) हैं । भक्त समाज में पाँचों की अपनी अपनी न्यारी न्यारी शोभा है (भ्राजे) । पाचों के पास सरस भाव की अक्षय संपत्ति परमानन्द प्रदायिनी है ।

परन्तु इन पाँचों में सख्य, वातसल्य और श्रृङ्गार भाव, शान्त और दास्य की अपेक्षा निकट सम्बन्ध होने के कारण नव नवायमान (तरताजे) सुख सजने वाले हैं । पुनः इन तीनों में भी रस राज श्रृङ्गार रस वाला भाव सर्वाधिक सुस्वादु स्वच्छ तथा खूबही शोभा सजने वाला है ।

"नूतन नूतन माधुरता धुर धारि रहीं सिगरी जग केरी ।
प्रेम तरंग करंवित अंतर अंगन में सुषमा बहुतेरी ॥
राघव को अपनो पति मानि भजैं नित हो नवला गन गेरी ।
ऐसी सुशोभन अदभुत वयस किशोरिन को प्रनमो वहुतेरी ॥"

—श्री प्रेमासुधा रत्नाकर, ५१७ ॥

❀ मूल छंद ❀

२४१—वात्सल्य रस वादशाह संदेह रहित गुन सागर ।
शाहनशाह अथाह अनूपम रस भूपेश उजागर ॥
नेही नेह नेह नाजुक नित निरखे नागरि नागर ।
युगलानन्य शरन सतमत सुख समुन्नत गुननिधि आगर ॥७६॥

शब्दार्थः—वादशाह फा० = राजा । शाहनशाह फा० = राजाओं के भी राजा, सार्वभौम चक्रवर्ती सम्राट् । भूपेश = राजाधिराज । उजागर = जगमगाता हुआ, सर्व विदित । नाजुक फा० = कोमल, सुकुमार । आगर (अग्र सं०) = श्रेष्ठ ।

भावार्थः—जहाँ शान्त रस सामान्य प्रजावत मान्य है, वहाँ दास्यभाव सेवक, खाश खवाश पद पर प्रतिष्ठित होता है। सख्य भाव मंत्रीपद पर पहुँचते हैं, परन्तु वात्सल्य रस सम्बन्ध में अति निकट पहुँचने के कारण राजा के गौरवमय पद पर आसीन होता है। वत्सल भाव के भक्तों में समुद्र के समान अनन्त कल्याण गुणगण आ जाते हैं। इनकी नीर मीनवत प्रीति अत्यन्त प्रशंसनीय होती हैं। वात्सल्य रस की विशिष्टता में दो मत (संदेह) हो ही नहीं सकते। किन्तु शृङ्गार रस की बात सर्वथा भिन्न है। इस सम्बन्ध में तन का एकत्व, हृदय का एकत्व होने के कारण सर्वश्रेष्ठ चक्रवर्ती सम्राट का पद इसे प्राप्त है। शृङ्गार रस को रसराज का पद सभी रसाचार्यों के द्वारा मान्य है, क्योंकि इसके अभ्यन्तर सुख स्वाद [रस] की न तो थाह है, न दूसरी तुलना [अनुपम] है। शृङ्गार भाव वाले सुहाग भाग से सम्पन्न होकर, मधुर स्नेह से ओतप्रोत हृदय के अत्यन्त कोमल कांत भाव में निर्भर होकर, रसिक शिरोमणि श्री अवधेश लाडिले एवं रसकला विदग्धा श्री विदेह राजदुलारीजू को अवलोकन करते हैं। इन्हें जिस मधुरानन्द का समास्वादन होता है, वह मन वाणी से अतीत है। इस रसानन्द की परावधि को वही गुण निधान रसिक सुजान समझेंगे, जो स्वयं भुक्तभोगी हैं।

॥ मूल छन्द ॥

२४२—वात्सल्य रस पूजनीय प्रिय गुरु प्रभाव धिय ध्याई।
मौज महान सुजान अनत किमि केलि कलित छबि छाई॥
या मधि रंच विवाद देश अवकाश न नेक लखाई।
युगलानन्य अकथ उज्ज्वल रस कहत गिरा शरमाई॥८०॥

शब्दार्थः प्रभाव=महिमा। धिय=बुद्धि। ध्याई=बिचार कर। मौज फा०=सुखस्वाद। अनत=शृङ्गार से भिन्न। केलिकलित=युगल विहार संयुक्त। रंच=तनक। अवकाश=गुंजाइश। नेक=तनक भी। अकथ=जो कहने में नहीं बने। उज्ज्वल रस=निर्दोष रस शृंगार। गिरा=सरस्वती। शरमाई=लज्जित होती हैं।

भावार्थः – वात्सल्य भाव विशिष्ट भक्त होते तो हैं हमारे ललीलाल के माता पिता, सास ससुर, गुरू चाचा आदि गुरुजन। हमारे इष्ट के प्रणम्य होने के कारण, हम सभी भक्तों के लिये भी वे प्रणम्य हैं, पूज्य हैं। उनमें सम्बन्ध गौरव वाला शासनाधिकार भी होता हैं। बुद्धि से विचार करने पर निश्चय होता है कि इनकी भक्ति बहुत प्रभावशालिनी होती है। किन्तु जो रसिक महानुभाव को दिव्य कनक भवन के युगलविहारी ललन की केलिक्रीड़ाओं के दर्शन एवं सरस सेवा जन्य मधुरानन्द अनुभूत होता है, वह अन्यभाव में कहाँ पाइये? इस निभ्रान्त सत्य वस्तु में खंडन करने की किंचित भी सन्धि नहीं मिलने को "काम मोहित गोपिकन पर कृपा अतुलित कीन। जगत पिता विरंचि जाके चरन की रज लीन्ह॥" ;श्री विनय०'

कविश्री के मत से केवल प्रियतम सुख प्रयोजनवान शृंगारभाव ही स्वसुख का आत्यन्तिक अभाव बनाने वाला है। इसी दृष्टि से अमरकोश ने शृङ्गार रस को शुचिरस, उज्ज्वलरस कहा है।

हृदय को विशुद्ध बनाने वाले इस रसराज की महिमा कहने में स्वयं वाक्देवी भगवती सरस्वती असमर्थ होने के कारण लज्जित रहती हैं।

॥ मूल छन्द ॥

२४३—आशक अमल सुध्येय पेय रसभूप विलच्छन जानो।
हरसायत श्री युगल ललन मुदमोद तहाँ रस खानो॥
सकल रसन सिरताज सिरोमनि श्री रसराज सुजानो।
युगलानन्य शरन इनके मिलने हित इश्क सुठानो॥१३०॥

शब्दार्थः—अमल=विशुद्ध, व्यसन स्वरूप। ध्येय=ध्यान करने योग्य। पेय=भाव द्वारा रसपान करने योग्य। रसभूप=रसराज शृङ्गार। हरसायत=सब समय। मुदमोद=आभ्यन्तरिक-सुख। ठानो=तत्परता पूर्वक साधन करो।

भावार्थः—श्री जानकीवल्लभलालजू के स्नेहासक्त आशिकों के लिये शृंगार रसमयी उपासना पद्धति ही सब प्रकार से निर्विकार (अमल) है। इसी पद्धति में युगलविहार का ध्यान बनता है। युगल केलिक्रीड़ामय दिव्य रस का समास्वादन भी यहीं संभव है। अन्यान्य भक्ति रसों की अपेक्षा इसमें सर्वाधिक सुख स्वाद के वैलक्षण्य होने ही के कारण इसे रसराज माना गया है। प्रेम की माँग होती है कि अपने प्रेमास्पद के लिये अधिकतम सुख सम्पादन करना। रसमय ब्रह्म को अत्यन्त रसीले सुख स्वाद तो युगल विहार ही में संभव है। सो युगल विहार विवर्द्धिनी सरस महल टहल एकमात्र इन्हीं रसराज भाव वालों के बाँटे में हैं। युगल केलिक्रीड़ाओं के निरन्तर उत्कर्ष के लिये तदनुरूप युक्ति यही जानती हैं। इसी लिये भक्ति के शेष चार रस—शान्त, दास्य, सख्य और और वात्सल्य की अपेक्षा तथा करुणा, हास्य, रौद्र, भयानक, वीर, विभत्स, और अद्भुत संज्ञक सप्त गौण रसों की अपेक्षा भी शृङ्गार रस सर्वश्रेष्ट रस मुकुटमणि है। ऐसा निश्चय पूर्वक जान लेना चाहिये। हमारे आचार्य चरण का अमृत उपदेश हो रहा है कि इस शृंगारभाव प्रधान ब्रह्म सम्बन्ध की परिपक्वता के निमित्त इश्क उपार्जन में साधन निष्ठ होना चाहिये।

* चौथा अध्याय, इष्ट में अनन्यता *

॥ मूल छन्द ॥

२४४—प्रबल प्रताप उदय भूमंडल मारतंड सब देखे।
नैन हीन तमचर उलूक रंचक प्रकाश नहिं पेखे॥
कहा होत यामें दिनकर दुति मंद अमंद विशेषे।
ऐसहिं रहस अनन्य रहित मत कहु आवत केहि लेखे॥१६२॥

शब्दार्थः—प्रवल=प्रचंड। प्रताप=तेज। मारतंड (मार्तण्ड सं०)=सूर्य। तमचर=अन्धेरे में चलने वाला। रंचक=तनक सा। पेखे=देखता है। दिनकर=सूर्य। दुति=प्रकाश। मंद=कम। अमंद=अधिक। रहस=युगल विहार भावना। मत=सिद्धान्त। लेखे=गिनती में।

भावार्थः—अनन्य (न+अन्य)=अपने इष्ट श्री सीताराम जी को छोड़कर, देवतान्तर या सगुण ब्रह्म के भी अवतारान्तर में आशा, भरोसा, निर्भरता का अभाव होना ही अनन्य उपासना कहाती है। अनन्य उपासना लौकिक पतिव्रता के सतीत्व धर्म से बहुत कुछ समानता रखती है। सती नारियों के अप्रतिम प्रभाव की कथायें पुराण प्रसिद्ध हैं। सती अनसूया ने अपने सतीत्व के बल पर ही त्रिदेवों को भी अपने पुत्र बनाये। शांडिली शैव्या ने अणि मांडव्य ऋषि से श्रापित पति की मृत्यु रोकने के लिये सूर्य का उदय होना रोक दिया था। सती सावित्री ने अपने पति सत्यवान की मृतात्म को यमराज के पाश से मुक्त करा कर, उन्हें पुनः जीवित किया था। सती दमयन्ती ने कुदृष्टि से देखने वाले व्याध को श्राप देकर मौत के घाट पार उतारा था। सती देवियों के प्रवल प्रताप के समान ही अनन्य उपासकों के प्रताप भी प्रवल हो जाते हैं। देवताओं की सेवा पूजा भजन स्मरण के साथ अपने इष्ट श्री सीताराम जी की उपासना मिलाने वाले की भक्ति व्यभिचारिणी कहाती है। ऐसे व्यभिचारिणी भक्ति वाले को अपने इष्ट का पतिलोक श्री साकेत धाम नहीं मिलता। न इष्ट में इन्हें प्रगढ़ प्रेम ही जमने पाता। यदि आप को रसिकाचार्यों की महावाणी में आस्था हो, तो आप प्रस्तुत ग्रंथ रत्न के प्रातः स्मरणीय कवि की अनन्य प्रमोद नामक दोहावली पढ़ें। यदि आप आर्ष ग्रन्थ ही को प्रमाण मानते हैं, तो भारद्वाज संहिता पढ़ें अथवा श्री मद्भगवद्गीता अध्याय १२ के छठा श्लोक, अ० ११ (५४), ७ (१७), ८ (१४, २२, ५), ६ (१३, १२), १३ (१०), १४ (२६) पढ़ें।

"भक्त अनन्य प्रताप की, महिमा अधिक अपार।
जानहि रसिक अनन्यधी, तजि बिकार व्यभिचार॥" श्री अनन्य प्रमोद।

श्री सीतारामीय अनन्य उपासकों को ब्रह्म ज्ञानियों के तत्त्वानन्य को अज्ञान कल्पित फलतः असत्य मान्य हैं। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'। उनकी दृष्टि में सर्वत्र एक ही ब्रह्म तत्व भरपूर हो रहा है। अपने को, दूसरे को सबों को ब्रह्म ही कहते हैं। इसी भाँति श्री रामानुज सम्प्रदाय वाले आचारी वैष्णव एक मात्र श्री मन्नारायण ही को सगुण ब्रह्म मानते हैं। श्रीराम कृष्ण, नृसिंह आदि उन्हीं के अंशावतार बताते हैं। सगुण ब्रह्म के नारद पंचरात्र संहितोक्त श्री साकेत, गोलोक, वासुदेवादि चतुर्व्यूह के वैकुंठ, महावैकुंठ, पर वैकुंठ, कारण वैकुंठ, आदि नाना रूपधारी सगुण ब्रह्मों के विविध वैकुंठों को ये एक ही वैकुंठ के नामान्तर बताते हैं। अतः इनकी सगुण ब्रह्म विषयक मान्यता भी हमें ग्राह्य नहीं हैं। हमारी मानन्यता में श्री सीताराम जी परात्पर तत्व हैं। श्री मन्नारायणादि अन्यान्य सगुण ब्रह्म हमारे इष्ट श्री सीताराम के अंश मात्र हैं।

"उपजहि जासु अंस ते नाना। संभु विरंचि विष्णु भगवाना॥

"रामः सत्यं परं ब्रह्म रामत्किञ्चिन्न विद्यते ।
तस्माद्राम स्वरूपं हि सत्यं सत्यमिदं जगत ॥" श्रीरामस्तवराज, ६२।
सब कर परम प्रकाशक जोई । राम अनादि अवध पति सोई ॥
अवधधाम धमादि पति अवतारन पति राम ।' लोकोक्ति अक्षरशः सत्य है ।

भगवान भास्कर के मध्याह्नकालीन प्रचंड प्रताप को सभी लोग अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देखते हैं । दिवांध उल्लू पक्षी को सूर्य प्रताप न सूझे, तो क्या सूर्य तेज में कोई कमी आती है ? इसी प्रकार व्याभिचारी उपासक अनन्य भजन की महिमा न समझे, तो अनन्यता का प्रताप कम नहीं होने को ।

"भगति पच्छ हठ करि रहेउँ, दीन्हि महारिषि साप ।
मुनि दुर्लभ वर पायउँ देखहु भजन प्रताप ॥" श्री मन्मास ७।११४।

केवल अनन्य उपासक ही अपने इष्ट को प्रेम के प्रभाव से स्ववश कर सकते हैं ।

"जैसे सतपति को प्रिया. पतिव्रता करि वस्य ।
वैसे ही वस इष्ट को, करत अनन्य अवस्य ॥" श्री अनन्य प्रमोद ।

जिस मत में महामहिम अनन्य रहस्योपासना प्रतिपादित नहीं हो, वह मत धूल वत तुच्छ एवं त्याज्य है ।

"विभिचारी डोले विपुल, पढ़ि बहु वेद पुरान ।
भजन अनन्य सवाद बिनु सब मत धूरि समान ॥" श्री अनन्य प्रमोद ।

॥ मूल छन्द ॥

२४५—चातक सम दृढ़ नेम प्रेम व्रत गति अनन्य झलकावै ।
श्रवन न अपर सुजस रसना गुन नाम और नहि भावै ॥
करन कदंब अमल मूरति अवलंब समेत सोहावै ।
युगलानन्य शरन प्रतिभा परत्यक्ष परम प्रिय पावै ॥ १३१ ॥

शब्दार्थः—दृढ़=अटूट । नेम (नियम सं०)=सुनिश्चित बँधा हुआ भजन क्रम । प्रेम=अटूट भाव । व्रत=पक्का संकल्प । गति=पथ, मार्ग । अपर=दूसरा । करन=इन्द्रियाँ । कंदब=समूह । अमल=दिव्य । मूरति=प्रियतम रूप । अवलंब=आश्रय । प्रतिभा=चमक । परत्यक्ष=स्पष्ट रूप से ।

भावार्थः—रसिकानन्य साधक, पपीहे से, अपने इष्ट के प्रति नियम, प्रेम और व्रत धर्म सीखते हैं । पपीहे को एक मात्र स्वाती मेघ की ही आशा, भरोसा और विश्वास होते हैं । उसमें कभी शिथिलता नहीं होने पाती । उसका संकल्प अडिग है । उसी भाँति—

'एक भरोसो एक बल एक आस विश्वास ।
एक राम घन स्याम हित, चातक तुलसी दास ॥" श्री दोहावली २२७

"चातक सतत सराहिये, गहे एक घन आस।
अपर विहंग कुरंग सब, विगत अनन्य विलास॥"

चातकी वृत्ति वाले रसिकान्य अपने कानों से अपने प्राण प्यारे की वीणा विनिन्दिनी वाणी सुनेंगे, अथवा उन्हीं की चर्चा गुणानुवाद सुनकर अपने कान को धन्य मानेंगे। इसी प्रकार जीभ अपने मनभावन के सुधाधिक सुस्वादु नाम जपेगी या अपने चितरंजनलाल की सुललित गुणावली का गायन करेगी।

"श्री सीतावर नाम गुन, धाम रूप बिन आन।
कहै कहावै अपर कछु, सो व्यभिचार प्रमान॥"

श्रीअनन्य प्रमोद।

"जानकि जीवन की बलि जैहौं।
चित कहै राम सीय पद परिहरि अब न अनत कहुँ जैहौं॥
उपजी उर प्रतीति सपनेहु सुख प्रभु पद विमुख न पैहौं।
मन समेत या तन के बासिन इहै सिखावन दैहौं॥
श्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं रसना और न गैहौं।
रोकिहौं नैन विलोकत औरहिं सीस ईस ही नैहौं॥
नातो नेह राम सो करि, सब नातो नेह बहैहौं।
यह छर भार ताहि तुलसी जग जाको दास कहैहौं॥ श्री विनय पत्रिका

अन्तःकरण के मन बुद्धि, चित्त और अहंकार के साथ साथ शरीर की बाह्य सभी इन्द्रियों की वृत्तियों को अपने एकमात्र प्राणसर्वस्व के मधुर मनोहर नाम, रूप, लीला धाम में उलझाये रखना रसिकानन्यों को रुचता है।

"धनि पतिव्रत संत कंत घनश्याम के।
दूजो पुरुष न भान उभय विधि राम के॥
जो जोहै कहुँ भूलि तात सुत सदस ही।
हरिहौं, विषय विकार विहाय स्वामिगुन सरसही॥

श्री प्रेमप्रकाश, १६१।

ऐसे ही रसिकानन्य धन्य संत शिरोमणि को अपने लाडिले श्री जानकी रमण जू की प्रत्यक्ष झाँकी झलक प्राप्त होती है।

अवध सुधाम पै सकल लोक धाम वारौं और नाम वारौं राम नाम सुधाधार पै।
रामायन लीला पै सकल ईस लीला वारौं और प्रभुताई राम प्रभुता अपार पै॥
वारौं रसरंग राम अंग पै अनंग कोटि प्रान वारौं राम के सुभाव सील प्यार पै।
रामतेन तेज पर ब्रह्म निराकार वारौं दस अवतार दसरत्थ के कुमार पै॥

❁ मूल छन्द ❁

२४६-विशद वचन कल क्रिया असन निज नवल सुगुन विधि जानो ।
रूप अनूप समेत स्वादमय षट अनन्य मन मानो ॥
इनके भेद अखेद अमित अति ललित सुगुरु मुख जानो ।
युगलानन्य शरन सरसिज सम संकासित अनुमानो ॥ १३८ ॥

शब्दार्थः—विशद=स्वच्छ । कल=सुन्दर, संतोषप्रद । असन=भोजन । नवल=अनोखे । स्वाद=रस । पट=छः । भेद=प्रकार । अखेद=दुःख रहित । अमित=अनगिणित । सरसिज=कमल । संकासित=खिला हुआ । अनुमानो=विचार करो ।

भावार्थः—षट प्रकार सुखसार श्री सुमत अनन्य सुगन्य ।
सुजन सनेही समुझि हैं, जिनके नेह सुधन्य ॥
श्री अनन्य प्रमोद, ३० ।

रसिकानन्य महापुरुषों के द्वारा आचरित अनन्यता के मोटामोटी छः प्रकारों के विवरण नीचे दिये जाते हैं ।

१-ये अपने इष्ट के नामानन्य होते हैं । यद्यपि भगवन्नाम असंख्येय हैं, परन्तु आप अपने ही प्रियतम श्री जानकी रमण युगल किशोर के सुमधुर युगल नाम का श्रवण उच्चारण करेंगे । उसी प्रकार आप गुणानन्य होते हैं । अपने प्रियतम के ही गुणचिंतन एवं कथन करेंगे । इस प्रकार आप की शान्ति दायिनी मिष्ट वाणी का सदुपयोग अपने ही मनभावन युगल ललन से सम्बन्धित होगा ।

२-"तिय चढ़िहहि पति व्रत असि धारा ।" पर चलने वाले रसिकानन्य की सारी सन्तोष दायिनी क्रियायें अपने प्रियतम प्राणेश के प्रीत्यर्थ, उन्हीं के सेवाभाव से संघटित होंगी ।

३-रसिकानन्यों के उत्तम आहार तो हैं युगल दिव्य विहार का मानसिक रसमय टहल के साथ दर्शन, दूसरा आहार युगल नाम रटन भी है, तीसरा आहार है एक मात्र अपने ही सुमिष्ट इष्ट के अधारोच्छिष्ट दिव्य महामहिम प्रसाद का सेवन ।

"रसिकन संग में प्रसाद स्वाद लहै, काहू सों न कछु चहै रूप संपति कों पाय कै ॥"

४-आप के पातिव्रत्य टेक वाले श्रवण अपने ही हृदय रमण के गुणगण श्रवण करने को समुत्सुक रहते हैं ।

"पर पति गुन सुनि फूलै नारी । रति न करै यद्यपि व्यभिचारी ॥"
—श्री अनन्यचिंता मणि ।

५-आप के चातकी वृत्ति धारी नयन की प्रकृति श्री मानस जी की पंक्तियों से विचार लीजिये ।

"लोचन चातक जिन्ह करि राखे । रहहिं दरस जलधर अभिलाषे ॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी । रूप बिंदु जल होहिं सुखारी ॥"

६–रसिकानन्य महानुभावों के हृदय में प्रतिष्ठित शृङ्गार रसमयी मधुरा प्रीति, इन्हें अपने परम मनभावन युगल किशोर को कोटि कोटि भाँति से दुलराने के लिये उत्साहित करती रहती है। रसराज के समाश्रित अन्य रस, मधुर रस में मिलने से ही, रसनीय बनते हैं। इष्ट रूप का सुख स्वाद भी मधुर रस युक्त ही अपरिमित बनता है। अतः रसानन्यता छठी अनन्यता हुई। इस भाँति उपर्युक्त अनन्यता के छः प्रमुख भेद हुये। इनके और भी आवान्तर भेद प्रभेद बनते हैं। अपने सम्बन्ध प्रदायक रसिक सद्गुरु के श्री मुख से श्रवण करना चाहिये। अनन्यता की सुदृढ़ धारणा से ही हृदय स्थित आनन्द कली प्रफुल्लित होती है। समझ लें कि अनन्यता बनी कि कमल कली खिली। अनन्यता सूर्य से ही आनन्द कली का विकास संभव है।

॥ मूल छन्द ॥

२४७–गनिका सुवन समान जीव गन जे नहि सुदृढ़ उपासी।
भटकत फिरत फंद फानी फँसि उभय लोक उपहासी॥
बार बार धिक्कार ताहि पर जो न अनन्य विलासी।
युगलानन्य शरन सुखसीमा श्री अनन्य रति खासी॥१३२॥

शब्दार्थः–गनिका (गणिका सं०)=वेश्या। सुवन=पुत्र। सुदृढ़=अनन्य। फंद=जाल। फानी अ०=नाशवान। उभय लोक=मर्त्यलोक तथा दिव्य साकेत धाम। विलासी=आनन्द अनुभवी। सीमा=पराकाष्ठा। खासी=विशिष्ट।

भावार्थः–जिस विचार हीन साधक का एक ही चित अनेक देवी देवताओं में सगुणब्रह्म के अनेक रूपों में विभाजित है, उसका मन न एक रूप में एकाग्र होगा, न उसे ध्यान मग्नता सिद्ध होगी। एक ही नाम के निरन्तर जप से अजपा सिद्ध होता है। उपासना की दृढ़ता भी किसी एक ही नाम रूप वाले इष्ट में संभव है।

वेश्या पुत्र का कोई एक निश्चित पिता तो होता नहीं। पिता का वात्सल्य स्नेह उसे कहाँ प्राप्त? उसका भरण पोषण, शिक्षा दीक्षा आदि व्यभिचारिणी वेश्या माता के द्वारा भी उपेक्षित ही रहती है। यही दशा व्याभिचारिणी भक्ति करने वालों की होती है। उपासना रहस्य के मर्मज्ञ सज्जनों की संख्या बहुत ही सीमित है। सांसारिक प्राणी अधिकांश पंचायती अपरिपक्क मत लिये डोलते हैं। उनके समाज में व्यभिचारी मत का समादर होता है। एक इष्ट निष्ठ सती धर्म लोक समाज में संकीर्णता नाम से उपेक्षणीय माना जाता है। अतः भोले भाले साधक, लोक समादृत पंचायती विचार के मोहक जाल में फँस कर सत्पथ से भ्रष्ट हो जाते हैं। इस लोक के सच्चे उपासकों की दृष्टि में निन्दित माने जाते हैं। परलोक में भी न उन्हें अनन्य सीतारामोपासकों के गन्तव्य स्थान श्री साकेत की प्राप्त होती, न कैलास की, न शक्ति लोक की, न इन्द्रादि पुण्यलोकों की। नित्य बृन्दावन क्षीर सागर वैकुंठ, महावैकुंठ, श्वेतद्वीप वैकुंठ आदि भी उन्हीं के वैकुंठनाथों के अनन्य उपासकों को प्राप्त होते हैं। पंचायत मत वाले बीच ही में त्रिशंकु बने रहेंगे। धोबी का कुत्ता, न घर का, न घाट का।

इसी लिये अनन्य उपासना के सुखानुभव से विरहित अभागी प्राणी सत्समाज में बार बार धिक्कारे जाते हैं। कविश्री के अनुभव में अनन्य उपासना के द्वारा ही सुख की परमावधि प्राप्त होना संभव है ॥

"भक्त अनन्यन को पथ नाको ।
जामें चलि न सकत चतुराई चौगुन चाह चाल चित चाको ।
व्यभिचारी भटकत पाहन ज्यों, जिन सपनेहु रस रहस न झाँको ॥
स्वान समान जहाँ तहँ डोलत, एक ठौर सुख स्वाद न साको ।
दुर्लभ रंग महल रघुनन्दन बिना सुसंग रसिक छवि छाको ॥
परम परेश प्रेम पंकज पर, फूलन हित अनन्य सविता को ।
युगलअनन्य शरन पाँवर नर, क्या जाने जहँ मति मन थाको ॥"

-श्री संत सुख प्रकाशिका ।

* पाँचवाँ अध्याय, सजातीय रसिक सङ्ग *

आध्यात्मिक अभ्युत्थान के लिये "सबहि मानप्रद आपु अमानी" बनना सर्वथा उचित है। सर्वसाधारण की अपेक्षा वैष्णव तथा संत वेश विशेष आदरणीय हैं। परन्तु जिनके समागम से इष्ट के प्रति अनुराग रंग चढ़े और प्रगाढ़ होवे, वे विलक्षण विशिष्ट महापुरुष होते हैं। उनकी पहचान के लिये अगले छन्द में उनके लक्षण बताये जाते हैं।

॥ मूल छन्द ॥

२४८-घूर धूर दौलत कुवेर की हूर शूकरी नारी है ।
पाय सजीवन मूर मनोहर पूर रही गुलजारी है ॥
हरसायत मखमूर नशे में चूर चूर रति प्यारी है ।
युगलानन्य शरन इस विधि के रसिकन पर बलिहारी है ॥ १७४ ॥

शब्दार्थः—घूर=कूड़े कचड़े की ढेर। धूर=धूल। दौलत फा०=सम्पत्ति। हूर फा०=स्वर्ग सुन्दरी, अप्सरा। मूर (मूरि सं०)=जड़ी। गुलजारी=पुष्प वाटिका की रमणीयता। मखमूर (मख्मूर अ०)=नशे में चूर। चूर चूर=मद विह्वल।

भावार्थः- रसिक महानुभावों में पर वैराग्य स्वभाव सिद्ध हो जाता है। जहाँ जगत के जीव अर्थ संचय के लिये, चोरी, डकैती, घुसखोरी, बेईमानी, काला बाजार आदि कौन कौन कुकर्म नहीं करते, वहाँ रसिकजनों को धनाध्यक्ष कुवेर की सारी सम्पत्ति भी हाथ लगने को हो, तो वे उसे उसी प्रकार से उपेक्षा कर देंगे, जैसे कूड़े कचड़े के ढेर पर पड़ी धूल अपावन एवं उपेक्षणीय होती है।

देव सुन्दरी के समान नवयौवना रमणी भी उनकी दृष्टि में शूकरी के समान घृणास्पद एवं अस्पृश्य जान पड़ती है। कंचन और कामिनी के उपेक्षण से रसिकजनों में लौकिक भोगों का अशेष त्याग स्वतः सिद्ध हो जाता है।

"नहिं अग्र अस संत के, सर लायक जग माहि।
रस श्रृंगार अनूप हैं तुलवे को कोउ नाहि॥
तुलवे को कोउ नाहि सोई अधिकारी जन में।
कंचन कामिनि जानि हलाहल त्यागेउ तन में॥
यावत् जग के भोग रोग सम त्यागेउ द्वंदा।
पिय प्यारी रससिंधु मगन नित रहई अनंदा॥

इन में परवैराग्य उदित होने का कारण यह है कि इन्हें श्री अवध विहारी जू के मृत संजीवनी रूप माधुरी पान करने को मिल गई है। इसे पाकर इनके हृदय के आनन्द कानन में सदा वासंती रमणीयता छाई रहती है-श्री नवेले लाल के प्रति उदित मधुरा रीति इन्हें अति प्यारी लगती है। उसी माधुरी का पान कर, आप मद विह्वल एवं नेह नशे में चूर हो रहे हैं। हमारे परमाराध्य कविश्री ऐसे रसिक रत्नों पर बलिहार हो रहे हैं।

॥ मूल छन्द ॥

२४९—सिय वल्लभ संबंध सुधासर अपर हलाहल हायल हैं।
कामिल काम कलाम कसर बिन कासिद रहस समायल है॥
इत उत की अरचा चरचा तजि सुने सुरव प्रिय पायल है।
युगलानन्य शरन हम तो सब तरह उन्हों के कायल हैं॥ १७९॥

शब्दार्थः—सुधासर=अमृत सरोवर। हायल (हाइल अ०)=भयानक। कामिल अ०= होशियार, प्रवीण। काम कलाम=दिव्य विहार वार्ता। कासिद अ०=पत्रवाहक दूत। समायल (समावेशित सं०)=भरे हुये। अरचा (आर्चा)=पूजन। सुरव=मनोहर ध्वनि। पायल=नूपुर। कायल (काइल अ०)=कबूल करने वाले। कसरबिन=निर्विकार।

भावार्थः—रसिक जनों की रहिने के सम्बन्ध में कविश्री कहते हैं कि रसिक रत्नों के लिये श्री जानकी वल्लभलाल जू से सम्बन्धित नाम रूप लीला धाम सुधा सरोवर के समान हैं। प्यारे की सम्बन्ध विरहित सारी वस्तुएँ भयंकर कालकूट जहर लगती हैं। ऐसे रसिक महानुभाव श्रीप्रिया प्रियतम के रहस्यज्ञान के सर्वांगपूर्ण मर्मज्ञ होते हैं। ऐसे प्रवीण रसिकों के श्री मुख से निर्विकार दिव्य विहार वार्ता सुन कर, ऐसा लगता है कि ये दिव्य विहार देश से पत्रवाहक दूत बन कर, इस मर्त्यलोक के मानवती विलासिनी वत रस साधकों के पास इन्हें मना कर वहाँ ले जाने को आये हैं। अपने इष्ट से भिन्न देवतान्तर या सगुण ब्रह्म के रूपान्तरों की पूजा चर्चा छोड़कर, एक मात्र अपने प्राण प्यारे के रास कालिक नूपुर की संगीत सुधा सरसावनी एवं हिय हुलसावनी मनोज्ञ ध्वनि सुनने को समातुर रहते हैं। कविश्री इन्हीं लक्षणों से विशिष्ट महापुरुषों को संत रसवंत मानते हैं।

॥ मूल छन्द ॥

२५०—रसिक सनेहवंत आशक प्रिय मेरे प्रान प्रिया ते हैं।

घुरनित नैन बैन रसमाते नेह नशा ते राते हैं।
शील सनेह सरोवर सुषमा कंज मंजु दरसाते हैं।
युगलानन्य न भूलें हरगित बार बार दिल आते हैं ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—रसिक=मधुर भाव के उपासक। प्रिया ते=प्रिया श्री सिया स्वामिनी जू से बढ़ कर। प्रिय प्रान=प्राणोपमप्रिय। घुरनित (घूर्णित सं०)=नशे में घूमते हुये। माते=उन्मत्त। राते=लालरंग वाले। दिल आते हैं=याद आते हैं।

भावार्थः—स्नेह की मादक माधुरी पान कर, प्रेमोन्मत्त बने हुये रसिक आशिक, मुझे स्वयं श्री प्रिया जू से भी अधिक प्राण प्रिय लगते हैं। जब देखो इनके नयन स्नेह नशे में चूर होकर, अरुणिम एव घूमते मिलेंगे। गद्गद् कंठ से इनकी अर्धस्खलित वाणी में भी प्रेम की मस्ती सनी पाइयेगा। इनके शील सनेह को देख कर ऐसी उत्प्रेक्षा फुरती है कि मानो शील सनेह के शोभा सरोवर में आप मनोज्ञ कमल खिले हों। ऐसे प्रेमोन्मत्त रसिकराज के एक बार भी दर्शन हो जायँ, तो इन्हें कभी नहीं भूलेंगे। बार बार इनकी सुमधुर स्मृति हृदय देश में प्रेमानन्द सरसाती रहेगी।

"राम बुलावा भेजिया, कबिरा दीन्हा रोय। जो सुख संतन संग में, सो वैकुंठ न होय॥

॥ मूल छन्द ॥

१५१—नवल नाह उत्साह चाह चितवन में जों जन रंगे हैं।
अमल कमल से सदा विकासित भासित भाव उमंगे हैं॥
वेसर करनफूल कुंडल उरझाने लखे उतंगे हैं।
युगलानन्य शरन पल पल पर रुचत सोइ सतसंगे हैं ॥१८०॥

शब्दार्थः—नवल नाह=नवकिशोरता की नव नवायमान माधुरी से विशिष्ठ जानकी रमण जू। चितवनि में चाह=दर्शनोत्कंठा। भासित=चमकीला। भाव उमंग=प्रेमोत्साह। उतंगे (उतंग सं०) =ऊँचा।

भावार्थः—रसिक महानुभावों की चितवनि में प्राणनाथ की छबिछटा अवलोकन करने की उत्कंठा बसी रहती है। नवकिशोरता की नवल माधुरी से सम्पन्न श्री नवेले लाल से मिलन के उत्साह रंग में सदा अनुरंजित रहते हैं। ऐसे रसिकजन भावना में क्या देखते हैं कि पारस्परिक मुखचन्द्र दर्शन से एक दूसरे के नयन स्वच्छ कमल के समान प्रफुल्लित हो रहे हैं, जिनमें प्रेम की उमग सरसा रही है। अधर पान काल में प्यारे की नाशामणि श्रीप्रिया जू के बेसर में उलझ है। कपोल से कपोल मिलाने में प्यारे के कुंडल प्यारी जू के कर्णफूल में फँस गया है। रहस्य की उँची दशा है यह।

इस प्रकार से युगलविहार दर्शन में छके रसिकजन जगतभान भूले रहते हैं। कविश्री को ऐसे ही रसिक रँगीलों का क्षण प्रतिक्षण का सत्संग रुचता है।

"सुमन समान सुगंध सदा सतसंग है। मधुप सनेही रसिक रँगे रसरंग है।
रसि रसना धुनि श्रवन अचल चित डोलते। हरिहौं, होंय महामस्तान न कबहूँ बोलते॥"

श्री प्रेमप्रकाश।

❀ मूल छन्द ❀

२५२—श्री सियाराम रँगीले रसनिधि रसिक सजाती साँचे।
जिनके अंदर बाहर हूँ निज नेह अजूब अयाँचे॥
तिनके संग सजे भासे भल भाव चाव रस राँचे।
युगलानन्य शरन नेही आशक मुद मंगल माचे॥१८॥

शब्दार्थः—श्री=अपार शोभाधाम, अनन्त भोग सम्पत्ति से भरपूर। रंगीले=अनुराग रंग से रँगे। निजनेह=अपने आत्मीय युगलकिशोर के प्रति स्नेह। अयाँचे=सहज, स्वाभाविक। भासे=सूझेगा। भाव=प्रेम। चाव=उत्साह। माँचे=फैल जाय।

भावार्थः—अनन्त शोभाधाम एवं अपरिमित भोगैश्वर्य से भरपूर श्री मैथिली रघुनन्दनजू के अनुराग रंग में जो रँगे हैं, तथा जिनके हृदय में युगल विहार भावना का भंडार भरा हैं, वे ही सच्चे सजातीय रसिक संत हैं। ऐसे रसिक जनों के हृदय में तो युगल स्नेह राशि भरी ही रहती है, बाहर से भी उनके अश्रुपात, रोमांच, स्वेद आदि सात्विक भाव उनके अन्तः प्रेम का साक्ष्य देते रहते हैं। इन सहज सनेह भाव में आप कृत्रिम रसाभास की गंध भी नहीं पायेंगे। ऐसे रसिकों के संग करने से दिव्य युगल विहार भावना की स्फुरणा होने लगती है।

"ऐसे रसिक अनन्य के, सेवत मन वच पार।
अग्र सुहिय झलकात है, अद्भुत युगल विहार॥"

उपर्युक्त सत्संग से रस प्राप्ति के लिये उत्साह उमड़ता है, रस का रंग चढ़ता है। कविश्री कहते हैं कि स्नेहवंत आशिकों के हृदय के भीतर तथा बाह्य जगत में भी सर्वत्र आनन्द ही आनन्द सरसने लगता है।

"सीताराम कृपानिधि किंकर सोई है। जिनकी मति गति संत संग भल भोई है॥
तिनकी समता लायक कहूँ न कोई है। युगलानन्य दशोदिशि खुशबोई है॥

प्रेम उमंग, ११८।

"क्या मतलब अब मुझे भला जो करें खुशामद अदनों की।
महाराज से संग रंग फिरि साथ कहो क्या लदनों की॥
संत सुगुरु सतसंग मथा क्या ताके मुख दुर्वदनों की।
युगल अनन्य अमंद मोद सब तौर स्वाद सुख सदनों की॥"

श्री भक्ति कांति ८४।

❀ मूल छंद ❀

२५३—अवध विहारी रूप माधुरी माँझ मगन जे नेही हैं।
विषय वहारी बीज विकारी विरहित गुनगन गेही हैं॥
तिनही से नाता मेरा सब तौर न सक संदेही है।
युगलानन्य शरन संगी तन भंगी नीच निरेही हैं॥१७८॥

शब्दार्थः—विषयवहारी=आपात रमणीय विषयभोग। विकारी=कामादि विकारों के। गेही=निवास स्थान। भंगी द्विअर्थक=१-भंग होने वाला, नाशवान २-हलालखोर। निरे ही=निपट ही, बिल्कुल। संगी=आसक्त चित्त।

भावार्थः—रसिक रँगीले स्नेहवंत संत नित्य अयोध्या विहारीलालजू के क्षण क्षण में नवायमान होने वाली छबि छटा में भावमस्त रहते हैं। आपात रमणीय विषयभोग, काम क्रोधादि समस्त विकारों को उत्पन्न करने वाले बीज हैं। रसिक महानुभाव भोगों से अलग रहते हैं। दिव्य प्रेमदेव उनके हृदय भवन में सद्‌गुणों को जुटाकर भर देते हैं। कविश्री कहते हैं कि मेरा सब प्रकार के सम्बन्ध उन्हीं रसिक महज्जनों से है। इसमें कोई सन्देह न मानना।

कविश्री कहते हैं कि जो नाशवान अपावन स्थूल शरीर में ही आसक्त हो रहे हैं अथवा हमारे नश्वर शरीर के नातेदार निपट नीच हैं, भंगी हलालखोर समझो उन्हें।

संसृति सने समीप पलक रहि खेद है। प्रनवों परम प्रधान संत सह वेद है॥
सरस सजाती सुधी साथ सरसावते। हरि हाँ, हर हमेश वर बूंद विरह बरसावते॥
प्रे० प्र० १४६।

॥ मूल छन्द ॥

२५४—पारस परस होत जड़ कंचन लोह मोह तजि अपनो।
सो पारस लखु असत सत्य सो जाते पा रस थपनो॥
आशक असल संग पारस वसु भाँति और सब सपनो।
युगलानन्य शरन सिय पिय भजु तजु तिरगुन तम तपनो॥२३६॥

शब्दार्थः—पारस=स्पर्शमणि। परस=छूने से, स्पर्श करके। जड़=अचेतन। कंचन=सोना। मोह=शरीरासक्ति। असत=नाशवान। सत्य=स्थायी, नित्य। पा रस=रस पाकर। थपनो=स्थापित करना, दृढ़ता पूर्वक जमाना। वसु=वास करो। तम=मोहान्धकार। तपनो=त्रिताप।

भावार्थः—लोह। पारस के स्पर्श करने से, अपने लौह शरीर का मोह त्याग कर, सोना हो जाता है सही, परन्तु लौह रूप में जैसा जड़ था, सोना होने पर भी उसी भाँति जड़ ही बना रहता है। चैतन्य तो नहीं हो जाता। जैसे जड़ पदार्थ सभी नाशवान हैं, उसी भाँति जड़ पारस भी नश्वर ही है। सत्य पारस तो रसिक संत हैं।

पारस में अरु संत में, इहै भेद परमान।
वह लोहा सोना करे, यह कर आपु समान ॥

रसिक महानों के संग से दिव्य ब्रह्म रस की प्राप्ति होती है। पुनः वह रस जमता भी है उन्हीं के संग से। अतः ब्रह्म के बिहार रस की प्राप्ति होने पर भी, रस को प्रगाढ़ बना कर रस की स्थिर स्थापना के लिये भी, सच्चे रसिक आशिक के संग ही में निवास सजना चाहिये। औरों के संसर्ग से जो वस्तु मिलेगी, वह स्वप्नतुल्य असत्य होगी। कविश्री की मान्यता में श्री सीतापति की पति भाव से मानसिक सेवा करना (भजु) पारस ही है। त्रिगुणात्मक जगत में रचने पचने से मोहान्धकार एवं त्रिताप ही हाथ लगेगा। अतः इसे त्यागना चाहिये।

"पारस परस्यो नाहिं जिन, तू जनि परसै ताहि।
तासों नाते नाहिं कछु, यह रस रुचै न जाहि॥"

–श्री प्रेम चन्द्रिका।

॥ मूल छन्द ॥

२५५–बानी बिभव विलास खाश सुनि विषय वासना भूली।
योग वियोग व्यथा व्याकुल वपु कौन सहे सिर शूली॥
पाया हमने या मत परसुख ज्ञान अपर मत धूली।
युगलानन्य शरन रसिकन मिलि प्रीति वाटिका फूली॥२०४॥

शब्दार्थः—विभव विलास=भोगैश्वर्य। खाश=श्री युगल किशोर का निजी। व्याकुल=विह्वल। वपु=शरीर। शूली=सिर दर्दी। यामत=इस रसिकोचित रसपथ को। पर सुख=सर्वोपर सुख। ज्ञान अपर=ज्ञानादि।

भावार्थः—रसिक महानुभावों के संग सजने से, मुझे उनकी महावाणी रूपी सुधा पान करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्हीं से पता चला कि जानकी रमण जू के पास 'इन्द्र कोटि सत विभव विलासा" है तथा वे "गुनातीत और भोग पुरंदर" भी हैं। उनकी दिव्य भोग सामग्री शाश्वत हैं, नित्य हैं तथा परमानन्द परिणामी हैं। हम सभी उनकी भोग्या रमणी उसकी चिरंतन भोग सम्पत्ति की सहभोगिनी हैं। जब से ऐसी जानकारी हुई, तभी से लौकिक घृणित एवं शोक परिणामी विषवत् विषय लालसा से मन अनायास उपरमित हो गया। लौकिक भोग पदार्थ नश्वर हैं। उनके योग अर्थात् प्राप्ति होती है, तो कुछेक ही काल में उससे वियोग भी हो जाता है। अतः विषय भोगी का स्थूल शरीर सदैव योग वियोग के मारे व्याकुल बना रहता है। अतः उस चक्कर में पड़ कर कौन नाहक सिरदर्दी वेसाहने जाय? दिव्य भगवदीय प्रेम वाले मत मजहब में मुझे परात्पर दिव्य रसानन्द का अनुभव हुआ। इसकी तुलना में योग ज्ञानादि मत नीरस धूल के समान तुच्छ एवं त्याज्य प्रतीत होते हैं। रसिक महानुभावों से सम्पर्क बढ़ाने के प्रभाव से, मेरी प्रीति वाटिका अब गुलजार हो रही है। अर्थात् दिव्य प्रेम का महान विकाश हुआ है।

"प्रीति प्रीतम की प्यारी है। सजनी शान सनेह समुझ कुछ सब से न्यारी है॥
जहाँ तिल टिकन नहीं पावे। तहाँ जाय मन मौज सहित सुख सदन सँवारी है॥
निगम नित नेति जाहि भाषे। सोई सरस स्वाद सुषमा मिलि प्रेम प्रचारी है॥
लगी जब तक जग जन आसा। तौलौं गली भली उस रस की, हिय न विचारी है॥
कृपा बल पाय सुगम मानी। युगलानन्य शरन रसिकन के संग निहारी है॥
संं० सु० प्र०

❀ मूल छन्द ❀

२५६—संग कुसंग कुरंग अंग रसभंग तरंग न करते हैं।
सिंह सर्प विकराल काल सम मानि निरंतर डरते हैं॥
सरस सजाती सोहबत सजि सरशार ने में नहते हैं।
युगलानन्य शरन इत उत की बानी बीच न बहते हैं॥ २६१॥

शब्दार्थः—संग=साथ, हमराह। कुसंग=विषयी जीवों के साथ उठना बैठना। कुरंग=दिव्य अनुराग रंग को बिगाड़ने वाला। अंग रस=भाव, विभाव, अनुभावादि रस के अंग हैं। रसभंग=भाव का नाश। तरंग=चित्त की उमंग। सरशार फा०=ऊपर तक लबाबल भरा हुआ। बहते हैं=विचलित होते हैं। सोहबत (सुहब अ०)=सत्संग।

भावार्थः—विषयी जीवों की कुसंगति में पड़ने पर, अपने उपास्य मधुर रस के अंगों की हानि होती है। अनुराग रंग फीका पड़ जाता है। चित्त की प्रेम उमंग शिथिल पड़ जाती है। अतः हम कुसंग से बचते रहते हैं। कुसंग प्रेम तत्त्व को सिंह बनकर खा जाता है। कुसंग सर्प बनकर विषय विष चढ़ा देता है। कुसंग भयंकर काल के समान भाव का सर्वनाश करने वाला है। अतः हमें कुसंग से सर्वदा महान भय बना रहता है। अतः विषयी जीवों का कुसंग त्याग कर, हम दिव्य रस के रसिकों के संग करते हैं। इनके साथ हमारी एक जातीयता इसलिये है कि हम दोनों के उपास्य तत्त्व एक ही हैं, उनकी प्राप्ति का प्रेम मार्ग भी एक ही है, विचार भी इन्हीं से मिलता है। इनके संग से हमें नेह रस से भरा हुआ प्रेम सरोवर प्राप्त हुआ। उसी नेह सरोवर में हम सदा निमज्जन करते रहते हैं। अपने रस पथ से भिन्न चाहे कैसी भी उच्च कोटि की पारमार्थिक वार्ता हो, न उन्हें पढ़ते, न सुनते हैं। उसमें चित्त देने से अपने मार्ग से विचलित होने की संभावना रहती है।

"संत सरस वर वचनमय, पुस्तक पठन एकांत।
सावधान सह धारना, सोउ सतसंग अभ्रान्त॥
श्री प्रेम प० प्र० दोहावली।

॥ मूल छन्द ॥

२५७—मान समान महा मदिरा मद मोह मोहब्बत मानी।

कायर क्रूर कलेश काम कुल काज कलंक कहानी।
सायर सबुर सवाद सहस सतसंग साज सुख खानी।
युगलानन्य जगत जीवन जस जान जंजीर जवानी ॥१६६॥

शब्दार्थः—मान=अपने को बड़ा प्रतिष्ठित मान लेना। महामदिरा=विष। मद=अपने बड़प्पन का नशा चढ़ जाना। मोह मोहब्बत=अज्ञान से प्रेम। कायर=डरपोक। क्रूर=निकम्मा, मूर्ख। कलेस (क्लेश सं०)=कष्ट। काम=सकाम, कामना पूर्ति के निमित्त। काज=कार्य,क्रिया। सायर (सागर सं०)=समुद्र। सबुर (सबूर, सब्र अ०)=धैर्य। सवाद (स्वाद सं०)=रसानु-भूति; आनन्द। साज=मेल जोल। जंजीर=बेड़ी हथकड़ी।

भावार्थः—अपने बड़प्पन का अभिमान विष के समान परमार्थ नाशक है। अपने बड़प्पन का नशा चढ़ जाना मोह अज्ञान से दोस्ती करने के समान मूर्खता है। भोग प्राप्ति की कामना से किये गये सारे सकाम कर्म प्रेमभीरु, प्रेम देश के लिये निकम्मों के साधन कष्ट के समान हैं। यह तो प्रेम में कलंक लगाने की बात हुई। इससे बचकर रसिक महानुभावों का सत्संग सजे, तो अपार रस का आनन्दानुभव होवे, क्योंकि सत्संग तो सुखों की खान है। सत्संग से ही धैर्य का समुद्र मिलेगा। विषय उद्वेग काल में धैर्य पूर्वक अपने को सम्हाल लेना ही वैराग्य है। कविश्री की मान्यता में लौकिक भोगमय जीवन तो साधन पथ को इस प्रकार अवरुद्ध करने वाला है, मानो कर्मठ युवक के हाथ पैरों में हथकड़ी बेड़ी पहना कर उसे अकर्मण्य बना रखना है। विषयी जीव परमार्थ साधन में असमर्थ हो जाते हैं।

छठा अध्याय, निंदा श्रवण

जीव का स्वभाव होता है, अपने गुणों को ही देखना। अपनी त्रुटि, दोष, अवगुण की ओर सबकी दृष्टि नहीं जाती। अपने दोषों को जानकर, सुधारे नहीं, तब तक अन्तःकरण न शुद्ध होगा, न वहाँ प्रेम उपजेगा। निन्दक ही दोष दिखाते हैं। इस दृष्टि से निन्दक हितैषी है, न कि शत्रु।

॥ मूल छन्द ॥

२५८—महामोद उमगाय हिये निंदा रुचि सहित सुनीजे।
तामें अर्थ समर्थ मनन करि श्री गुरु ज्ञान गुनीजे॥
निज गुन विशद बड़ाई धुनि सुनि पुनि पुनि शीश धुनीजे।
युगलानन्य शरन विरहानल बीच विछेप हुनीजे ॥२७२॥

शब्दार्थ—उमगाय=बढ़ाकर। सुनीजे=सुनिये। समर्थ=योग्य। गुनीजे=विचारें। विशद=स्वच्छ। धुनीजे=पीटना चाहिये। विछेप (विक्षेप सं०)=विघ्न। हुनीजे=होवेगा। रुचि=चाह, स्वाद।

भावार्थ:—मोहांध जीव को अपनी प्रशंसा सुनना अच्छा लगता है, किन्तु निन्दा सुनकर वह बोखला उठता है। आत्म सुधार करने वाले को अपनी त्रुटियों पर, दोषों पर पैनी दृष्टि तब पड़ती है, जब वह अपने निन्दक के मुख से उन्हें सुनलें। अतः निन्दा श्रवण से मेरे आत्म सुधार की संभावना होगी, इस उद्देश्य से प्रसन्न मन से, बड़ी चाह के साथ अपनी निन्दा के एक एक अक्षर दत्तचित्त होकर सुनना चाहिये। निन्दा शब्दों के अंदर अपने अवगुणों की औषधि भरी है, आत्म सुधार की भरपूर सामग्री हाथ लग रही है आदि सुयोग्य अर्थ उनमें से विचारें। यथा "गुरु बिन होइ कि ज्ञान" उसी भाँति निन्दा शब्दों के बिना अपने दोषों का ज्ञान नहीं होता। इसके विपरीत अपनी निर्दोष प्रशंसा सुनकर, बार बार सिर धुनधुन कर पछताना चाहिये कि आज कैसा दुर्भाग्य है कि अभिमान विष चढ़ाने वाली अपनी स्तुति सुनने को मिली है। आत्म प्रशंसा सुनकर ऐसा मालूम होने लगता है कि मुझे अब सिद्धि मिल गई। मेरे कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रह गये। साधनों का फल तो है प्रियतम के साक्षात् मिलन के लिये छटपटी। उसके लिए अपने को सिद्ध समझने वाले क्यों यत्न कनने लगे? अतः विरहाग्नि संदीपन का बाधक है अत्म बड़ाई श्रवण।

'अहों धन्य गुन गन्य ते, त्रिगुन पार सुखधाम।
जिनके चित बिच नित रुचत, निज निन्दा बदनाम॥
निन्दा नेग बिवाह की, गारी प्यारी प्रान।
नेहिन को चहिये अवश, सियवर मिलन प्रधान॥
जों लौं निन्दा नगर में, करत सुमन न प्रवेश।
तौ लौं सौदा शौक प्रिय, पावत रती न लेश॥"

—निंदक विंशतिका।

॥ मूल छन्द ॥

२५६—निंदक असल अनूप पारखी परखत संत सनेही।
जे ठहरे तेहि लाल खजाने माँझ मिलावत ये ही॥
रजक समान बसन मल धोवत अमल करत युत देही।
युगलानन्य शरन निंदक के निकट वास गुन गेही॥२७१॥

शब्दार्थ:-पारखी=पहचानने वाला। परखत=जाँच बूझकर समझ लेते हैं। ठहरे=टिके, रुका रहे। लाल खजाने द्विअर्थक=१-सोना शुद्ध करने वाली लाल लाल चिनगारे की भट्टी, २-श्रीअवधलाल के प्रमदावन वाली रमणियों की राशि। रजक=धोबी। देही=जीवात्मा। गुन गेही=सद्गुणों का निधान। बसन द्विअर्थक=१-वस्त्र, २-भवन।

भावार्थ:—स्नेह सम्पत्ति के संचन एवं संरक्षण में सावधान संत जाँच बूझकर समझ लेते हैं कि दोषांधों के अवगुणों की सच्ची पहचान हमारे निन्दक को ही होती है। संतों के प्रति श्रद्धा रखने वाले सज्जन, ऐसी पहचान में निंदक की तुलना नहीं करेंगे।

निंदा सहना मानो सोने के लिये आग की लाल भट्ठी में ठहरना है। "सोना शुद्ध झलकता तब जब सहे अनल कर आँचा है।।" निंदा रूपी आग की भट्ठी में टिकने वाले विशुद्ध हृदय हो, श्रीअवध लाल की प्रमदाओं के खजाने में सम्मिलित होने पावेंगे। जैसे धोबी वस्त्र की गंदगी को धोकर, उज्जवल बना देता है, उसी भाँति निंदक, प्रभु के निवास स्थान साधक के हृदय के मल धोकर, उसे विशुद्ध बना देता है। अन्तः करण के परिष्कार के साथ जीवात्मा भी विशुद्ध हो जाता है। इस दृष्टि से निंदक के सन्निकट में रहने से ही अवगुण मिटेंगे और गुणगण के निधान हम बन पावेंगे।

"निंदक घर के निकट ही, सदन सँवारो मीत।
जहँ निशिवासर धवल धुनि, निंदा गीत अभीत।।

—श्री निंदक विंशतिका।

।। मूल छन्द ।।

२६०—निंदक सम हित मीत न कोई भली भाँति निरधारा है।
निज सुख सुकृत सुधा सम दे पुनि लेत कुविष अघभारा है।।
सिकलीगर समता साजत हरिवे हित मलिन विकारा है।
युगलानन्य शरन समुझे से पूजन योग उदारा है।।२७०।।

शब्दार्थः—हितमीत=सुहृद। भली भाँति=अच्छी प्रकार से। निरधारा=निश्चय किया है। सुकृत=पुण्य। सुधा=अमृत। अघ भारा=पाप का बोझ। सिकलीगर=तलवारादि पर शान चढ़ाने वाला। समुझे=विचारने।

भावार्थः—कविश्री अच्छी तरह से सोच विचार कर इस निश्चय पर आये हैं कि निंदक के समान अपना सच्चा हित करने वाला कोई भी मित्र न होगा।

"निंदक के पद पंकरुह, पूजहु प्रेम समेत।
सब विधि हितकारी समुझि, सानुकूल सुख खेत।।"

—श्री निंदक विंशतिका।

निंदक हमारे विष के समान सभी पाप को अपने माथे पर ले लेते हैं तथा अमृत के समान अपने भावी सुख प्रदायक पुण्यों को हमें सौंप देते हैं। भला, ऐसा हितैषी और कहाँ पाइये ?

"जन्म अनेकन ते कियो, पातक बोझ अतोल।
सो उतारि हलुको कियो, धनि निंदक अनमोल।।
निंदक दाता ईश सम, सब विधि मोहि देखात।
सुकृत दान अनुदिन करत, सपनेहु नहि अलसात।।—वही।

सिकलीगर तलवारादि लौह अस्त्रों के जंग मोर्चे आदि मलिनता को छुड़ा कर, उसे झलका कर तेज कर देता है। निंदक भी इसी के समान हमारे हृदय की मलिनता को मिटा इसे स्वच्छ बना कर झलका देता है।

"निंदक सिकलीगर सदृश, करत जवनिका नाश।
अमल अनूपम मन मुकुर, जा मधि रूप प्रकाश॥" वही।

कविश्री का अमृत उपदेश है कि विचारने पर पता लगेगा कि हमारे अघ अवगुणों को हर, कर, हमें सुकृतवान बनाने वाले परम हितैषी निंदक हमारे लिये पूज्य हैं।

"निज औगुन गुन सुमन सम्हारत सिमटत खैर खजाने।
रागद्वेष तम मेष मिटे फिर फिर जग आवन जाने॥
निंदक नेह निपुन कारन प्रिय प्रेमी सद सनमाने।
युगलानन्य चुनिंदा बिन को निंदा सुख पहिचाने॥"

—श्री निंदा विनोदाष्टक।

॥ मूल छन्द ॥

२६१—चय चिंतामनि चमक चारु चितवन चरित्र चख चहते हैं।
गुन निधान गुलशन गुलाब वर आब लाभ लय लहते हैं॥
अमल अंग नवरंग माधुरी छकि छवि रुकि रुकि रहते हैं।
युगलानन्य शरन निंदक नर नाहक भवनिधि बहते हैं॥ ८६॥

शब्दार्थः—चय=समूह। चमक चारु=मनोहर चमत्कार। चितवन चरित्र=श्री लली लाल जू के नयन विलास वाली ललित लीला। चख=ध्यान नयन से। चहते=देखते। गुलशन फा०=वाटिका। आब फा०=जल। लय=ध्यान मग्नता। नवरंग=सौन्दर्य, रूप। छवि छकि=रूपशोभा में मग्न होकर। नाहक=बेकार। भवनिधि=संसार सागर।

भावार्थः—मधुर भावाविष्ट आशिक श्री जानकी रमण जू के रूप एवं गुणगणों में आसक्त चित्त रहते हैं। अपने अन्तर्जगत में स्थित होकर कभी तो ध्यान दृष्टि से आप अपने युगल ललन की अवलोकनि लीला को देखते हैं। कभी देखते है कि "करत दोउ नयनन सों संग्राम" कभी देखते हैं—'करत दोउ नयनन सों बतियाँ। सेज भवन की ओर चलहु अब लघु लागत रतियाँ"। कभी देखते हैं="नेह नाह को निरखि नागरी नयननि में मुसुकानी॥" इत्यादि नाना भाँति की ललित लीलाएँ करती हैं युगल मनरंजन जू की चितवनि। एक चितामणि ही सारे मनोरथों को पूर्ण करने में समर्थ है। इनकी चितवनि अवलोकन में असंख्य चिंतामणि का मनोज्ञ चमत्कार भरा हुआ है। प्रियतम के अनन्तानन्त दिव्य गुणगणों को मोटा मोटी कायिक, वाचिक एवं मानसिक वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। आप के रूप, सौन्दर्य, माधुर्य, सौगन्ध्यादि कायिक गुणगणों को देखने से ऐसा लगता है कि आपके अंग अंग में प्रफुल्लित पुष्पोद्यान की शोभा सजी हो। पुष्पवाटिका से ही शीतल, सुगंधित गुलाब जल की प्राप्ति होती है। आप की वीणा विनिन्दिनी, सुधा सकुचावनी, हिय हुलसावनी, प्रेम रस अभिसिंचित, मधुरी वाणी को सुनकर ऐसा लगता है मानो तन मन को

जुड़ाने वाले गुलाब जल के फब्बारे छूट रहे हैं। इन सबों के अवलोकन से ध्यान मग्नता प्राप्त होती है। मनभावन लाल के दिव्य अंगों की सौन्दर्य माधुरी नयन पुटों से पान कर छवि का नशा चढ़ जाता है। इस मस्ती में बार बार हमें स्तम्भ दशा प्राप्त होती रहती है। इधर तो हमारी यह प्रेमोन्मत्त दशा, उधर अभागे निंदक को हमारा छिद्रान्वेषण भा रहा है। हमारा तो इनके छिन्द्र दर्शन से कुछ बिगड़ता नहीं। बिगड़ता है तो बेचारे इन्हीं का। ये व्यर्थ का जन्ममरण का चक्र मोल लेते हैं। संतनिंदा का फल भव प्रवाह में बहना ही होता है।

॥ मूल छन्द ॥

२६२—विमल बोध बल्लभ विनोद हित लोचन नित तरसाने।
सिय बल्लभ रस रहस उपासी जहर जमात न जाने॥
अवध अनूप शहर के वासी हाँसी नेक न माने।
युगलानन्य शरन पामर नर कथनी कौन प्रमाने॥ ६०॥

शब्दार्थः—विमल बोध=निरावरण प्रत्यक्ष ज्ञान। वल्लभ=अत्यन्त प्यारा। विनोद=विहार सुख। रस रहस=गोप्य ऐकान्तिक युगल विहार। जहर जमात=लौकिक भोग सामग्री। माने=परवा करते। नेक=तनक भी। पामर=खल, दुष्ट। प्रमाने=ठीक समझे।

भावार्थः—मधुर उपासक प्रेमियों के अन्तर्नयन (ध्यान चक्षु) रात दिन इस लिये तरसते हैं कि हमें दिव्य युगल विहार के प्रत्यक्ष दर्शन कैसे हों ? क्योंकि अपनी आँखों से बिना देखे प्राणवल्लभ जू की विहार लीला का निर्भ्रान्ति स्पष्ट ज्ञान नहीं होता। श्री जानकी वल्लभ लाल जू के रस रहस्य के उपासक विष के समान आत्म कल्याण के नाशक मायिक भोग पदार्थों को ऐसे भूल जाते है कि इन्हें इस की याद भी नहीं रहती। इधर तो आप की यह दिव्य दशा हो रही है, उधर सांसारिक नीच निंदक आपकी निंदा अपवाद की हँसी उड़ाने में लगे हैं। दिव्य अयोध्या के मानसिक नागरिक लौकिक उपहास की किंचित भी परवा नहीं करते। इनकी रहनि होती है—"हाथी चले बाजार, कुत्ते भुकें हजार॥" साधन अवस्था में आत्म सुधार करने में निंदा बचन से बहुत लाभ होते हैं, परन्तु रस सिद्ध दशा में प्रेम मतवालों के लिये निंदा निरर्थक प्रतीत होते हैं। सिद्ध रसिकचार्यों की आप्त महावाणी अवश्य प्रामाणिक होती हैं, परन्तु दुष्ट मनुष्यों के व्यर्थ निंदा वचन तो निरर्थक ही होते हैं। इनकी परवा कौन करे ?

* सातवाँ अध्याय, श्री धाम सेवन निष्ठा *

नित्य महल टहल पाने का सरल सुगम साधन है, श्री अवध सरयु तट का अखंड निवास। इस संदर्भ में पाठक कविश्री का इस सम्बन्ध वाला स्वानुभव भी पढ़ें।

❁ मूल छन्द ❁

२६३–मान मरोर मिजाज मोहब्बत मद मुरशिद मिलि मेटे हैं।
ख्वाहिश यार उदार प्यार पन प्रीति प्रतीति लपेटे हैं॥
लोक ओक कुल शोक फोक सम समुझि विषाद समेटे हैं।
युगलानन्य पाय प्रीतम पद श्री सरयू तट लेटे हैं॥ १४७॥

शब्दार्थः—मरोर (मरोड़)=क्रोधमिश्रित घमंड। मिजाज मोहब्बत=इश्क मिजाजी, लौकिक काम सम्बन्धिनी प्रीति। मुरशिद=सद्गुरु। पन=अनन्यव्रत। प्रतीति=विश्वास। ओक=घर। फोक=खोखला। विषाद=निराशा और निश्चेष्टता मिश्रित दुःख। उदार=मनोहर, उत्तम। लोक=संसार।

भावार्थः—कविश्री कहते हैं कि श्री सद्गुरु शरणापन्न होते ही मेरे भगवत्प्रेम बाधक इतने दुर्गुण मिट गये—१ अपने बड़प्पन का मान, २-क्रोधमिश्रित घमंड, ३-इश्क मिजाजी अर्थात् काम वासना, और ४-गर्व का नशा। अब एक मात्र अभिलाषा (ख्वाहिश) यही है कि अपने अलबेले मन-हरण प्राण प्यारे के प्रति मुझे उत्तमाप्रीति प्राप्त होवे। उस प्रीति में अनन्यता, भोग्यत्वभाव, विश्वास पूर्ण निर्भरता भी मिले (लपेटे) हों। इस संसार को मैंने समझ लिया है। यह सभी शोकों का निवास स्थल (ओक) है। यहाँ कोई भी सार वस्तु नहीं (फोंक) है। अतः इससे उदासीन होते ही मेरी भगवत्प्राप्ति विषयक निराशा, साधन शिथिलता तथा दुःख शोक (विषाद) मिट गये। (समेटे)। प्रियतम श्री जानकी रमण जू के सद्यः साक्षात्कार कराने वाले साधनों में मुझे श्री अवध सरयु तट का निवास, सब से सुगम एवं सबसे उत्तम साधन जँचा। यहाँ आते ही मुझे प्रियतम पादारविंद की प्राप्ति हुई। अपने हृदय में उन्हीं को धारण कर, अब श्री सरयू तट पर निश्चिन्त पड़े हुये हैं।

॥ मूल छन्द ॥

२६४–मन तन वचन रचन नागर गुन नाम रूप खिन खटके।
गुन गन रमन चमन चितवन सुचि सैर रंग में अटके॥
वन वन सजन खोजि घायल जित तित प्रीतम हित भटके।
युगलानन्य शरन आखिर अब वासी सरजू तट के॥ ४७॥

शब्दार्थः—रचन (रंजन)=अनुरक्त होना, चढ़ना। नागर=चतुर चूड़ामणि। खिन=क्षण। खटके=खले, चितत हो जायें। रमन=मन को आनन्दानुभव के लिये ठहराना। चमन फा०=बाग, वाटिका। चितवन=अवलोकन। सैर फा०=मन रंजन के लिये घूमाना फिरना। रंग=शोभा। सजन=प्रियतम। घायल=प्रेम का मारा।

भावार्थः—कविश्री की साधना भूमि थीं श्री घृताची कुंड (सरयू घाघरा के संगम समीप) श्री चित्रकूट, श्रीअवध के श्रीमणिपर्वत, श्रीसीताकुंड आदिक वन विभाग (उन दिनों वहाँ जंगल था)।

इन स्थलों पर किये गये अपने पूर्व साधनों का प्रस्तुत छंद में यत्किंचित निर्देश है। आप अपने मन से चतुर चूड़ामणि श्री जानकी रमण जू का अनुराग पूर्वक गुणगण चिंतन करते थे। कहते हैं कि श्री अवध की प्रथम यात्रा में आपने श्री प्रमोदवन की बड़ी कुटिया में श्री भगवद्गुण दर्पण की विशिष्ट श्रोता समाज में कथा भी कही थी। अपने वचन से प्रियतम के सुस्वादु नाम का प्रेमपूर्वक अभ्यास करते थे। अपने तन से श्रीआर्चा विग्रह की अनुरागमयी सेवा पूजा भी करते थे। इन साधनों में ऐसा अनुराग था कि क्षण मात्र का व्यवधान भी खलने लगता था। साधना के मध्य काल में आप भाव विभोर दशा में रहने लगे। कभी मन प्रियतम के गुणगण चिंतन में रमा है, तो वहीं अँटका रहता था, कभी प्रियतम के ध्यान साक्षात्कार काल में उनके चितवनि विलास के अवलोकन कर रहे हैं, तो वहीं आपके ध्यान नयन अँटके हैं। कभी श्री जानकी रमण जू का बाग विहार की शोभा देख रहे हैं, तो उसी भाव समाधि में छके रह गये। अन्त में आप की साक्षात् मिलन की विरहोत्कंठा ऐसी बढ़ी कि आप कभी श्री चित्रकूट के बनों में, कभी श्री मणिपर्वत के वन्यविभाग में, प्रियतम की खोज में कंकड़ काँटों से घायल चरण, इधर उधर भटकते फिरते थे। आप की उस प्रेमोन्मस्त दशा की झाँकी आप की निम्नोद्धृत रचना से प्राप्त होती है।

हेरो री सखि श्याम सजन को।
वन वन विरह व्यथा व्याकुल ह्वै रहस यही विरही के भजन को।
छन छन नवल नेह नूपुर धुनि सुनिये सोहावन हियरे रंजन को॥
मिले विना महबूब मिलापी हम सब को नहि काज जजन को।
युगल अनन्य पाय प्रीतम पद काहू भाँति न मीत तजन को॥"

श्री सं सु० प्र०।

श्री लक्ष्मण किला सरयू तट का निवास आप की प्रौढ़ावस्था वाली भक्ति कालीन है। साधन के अन्त में आप को श्री सरयू तट का निरतिशय सुख शान्ति दायक निवास प्राप्त हुआ। आप के श्री सरयू तट का प्रियत्व नीचे के पद में दर्शनीय है।

"सरजु तट प्यारो लागे री।
सिय श्याम सुपद सद राग भाग रस जस जिय जागे री॥
युगल किशोर चारु चिंतामनि सुमति सुहागे री।
दरसावति द्युति दिव्य तरंगिनि सुरति दिमागे री॥
परिकर निकर विराजहि जहँ तहँ प्रिय पन पागे री।
युगल अनन्य उमंग रंग मन रंच न खांगे री॥"

श्री सं० सु० प्र०।

॥ मूल छन्द ॥

२६५–श्री सरयू तट अघट प्रघट रस सुंदर वास विचारी।
मोहन मधुर मकान सान मय तिहि थल अमल अटारी॥

छायो तहाँ जहाँ नहिं रंचक विषय वासना बारी।
युगलानन्य शरन चारो दिशि चेखुश खिलि फुलवारी ॥१४८॥

शब्दार्थः—अघट=जो अन्यत्र घटित होना संभव नहीं। प्रघट=प्रकर्ष रूप से घटित होता है। मोहन=मन को मुग्ध करने वाला। मधुर=प्रियदर्शी। शानमय=भोगैश्वर्य सम्पन्न। अमल=दिव्य। अटारी=ऊपर तल्ले की कोठरी, अट्टालिका। छायो=बस गया हूँ। बारी=मोहक वाटिका। चेखुश (चिखुश फा॰)=बहुत बढ़िया।

भावार्थः—इस छन्द में कविश्री श्री सरयूतट की अपनी प्राप्ति बता रहे हैं। छन्द रचना भाव समाधि की अर्धचेतन दशा में हुई जान पड़ती है। छन्द की कुछ बातें बहिर्जगत से, कुछ अन्तर्जगत से सम्बन्ध रखती हैं। कविश्री का स्वानुभव है कि जो अनुराग रस अन्यत्र घटित होना दुर्लभ था, वह श्री सरयुतट पर प्रकर्ष करके मेरे लिये सुघटित हुआ, प्राप्त हुआ। अतः मैंने निश्चय किया कि यहाँ का निवास बड़ा ही सुन्दर रहेगा। आप जिस श्रीगुफाजी में भजन करते थे, वह थी भूमि के नीचे पक्की। द्वार श्री सरयू प्रवाह की ओर लगा था। मध्य विभाग में आप के विश्राम भवन, स्नानागार एवं सत्संग दर्शनों के दरबार थे। श्रीगुफाजी के ऊपर एक अट्टालिका बनी थी। ये सब बने थे लौकिक ईंट चूने के; किन्तु आप जैसे अपने स्वरूप को दिव्य सच्चिदानन्दमयी श्री सीता सहचरी के रूप में देखते थे, उसी भाँति ी गुफा के भी दिव्य रूप ही आप की भावसिद्ध दृष्टि में दिखाई पड़ता था। आप देखते थे कि मध्य का मणिमय महल बड़ा ही मनोहर एवं प्रियदर्शी है। वहाँ सब प्रकार के दिव्य भोग पदार्थ भरे हैं। उस स्थल पर ऊपर एक, दिव्य मणिमयी अट्टालिका बनी थी। उसी में आप का सुन्दर निवास (छायो) था। लोक की विपय वासना रूपी वाटिका ऊपर से बड़ा ही मोहक प्रतीत होती है। अतः भोले भाले लोग अनायास कहाँ फँस जाते हैं। आप के दिव्य निवास देश में उस विपय वाटिका की रँचक भी गंध नहीं थी। आप अपने निवास भवन के चारो ओर निष्कुट अर्थात् महल के निकट वर्ती वाटिका उत्तमता से प्रफुल्लित देखते थे। श्री सरयुतट वास का सुख आपकी निम्नोद्धृत महावाणी बताती हैं।

"आज हम अवध नगर सुख लीनो।
श्री सरजू जल दरस परस करि, पायो नेह नवीनो।
लालन लली रंग रस भीजे, जनन संग सुचि कीनो॥
परिपूरन पद अमल मिल्यो मन पीठ दोउ दिशि दीनो।
युगल अनन्य शरन करुना बल, छोड़ि गयो रिन तीनो॥"

श्री सं॰ सु॰ प्र॰।

॥ मूल छन्द ॥

२६६–अज हर तरफ वरफ के मानिंद हवा अजायव आवै।
जिस के परम परम के कीन्हें गुगल रूप छबि छावै॥

काम कलंक अंक घन मरदन वरधन रहस सोहावैं।
युगलानन्य शरन सब ही रितु सुखदायक दरसावैं ॥१४९॥

शब्दार्थः—अज फा०=से। हर तरफ फा०—प्रत्येक ओर। मानिंद=समान। अजायब (अजीब का बहुवचन)=विलक्षण अर्थात् मंद सुगन्ध। परम=अत्युत्तम। परस (स्पर्श स०)=शरीर में लगने से। काम कलंक=लौकिक काम विकार। अंकघन=गाढ़ा धब्बा अथवा अमिट भाग्य रेखा। मरदन=मिटाने वाला। वरधन (वर्द्धन सं०)=बढ़ाने वाला। रहस=युगल विहार दृश्य।

भावार्थः—ग्रीष्म ऋतु में श्री सरयू तट का सुख लूटिये। वहाँ श्री सरयु पुलिन विहारिणी विहारीलाल निरन्तर दिवारात्रि विचरते रहते हैं। उनके दिव्यांगों से संस्पृष्ट विलक्षण प्रभाव शालिनी हवा आप के शरीर में सभी दिशाओं से आकर लगेगी। उस सुहाती सुहाती वर्फ के समान शीतल पवन के संस्पर्श से आप के तन मन जुड़ा जायेंगे। इतना ही नहीं, ऐसे दिव्य पवन के संस्पर्श प्रभाव से आप की दृष्टि में युगल मनरंजन लाल की छवि छटा बस जायगी। लौकिक स्थूल शरीर में प्राकृतिक काम विकार की गाढ़ी कलंक कालिमा सूक्ष्म या स्थूल मात्रा में दुर्मोच रूप से बनी रहती है। इस चर्चित पवन के संस्पर्श से वह भी मिट जायगी। दिव्य युगल विहार का प्रत्यक्ष सुहावना दृश्य अधिकाधिक रूप से अनुभूत होने लगेगा। कविश्री ने श्री सरयू तट का उपर्युक्त सुख ग्रीष्मर्तु का बताया। इस से यह नहीं जानना चाहिये कि और ऋतुएँ वहाँ की प्राकृतिक लोक की भाँति कष्ट दायिनी होंगी। नहीं नहीं, "कौशल पुरी सुहावनि सरि सरजू के तीर। सब रितु सुख प्रद सो पुरी, पावस अति कमनीय ॥"

"श्री साकेत प्रताप सुमन जब भासि है। तिस ही सायत युगल सुछबि संकासि है ॥
सवल अविद्या सेन सहित की हार है। हरिहाँ, युगलानन्य एक रस तहाँ विहार है ॥"
प्रे० पृ० ७२०।

❀ मूल छन्द ❀

२६७—ज्ञान ग्रंथ बहु वाद भरे सब षट कर्मन में खटका है।
नाना पंथ अमित मत दरशक तिन में, मन नहिं अटका है ॥
जाहिर जहर जहान हान लखि तिस हित तहाँ न भटका है।
युगलानन्य राम आशक अब वासी सरजू तट का है ॥ १७५ ॥

शब्दार्थः—ज्ञान ग्रन्थ=उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और गीता। वाद=विवाद। सब षटकर्मन=योगियों के, तांत्रिकों के चतुर्वर्णों के छः छः वेद विहित भिन्नभिन्न कर्त्तव्य कर्म होते हैं। खटका=विघ्न भय। अमित=असंख्य। जाहिर जहान=मायिक संसार। जहर=विषवत् षट् विकार। हान (हानि सं०)=अनिष्ट, बुराई।

भावार्थः—वेदान्त आदि प्रस्थान त्रय में कहीं अद्वैत, कहीं विशिष्टाद्वैत आदि विभिन्न सिद्धान्तों की छाया मिलती है। इसी से इस से अनेक साम्प्रदायिक सिद्धान्त निकल पड़े हैं।

"श्रुति र्विभिन्ना स्मृति र्विभिन्ना नैको मुनिर्यस्य मतिर्न भिन्ना ।" अतः इन में वाद विवाद की पर्याप्त गुंजाइश है। 'षट मत वेद पुरान पुकारत करत वाद नरवपु वीता की ॥' इन झगड़ों में पड़ो तो सारा जीवन शास्त्रार्थ ही में नष्ट हो जायगा। षटकर्म अर्थात् छः प्रकार के वेदोदित कर्म भी अनेक प्रकार के हैं यथा ब्राह्मणों के लिये 'उञ्छं प्रतिग्रहो भिक्षा वाणिज्यं पशु पालनम्। कृषि कर्म तथा चेति षट् कर्माण्यग्रजन्मनः ॥" योगियों के षटकर्म-'धौतिर्वस्तिस्तथा नेति नौलिकी त्राटक स्तथा। कपालभातिश्चैतानि षटकर्माणि समाचरते ।" तांत्रिकों के षटकर्मः-शान्ति, वशी करण, स्तम्भन, विद्वेषन, उच्चाटन और मारण ॥" इसी भाँति और और षटकर्म हैं। इन सभी कर्मकांडों में नाना प्रकार के विघ्नों के भय बने रहते हैं। देश विदेशों में ईशाई इस्लाम, यहूदी, आदि तथा हिन्दुओं में शैव, शाक्त, वैष्णव, नाना नव कल्पित पंथाई असंख्य मत मतांतर प्रचारित हैं। इन अनन्त विचार वैभिन्यों में कौन माथापच्चीं करता रहे? यदि परमार्थ मार्ग में एक मत नहीं है, तो जगत के प्रत्यक्ष भोग सुख ही क्यों छोड़ते?

मायिक जगत के जितने भोग हैं, उनमें अध्यात्म शक्ति को नष्ट करने वाला विषवत् प्रभाव भरा है। ऐसा अनिष्ट देख कर, भोगों में भटकना बड़ा ही अनर्थकारी प्रतीत हुआ। इन सब उलझनों से बचकर, जब श्री जानकी रमण जू का स्नेहासक्त भक्त बन गया, तो हृदय में बड़ा ही सुख सरसने लगा। मधुरा भक्ति की सद्यः सिद्धि प्रदायिनी श्री सरयू तट भूमिका का जब वास सजाया, जब तो दिव्यानन्द की ऐसी आत्यन्तिक रूप में अनुभूत हुई कि अब अन्यत्र भटकने का जी ही नहीं करता।

'श्री सरयू तट बीच वास सजिये तजिये जग।
याही में कुशलात मोद अनुपम मंगल मग ॥
श्री सीतावर स्वच्छ सुजस गाइये एक रस।
युगलानन्य अनायास दंपति कीजै वस ॥"

श्री युगल विनोद विलास ॥

॥ मूल छन्द ॥

२६८-इहाँ उहाँ में भेद न रंचक वंचक भेद बतावें।
नित्य धाम अभिराम युगल श्री अवध सुकामद गावें ॥
रहस रंगीन हमेशे निर्मल सदा एक रस छावें।
युगलानन्य शरन दोऊ मधि वास करत पिय पावें ॥१४४॥

शब्दार्थः—इहाँ=श्रीअवध से तात्पर्य। उहाँ=श्री चित्रकूट। भेद=प्रभाव दृष्टि से न्यूनाधिक्य। वंचक=पाखंडी। नित्य=प्रलय, महाप्रलय में भी सदा बने रहने वाले। अभिराम=मनोहर। सुकामद=इच्छानुसार फल देने वाले श्री चित्रकूट, जहाँ श्री कामतानाथ नामक अद्भुत पहाड़ हैं। गावें=सद्ग्रन्थों में कहे गये हैं। रहस=युगल विहार। रंगीन=रास विलास के नृत्य गानादि से सम्पन्न। निर्मल=दिव्य।

भावार्थः—श्री चित्रकूट तथा श्री अयोध्या में प्रभाव दृष्टि से किंचित भी न्यूनाधिकता नहीं है। पाखंडी भले भेद बतावें, पर है नहीं। दोनों धाम अविनाशी हैं, दोनों ही अपनी अपनी दिव्य शोभा से मनोरम हैं। एक दिव्य रमणीयता एवं सम्पत्ति की अवधि अर्थात् पराकाष्ठा हैं, तो दूसरे सब प्रकार के लौकिक पारलौकिक सुमनोरथों के प्रपूरक हैं। दोनों ही दिव्य धामों में श्री मैथिली राघव जू के अखंड (एक रस) रास विलास की निरन्तर रमणीयता सरसती रहती है। कविश्री के मत से दोनों में चाहे कहीं भी वास करें, तो श्री रघुपति जी की अवश्य प्राप्ति होगी। उपर्युक्त दोनों धामों की तुलना में श्री जनकपुरी को इसलिये नहीं रखा गया कि सच्ची बात कहने पर श्रीमिथिला का प्रभाव अधिक कहना ही पड़ेगा। यहाँ प्रतिपाद्य विषय है श्री अवध प्रभाव दिखाना। प्रतिपाद्य विषय में न्यूनता अपेक्षणीय नहीं होती। हाँ, कविश्री की अन्यत्र की महावाणी तीनों धामों की महिमा अवश्य कहती हैं।

"श्री सीतापति धाम अवधमिथिला गुनों। चित्रकूट कमनीय निरखि ममता हुनो॥
तीनों धाम अनूप बीच कहे हानि है। हरिहाँ, युगलानन्य वास तिहुँ थल सुख खानि है॥"
प्रे० प्र० ७३५,

॥ मूल छन्द ॥

२६६—सब साधन फल सार सरस सियराम सनेह सोहायो।
याके परे नहीं रंचक कुछ वेद पुरानन गायो॥
लोक लाज कुल काज साज तजि इश्क स्वरूप समायो।
युगलानन्य शरन धामहि बसि परम प्रेम पद पायो॥ ३०७॥

शब्दार्थः- फलसार=मुख्य फल। सरस सनेह=शृंगार भाव वाली मधुर प्रीति। काज=लोक व्यवहार। साज=लोक व्यवहार की आनुषंगिक वस्तुएँ।

भावार्थः—श्री युगल किशोर के प्रति मधुर भाव का सुहावना सनेह प्राप्त करना सभी साधनों के फलों का मथकर निकाला हुआ फल सार है। वेद पुराणों की जानकारी में अर्थ, धर्म काम, मोक्ष आदि कोई भी साधन फल, भगवत्स्नेह से बढ़कर नहीं है। यहीं सोच समझ कर, लोक लाज को तथा लौकिक व्यवहार को सनेह प्राप्ति का बाधक मान कर त्याग दिया है। इनके त्यागने से इश्क प्राप्ति मेरे लिये सुकर हो गया। यह कुछ बना है, श्री धाम वास के प्रभाव से। श्री धाम वास से ही परम प्रेम मुझे प्राप्त हुआ।

* आठवाँ अध्याय, नामाभ्यास *

॥ मूल छन्द ॥

२७०—चटक मटक में क्या हासिल हरसायत नाहक पचते हौ।
ललन लटक में अँटक रहो क्यों खटक खराबी रचते हौ॥

कटक काम कुल विकट कतल करि नाम माँझ नहि मचते हो।
युगलानन्य असल आशक ह्वै अंतक से नहिं बचते हो ॥ ५३॥

शब्दार्थ:—चटक मटक=सिद्धाई चमत्कार, नाज नखरा। हासिल अ०=प्राप्ति। नाहक फा० अ०=अकारण। पचते=इतना परिश्रम कि शरीर क्षीण हो जाय। खटक खराबी=लोक प्रतिष्ठा आदि वस्तु। लटक=अंगों की मनोहर चेष्टा, अंगभंगी। रचते=पैदा करते। कटक=सेना, समूह। विकट=भयंकर, विशाल। करि=करने वाले। मचते=वैखरीवाणी से झड़ी लगाते। अंतक=सर्वनाश।

भावार्थ:—सिद्धाई चमत्कार प्रदर्शन से लोक रंजन, धन प्रतिष्ठा आदि पतनकारी पदार्थों की प्राप्ति भले हो जाय, किन्तु इससे भक्ति, भगवत्साक्षात्कार, रहस्य ज्ञान विवर्द्धन आदि दिव्य वस्तुओंकी प्राप्ति न हो सकेगी। अत सिद्धाई चमत्कार प्राप्त करनेके निमित्त निरन्तर रचना पचना व्यर्थहै। लोक प्रतिष्ठा बढ़ाने के यत्न में लगे रहना, परमार्थ के लिये बाधक है। चाहिंये तो यही कि ध्यान मार्ग से प्रियतम की अंग भंगी आदि मनोहारिणी अंग चेष्टाओं के सतत अवलोकन करने में लगे रहें। वैखरी वाणी में नामाभ्यास करने से कामादि विकार दलबल सहित विनष्ट हो जाते हैं, मानो उन के कतल करने के लिये श्री नाम तलवार हों।

"नाम नेह निज पाय न प्रीतम दूरि हैं। चिंतामनि चय मिले ढेर धन धूरि हैं॥
हटी अविद्या शक्ति भक्ति के जोर से। हरिहाँ युगलानन्य लग्यो दृग युगल किशोर से॥"
प्रे० प्र० २८१

"सुनो सनेही मीत नाम जो भजोगे। अनायास आनंद मिले तम तजोगे॥
सीताराम विलास रास सुख सजोगे। युगलानन्य जगत से कहूँ न लजोगे॥"
श्री प्रेम उमंग, ३६।

कविश्री हम से कहते हैं कि जीवन का साफल्य तभी होगा, जब तुम सच्चे राम आशिक बनोगे। फिर तो सर्वनाश से अनायास बच जाओगे।

नवमा अध्याय, चरित पठन श्रवण

॥ मूल छन्द ॥

२७१—श्री मद् रघुनंदन विनोद वर विशद कथा कमनीया।
सुधासार शशि सार परसमनि चिंतामनि रमनीया॥
सहज समाधि प्रकाशक शासक शोक लोक समनीया।
युगलानन्य शरन याके सम स्वाद न विवि बरनीया॥ १५४॥

शब्दार्थः—श्रीमत्=शोभा, सौन्दर्य एवं सम्पत्ति की आद्य कारणभूता श्री मैथिली जू के सहित। विनोद वर=दिव्य केलि क्रीड़ा। विशद=लोक पावनी। कमनीय=मनोरम। सुधासार=अमृत का निचोड़। शशिसार=चन्द्रमा स्थित अमृत। परसमनि=स्पर्शमणि, पारसमणि। रमणीय=मनरंजन। सहज समाधि=आनन्दमयी ध्यान मग्नता। शासक लोक शोक=जितेन्द्रियता साधक। लोक शोक=मायिक शोक दुःख। शमनीया=मिटाने वाली। बिबि=दूसरा। वरनीया=कहने योग्य।

भावार्थः—प्रस्तुत छन्द में श्रीमैथिली रघुनन्दन जू के दिव्य रास विलास की कथा की महिमा कही गई है। सच्चिदानन्द देश के परमानन्द परिणामी युगल विहार श्रवण मनन से हाड़ मांसमय शरीर से संभव काम सुख घृणित प्रतीत होता है। लौकिक भोग वासना मिटकर, अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। अतः विशद कहा गया। ऐसी कथा "सुनि मुनि गान समाधि विसारी। सादर सुनहि परम अधिकारी॥" वीतराग महर्षियों को भी समाधि सुख से अधिक दिव्यानन्द प्रदान करने वाली है। "नाथ तवानन शसि स्रवत कथा सुधा रघुवीर" रहस्य कथा तो अमृत को भी मथकर निकाला हुआ सार अमृत वत श्रवण सुखद है। "राम चरित राकेस कर" रहस्य कथा तो चन्द्र मन्थन से निकाला महा मधुर पीयूष हैं, जिसे पानकर, तन मन जुड़ाकर तीनों ताप शान्त हो जाते हैं। पारसमणि स्पर्श से कुवर्ण सुवर्ण हो जाता है। युगल विहार श्रवण घृणित स्थूल शरीर के भान बदलकर दिव्य सखी रूपके आत्म चिंतन में परिवर्तन कर देता है। चिन्तामणि मन वांछित मायिक वस्तु दे सकती है। विहार कथा दिव्य देश के मनोरथों के प्रपूरक हैं। अतः उनमें चिन्तामणि का भी मन रमने लगता है। "हर हिय राम चरित सव आये। प्रेम पुलकि लोचन जल छाये। श्रीरघुनाथ रूप उर आवा। परमानन्द अमित सुख पावा॥ मगन ध्यान रस दंड जुग" श्रीमानस वचनों से श्रीराघव जू की वाह्य कथा श्रवण से अकेले श्रीराम रूप का ध्यान सिद्ध होता है। परन्तु उनकी रहस्य कथा तो साज समाज सहित युगल विहारी की प्रेम समाधि में छकाने में समर्थ है। दिव्य देशमें मानसिक निवास करा देने से, वाह्य लौकिक भोगों से जितेन्द्रियता प्राप्त कराने वाली हैं। भावनामें दिव्य रसानन्द का सतत अनुभव करते रहने से लौकिक दुःख शोक मन में अँटने नहीं पाते। कवि श्री कहते हैं कि विशुद्धान्तःकरण वाले भावुक सज्जनों को दिव्य विहार कथा श्रवण से जो सुख स्वाद प्राप्त होता है, वह अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। अतः इसमें अनुपम स्वाद है। इसीसे तो रस साधक "अग्रस्वामि आदि रस ग्रन्थन को पाठ करें, और श्रुति पाठ हूं तो लागत कठेली हैं। र० प्र० भक्तमाल। रसिकाचार्यों की महावाणी में केवल रहस्य कथा भरी होती है। उनके अभाव में पढ़िये श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण।

❀ मूल छन्द ❀

२७२—श्रीमद्रामायन सम अद्भुत गाथा विशद न दूजी।
जेहि वर वरन श्रवन सकृतहुँ करि विषम वासना भूँजी॥
नाम रूप श्रीधाम विभव घर, मधुर मनोहर कूँजी।
युगलानन्य शरन निरखत जेहि सकल कामना पूजी॥ १५९॥

शब्दार्थ: गाथा=गाने योग्य छन्द प्रबन्धों में वर्णित चरित्र। विशद=अन्तःकरण को विशुद्ध बनाने वाली। दूजी=दूसरी। वरन=अन्दर। सकृत=सब, तुरत। विषम=दुःख परिणामी। भंजी=जल जाती है। कुंजी—ताला खोलने वाली चाभी। पूजी=पूरी हुई।

भावार्थ:—यद्यपि रामायण शब्द के व्यापक अर्थ में श्रीमानस, अध्यात्म, भुसुंड आदि अनेक रामायणों का बोध संभव है, परन्तु श्रीमद् विशेषतः वाल्मीकीय रामायण के पहले लगाने की परम्परागत प्रथा रूढ़ है। इस दृष्टि से इस मतिहीन लेखक ने भी इस संदर्भ में रामायण शब्द का श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण ही अर्थ माना है। रहस्य भावों के अधिकांश पुट भी इन्हीं श्रीरामायण में स्पष्ट शब्दों में मिलते हैं। इन श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के समान विलक्षण और स्वच्छ मेय (गानेयोग्य) काव्य और कोई नहीं है। श्रीवाल्मीकि महामुनि चरित नायकके सामयिक थे। उनके चरित्रके प्रत्यक्ष द्रष्टा थे। नाम जप के प्रभाव से अनदेख चरित्र को भी जानने की प्रज्ञा प्राप्त की थी। श्रीलवकुशजी के श्रीमुख से आदि काव्य का गान भी हुआ था। श्रीवाल्मीकीय माहात्म्य में एक एक अक्षर को महापातक नाशक बताया गया है। "एकैक मक्षरं पुंसां महापातक नाशनम्" अतः एक अक्षर भी सुन ले या पढ़ ले तो शीघ्र पाठक की दुस्त्यज विषय वासना भी जलकर भस्म हो जायगी। श्रीसीता राम नाम, श्रीसीताराम धाम इन दोनों में क्या क्या महिमा एवं प्रभाव भरे हैं, उसके ज्ञान भवन में प्रवेश करने के लिये बन्द द्वार को खोलने की श्री रामायण कुंजी हैं। यह कुंजी भी प्रिय दर्शन एवं मनोज्ञ है। कवि श्री कहते हैं कि हमारे सभी दिव्य मनोरथ इनके स्वाध्याय से पूरे हुये।

"मेरे धन सर्वस श्री रामायन।
जिन के श्रवन सकृत के कीने, प्रिय पद पर पारायन।
युगल किशोर स्वरूप माधुरी रस जस रहस सुधायन ॥
तारन तरन करन सुवरन वर वरन हरन भव भायन।
निगमागम पुरान जीवन धन रसिकन सुखद रसायन ॥
कोटिन कलप कठिन पातक तम, नासन हित दुति दायन।
निज पर रूप अनूप प्रकाशन अमल मोद मुदितायन ॥
शिव शुक शेष गनेश शारदा, विधि हरि हर गुन गायन।
युगल अनन्य शरन पूजत जेहि निसिदिन नर नारायन ॥

—सं० सु० प्र०।

❀ मूल छन्द ❀

२७३—वरन वरन सुवरन समान हिय हरन हमेश सोहावे।
करन करन मुद भरन शरन प्रद जरन जीव अपनावे ॥
तरन तरन मम तरनि अरनि सम अनल बोध प्रगटावे।
युगलानन्य शरन सीतावर गाथा छबि दरसावे ॥ २५५ ॥

शब्दार्थः—बरन बरन (वर्ण सं०)=एक एक अक्षर। सुबरन (स्वर्ण सं०)=स्वर्णाक्षरों के समान। हमेश=सदा। करन करन (कर्ण सं०)=प्रत्येक कान या इन्द्रिय में। मुद भरन=आनन्द का संचार करने वाली। शरन (शरण सं०)=आश्रय, सुरक्षा। जरन जीव=मूर्ख एवं नासमझ व्यक्तियों को भी। तरन=पार उतारने में। तरन (तरणि सं०)=नाव। तम=अज्ञानान्धकार। तरनि=सूर्य। अरनि=यज्ञार्थ घिसकर आग प्रगटाने वाली सूखी लकड़ी। बोध अनल=ज्ञानाग्नि। छबि=इष्ट स्वरूप। दरसावै=दर्शन कराती है।

भावार्थः—श्री रामायण जी के एक एक अक्षर चाहे झ र, भ, प आदि दग्धाक्षर ही क्यों न हों, मधुर मनोहर स्वर्णाक्षरों के समान सतत सुहावने एवं ललचावने लगते हैं। कान से लेकर प्रत्येक इन्द्रिय में परमानंद का संचार करने वाले हैं। श्रीरामायण अनाथों को भी आश्रय देने वाली हैं। मूर्ख से मूर्ख को भी ज्ञान दान देकर, अपना लेती हैं। संसार से उद्धार करने के लिये नाव के समान, मोहान्धकार मिटाने के लिये सूर्य के समान, ज्ञानाग्नि को रगड़ कर प्रकट कराने के लिये मंथनी काष्ट के समान हैं। "राम कथा मुनिवर बहु बरनी, ग्यान जोनि पावक जिमि अरनी॥" कविश्री की मान्यता में श्रीजानकी वर सरकार की प्रभाव शालिनी कथा, श्री जानकी कांत जू के रूप को श्रोता वक्ता के हृदय में प्रगट कराने वाली है। "हरहिय राम चरित सब आये। श्री रघुनाथ रूप उर आवा॥"

॥ मूल छन्द ॥

२७४–लागी उक्ति युक्ति जिय प्यारी श्री रामायन ही की।
देखे सुने पुरानागम मत पै लागत सब फीकी॥
मथि श्रुति संत शास्त्र सम्मत सब अनुभव अमल अमी की।
युगलानन्य शरन सरसानी दरसानी निज नीकी॥ २५४॥

शब्दार्थः—उक्ति=चमत्कारपूर्ण कथन। युक्ति=उचित विचार को चतुराई से कहना। पुरानागम=पुराण, उपपुराण, तंत्र शास्त्र एवं पंच रात्र संहिताएँ। मत=सिद्धान्त। अमी=अमृत। सरसानी=दिव्य भक्ति रस का संचार किया। दरसानीनिज=अपने स्वरूप को दिखाया। नीकी=अच्छी प्रकार से, निकाई।

भावार्थः—चमत्कारपूर्ण कथन, विचार प्रकाश चातुर्य तो अन्यत्र भी पढ़ने सुनने को मिले हैं, किन्तु जो श्री रामायण में इनके दर्शनों से प्रियत्व हुआ, वह कहीं नहीं हुआ। कविश्री ने पुराण, उपपुराण, तंत्र शास्त्र तथा संहिताएँ भी बहुत सी देखीं। इनके सिद्धान्त भी पढ़े, किन्तु श्री रामायण के प्रेम सरस मत के आगे सब फीके प्रतीत हुये। श्री रामायण रचयिता ने वेद पुराण, शास्त्र तथा संत वणियों को मंथन किया। उसमें से अपनी इष्ट चरित रूपी अमृत का अनुभव उन्हें हुआ। तब श्री राम चरित ने अपना यथार्थ स्वरूप कवि के हृदय में प्रगट किया और उनके हृदय को श्री राम प्रेम से भली भाँति सराबोर कर दिया।

सच्ची बात तो यह है कि श्री सीतारामीय रसिकानन्यों को वह पुराण नहीं पढ़ना चाहिये, वह संहिता नहीं सुननी चाहिये वह इतिहास भी तिरस्कृत समझना चाहिये, वह काव्य भी अपठनीय मानना चाहिये, जिन में अपने प्रियतम की चारु चर्चा नहीं हो।

"न तत्पुराणो नहियत्र रामः यस्यां न रामो नहि संहिता सा।
स नेतिहासो नहि यत्र रामः काव्यं न तत्स्यान्नहि यत्र रामः॥
शास्त्रं न तत्स्यान्नहि यत्र रामस्तीर्थं न तद्यत्र न रामचन्द्रः।।"

–श्री कौशल खंडे।

॥ मूल छन्द ॥

२७५–विरुद विभव वरदेश देश सविशेष सन्देश सुनाती है।
जिसका मन रूसा इस दिशि से तिस को खूब मनाती हैं॥
अजब तरह की अदा देखा के दिल अंदर सरसाती है।
युगलानन्य शरन दंपति छवि बूंद विशद बरसाती है॥ २५७॥

शब्दार्थः—विरुद=सुयश विभव=प्रभुता और ऐश्वर्य। वरदेश (वरद+ईश)=श्रीब्रह्मा, विष्णु महेशों के भी नियन्ता श्री जानकी रमण। देश=श्री अयोध्या, साकेत सविशेष (सं० सह विशेषेण)=विशिष्ट गुणगण सम्पन्न सगुण सविशेष परतम ब्रह्म। संदेश=दिव्य वार्ता। रूसा=विमुख हुआ है। अदा=हाव भाव अर्थात् वर्ण्य वस्तु उपस्थित करने की मनोज्ञ शैली। दिल अन्दर =हृदय देश के अन्तर्तम प्रदेश में। सरसाती=रस से आपूरित करती है। दंपति छवि=श्रीजानकी राघव जी की छविछटा। विशद=निर्मल,।

भावार्थः—विधि हरिहरादि वरदायक देवों के भी नियन्ता श्री जानकी रमण जू ही सगुण सविशेष परतम ब्रह्म हैं। आप के श्री साकेत देश का अन्तःपुर प्रमदावन प्रचुर रसयश एवं अनन्त भोगैश्वर्य से सम्पन्न है। वहाँ की अधिक से अधिक यथार्थ विहार वार्ता आप को श्री रामायण (श्री वाल्मीकीय एवं श्री मानस दोनों) से ही जानने को मिलेगी। श्री रामायण को ही आप दिव्य देश की संदेह वाहिनी आप्त दूती मानिये। श्री रामायण निर्दिष्ठ विहार वार्ता से पराङ्गमुख प्रारंभिक साधक को आप सामान्य मानवती नायिका मानियें, अर्द्ध सिद्ध को विरहोत्कंठिता मानिनी मानियेगा, सिद्ध पुरुष को वासक सज्जा मान गुर्विता समझियेगा। ऐसे लोग 'भजिये सदा सीता रवन" जैसे स्पष्ट शब्दों में निर्दिष्ट रहस्य लीला निरत राघव को ही भजनीय नहीं मानते।"गुणातीत अरुभोग पुरंदर" "सक्र कोटि सत विभव विलासा" आदि स्पष्ट शब्दों में दिव्य भोगासक्त विहरन शील रघुनन्दन को मधुर भाव से उपासना करके अपरिमित दिव्य रसानन्द अनुभव करने से वंचित रह जाते हैं। यदि पाठक को रसान्वेषिणी दृष्टि मिल जाय, तो श्री मानस काव्य केवल विहार वार्ता से ही परिपूर उन्हें दीखेंगे। श्री वाल्मीकीय रामायण में तो विहार वार्ता स्पष्ट रूप से है ही। स्थानाभाव से यहाँ उद्धरण नहीं किये गये। पाठक श्री सुन्दरमणि संदर्भ पढ़ें और श्रीवाल्मीकीय रामायण पढ़ने की रस दृष्टि प्राप्त करें।

श्री मानस वर्णित नगर दर्शन एवं फुलवारी लीला वर्णन कालीन जनकपुरी वा ाओं को, श्रीचित्रकूट यात्रा कालीन मार्ग वासिनी ग्राम वधूटियों के संवाद पढ़िये और श्रीमानसोक्त मधुरभाव का आनन्द लूटिये। हाँ तो, ऊपर कह रहा था कि श्रीरामायण दिव्य विहार देश से आप्त दूती बनकर आई है। रस विमुख साधक सिद्धों को मानवती नायिका समझकर उन्हें मनाने आई है। पुनः श्रीरामायण रूपी दूती नायिका अपने लोक विलक्षण हाव भाव से, वर्णन की मनोज्ञ शैली से, पाठकों के शुष्क हृदय में भी दिव्य मधुर रस का संचार कर देती है। 'लोचय चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे॥ निदरहिं सरित सिन्धु सर वारी। रूप बिन्दु जल होहिं सुखारी॥" ऐसे अनन्य उपासको को दिव्य दंपति की भोगासक्त झाँकी श्रीरामायण के रस दृष्टि से स्वाध्याय ही करा सकती है।

दशवाँ अध्याय, प्रियतम गुणगान

॥ मूल छन्द ॥

२७६—जे आशक मदमस्त खूब ले सुयश माधुरी माते हैं।
होय होय बेहोश जोश जुत गुन निधान गुन गाते हैं॥
इत उत की चरचा परचा खरचा सम सदा बहाते हैं।
युगलानन्य सुकीरति सरिता बीच विशेष नहाते हैं॥२५८॥

शब्दार्थः—मदमस्त=प्रेमोन्मत्त। सुजस माधुरी=श्रीयुगल ललन के सुयशरूपी मीठी मदिरा। माते हैं=प्रेम नशे में चूर हैं। बेहोश=भाव समाधि मग्न। जोशजुत=उत्साह पूर्वक। परचा खर्चा=बाजार से खरीदे सौदा का परचा। सुकीरति सरिता=श्रीजानकीरमणजू की सुयशरूपी सरयू प्रवाह। 'चली सुभग कविता सरिता सों। राम विमल जस जल भरिता सों॥ सरयू नाम सुमंगल मूला॥"

भावार्थः—जो श्रीराम आशिक आपको अधिक प्रेमोन्मत्त दीख पड़ें, उनके मानस का आप अनुसन्धान करें। आपको तुरत पता लग जायगा, कि इन्होंने श्रीजानकीविहारीजू की सुयशरूपी बारुणी छक कर पीली है। उसी से अनुराग नशे में चूरचूर हो रहे हैं। सुयश चिंतन से भाव समाधि में छक जाते हैं, पुनः होश होने पर; बाह्यभान होने पर, अधिकाधिक उत्साह से अनन्तानन्त गुणगण निलय श्रीजानकीरसिकजू का गुणगान करेंगे। गुणगान काल में अपने इष्ट के व्यतिरेक इधर उधर की चर्चा सुनने को मिली, तो उसे शीघ्र अपने मनसे निकालकर फेंक देंगे। बाजार से सामान खरीदकर लाये हुए नौकर से आप पर्चे पर क्रीतवस्तुओं की सूची देख लेते। पुनः सामान ठीक आया हुआ जानकर, उस पर्चे को फेंक देते हैं। वही दशा आशिकों की सुनी हुई

वाह्य चर्चाओं की होती है। आशिकों को मज्जन अवगाहन करना होता है तो अपने प्रियतम के सुकीर्ति रूपी सरयू सरिता में ही गोते लगाते हैं। अर्थात् कीर्ति चिंतन में ही ध्यान मग्न हो जाते हैं।

'प्रथम श्रवन रुचि त्यागि सुने धुनि नाम को। रोम रोम ह्वै मगन गुने गुन राम को॥
निकट निहारत रहे जानकी जानि को। हरिहाँ, तब उपजे परप्रेम क्षेम मुद खानि को॥

श्री प्रेमप्रकाश, ४१।

❀ मूल छन्द ❀

२७७—कला कमाल कबूल कुदरती कीमत कहन न आवे
कायम करन करीम मेहर मुरशिद मकसूद बरावे॥
वदबखती सखती मुशकिल आसान पलक में पावै।
युगलानन्य शरन सीतावर सुजस सर्वदा गावै॥ १५०॥

शब्दार्थः—कला=वुद्धि चातुर्य, कर्म कौशल। कमाल अ०=सर्वोत्तम। कबूल अ०=स्वीकृत, प्राप्त। कुदरती अ० (कुद्रती अ०)=ईश्वरीय, दैवी। कीमत अ०=महत्त्व। कायम (काइम अ०) =स्थिर, दृढ़। करम फा०=कृपा। करीम अ०=दयामय ईश्वर। मेहर (मेह्र फा०)=प्यार, करुणा। मुरशिद=गुरुदेव। मकसूद (मक्सूद अ० =मनोरथ, लक्ष्य। बरावे=बचा कर रक्षा करे। वदवख्ती अ०=दुर्भाग्य,। सखती (सख्ती फा०)=कठिन, दुर्घट। मुश्किल अ०=दुष्कर।

भावार्थः—श्री जानकी रमण जू के यशो गान का प्रभाव कहते हुये कविश्री कहते हैं कि श्री सुयश की महिमा (कीमत) कहते नहीं बनती। सुयश गायक को सर्वोत्तम दैवी कर्म कौशल प्राप्त हो जाता है। सुयश गायक पर दयामय प्रभु की स्थायी कृपा बनी रहती है। वह कृपा उसे प्रेम-प्राप्ति वाले लक्ष्य तक पहुँचा देती हैं। पुनः श्री गुरु कृपा उसे दुर्भाग्य से बचाती है। दुष्कर कार्य उस के लिये सुकर हो जाता है। जो वर्षों के साधन से भी दुष्प्राप्य थे, वह सुयश गायक को क्षण मात्र में मिल जाते हैं। ऐसा विचार कर, श्री युगल किशोर के अनन्य शरणागत श्री जानकी वर जू के सुयश का सर्वदा गान करते हैं।

❀ मूल छन्द ❀

२७८—दरिद दरद तिमिर भय संकट व्यंकट रहन न पावै।
परमानंद द्वंद मायागत अविगति गति दरसावै॥
अंतराय की गंध संधिहूँ सपनेहु नहिं सरसावै।
युगलानन्य शरन चितामनि गुन अनूप छवि छावै॥ १३७

शब्दार्थः—दारिद=मोह रूपी दरिद्रता। दरद=कष्ट। तिमिर=अन्धकार। व्यंकट=विपत्ति। द्वंद=दो परस्पर विरुद्ध वस्तुओं का जोड़ा यथा-शोकमोह, शीत उष्ण, आदि। मायागत =मायिक अविगति=दुष्प्रवेश। गति=पहुँच। अन्तराय=विघ्न बाधा। गंध=लेश मात्र। संधिहू=संयोग। छवि=शोभा।

भावार्थः—श्री जानकी रमण जू के गुणगान की महिमा एवं प्रभाव लोक विलक्षण है। मोह दरिद्रता हृदय को दग्ध करती रहती है। उसके लिये "कामद घन दारिद दवारि के" हैं। गुणगान वाले को कोई भी मायिक कष्ट व्यथित नहीं कर सकता' मोहतम के लिये प्रभु गुण-"हरन मोहतम दिनकर कर से" हैं। उन्हें कोई भय नहीं सताता। उनके विरत्ति संकट के लिये "समन सकल संताप शोक के" हैं। श्री गुणगण परमानद प्रदायक हैं। "मम गुन ग्राम नाम रत, गत ममता मदमोह। ताकर सुख सोइ जानई परानंद संदोह ॥" मायिक शीत उष्ण आदि द्वंद दुख मिट जाते हैं। "कुपथ कुरतक कुचालि कलि, कपट दंभ पाखंड। दहन राम गुन ग्राम जिमि, ईंधन अनल प्रचंड ॥" श्री गुणगान से दुष्प्रवेश देश में मन से अनायास पहुँच जाते हैं। प्रभु गुण गान करने वाले के साधन पथ में कोई भी विघ्न वाधा स्वप्न में भी नहीं उपस्थित हो सकती। 'चिंतामनि गुनग्राम राम के ॥' इन के प्रभाव से श्री जानकी रमण जू का अनूप रूप गायक के हृदय में वस जाता है।

॥ मूल छन्द ॥

२७६—मैं मुकीम मसतान मोहब्बत सोहबत सरस समाये हैं।
दोउ दिशि तें दृग मूँदि भली विधि कला कमाल कमाये हैं ॥
दिलवर सुगुन गली दाखिल दिल दुविधा दरद दवाये हैं।
युगलानन्य शरन दौलत दुशवार इश्क से पाये हैं ॥ २२६॥ ॥

शब्दार्थः—मुकीम अ०=थोड़े दिनों के लिये संसार में ठहरा हुआ, सफर में मुकाम बनाने वाले। सोहबत (सुह्‌बत अ०)=सतसंग। सरस=रसिक संतों का। दोउदिशि=लोक परलोक। दृग मूंदि =अचाही होकर। कमाये=प्राप्त किया। दिलवर=हृदय रमण। दाखिल अ०=अंदर पहुँचा हुआ। दिल=मन। दुविधा=संशय। दौलत अ०=सम्पत्ति। दुशवार (दुश्‌वार फा०)=दुर्लभ।

भावार्थः—श्री जानकी वल्लभ जू के गुण एवं इश्क दोनों में अन्योन्याश्रय संबंध है। गुणगान से प्रेम प्राप्त होता है—"जननि जनक सियराम प्रेम के ॥" इश्क से गुणगणों का परिज्ञान होता है "युगलानन्य शरन दौतल दुशवार इश्क से पाये हैं।" कविश्री कहते हैं कि मैं तो दिव्यविहार देश के नेह नगर का नागरिक हूँ। पथिक वन कर संसार में सफर करने के लिये आया था। थोड़े दिनों के लिये यहाँ मुकाम बनाया है। मैं तो अपने अनादि सिद्ध प्रियतम प्रेम में उन्मत्त हूँ। रसिक संतों का समागम पाकर, उसी में मग्न हूँ। न तो मुझे लोक सुख की चाह है, न परलोक के सुखों की। दोनों ओर से अच्छी तरह आँखे बंद कर ली हैं। उभय लोकों के सुखों की ओर आँखे उठा कर ताकना भी नहीं चाहता। मुझे श्री इश्क देव ने एक सर्वोत्तम कर्मकौशल प्रदान किया है। उसी के सहारे अपने मनरंजन लाल के सुन्दर गुणगण रूपी गली में मन प्रविष्ट हो पाया है। मेरे सारे संशय कष्ट मिट गये। गुणगण परिज्ञान को मैं दुर्लभ संपत्ति मानता हूँ। इसे इश्क देव ने कृपा पूर्वक दिया है।

* ग्यारहवाँ अध्याय, इष्ट रूपासक्ति *

॥ मूल छन्द ॥

२८०—श्री रसिकेश बँकाई नखशिख छके छकाये बाँके हैं।
ज्ञान ध्यान धारना धवल निज रूप माझ ही ताके हैं॥
नाम रूप गुन धाम सजाती संग रंग से ढाँके हैं।
युगलानन्य शरन सब मत से भली भाँति ही थाके हैं॥ ६३ ॥

शब्दार्थः श्री=श्री मैथिली जू के सहित। रसिकेश=रसिक शिरोमणि श्री जानकी रमण जू। बँकाई=रूप शोभा। छके=परिपूर्ण हुये, नशे में चूर हुये। बाँके=उत्साह सम्पन्न। ध्यान=रूप चिंतन। धारणा=चितवृत्ति को ध्येय में अँटकाना। धवल=स्वच्छ। थाके=छोड़ बैठे।

भावार्थः—साधन निष्ठ ग्राशिकों के लक्षण बताते हुये कहते हैं कि इष्ट रूपासक्त ग्राशिक श्री सिया स्वामिनी सहित रसिक शिरोमणि श्री राघव छयल की नखशिख रूप शोभा अवलोकन करते करते स्वयं भी ध्यान मग्न हो जाते तथा अन्तःकरण समेत अपने शरीर की सारी इन्द्रियों को भी उसी ध्यान में लय कर देते हैं। रूप दर्शनों के उत्साही जो हैं! ज्ञानियों का ज्ञान तथा योगियों की ध्यान धारणा, ग्राशिक अपने इष्ट रूप की ध्यान मग्नता को ही समझते हैं। अपने इष्ट के श्री सीता राम नाम ही अनन्य भाव से जपेंगे। श्री मैथिली राघव ही स्वरूप का अर्चन ध्यान करेंगे। अपने ही इष्ट के गुणगणों का कथन श्रवण, चिंतन करेंगे। अपने इष्ट धाम ही को सेव्य ध्येय धाम मानेंगे। इन विचारों से जिन साधक का मत मिलता है, वे ही सच्चे सजातीय संत हैं। उन्हीं के संग से इष्ट के प्रति प्रेम रंग चढ़ता है और सर्वांग पूर्ण होता है। अनन्य उपासना से ही प्रेम प्राप्ति करना, इन का मत मजहब है। इस से भिन्न मत मतांतर को तिलांजलि दिये रहते हैं॥

॥ मूल छन्द ॥

२८१—कनक कामिनी तरफ न ताके ढाँके हृदे हमेशे हैं।
अवध किशोर छैल छबि छाके बाँके विशद विशेषे हैं॥
हाजिर रहे यार के सनमुख हरदम कमर कसे से हैं।
युगलानन्य शरन सोई सिरमौर संत सुख लेषे हैं॥ १७३ ॥

शब्दार्थः—कनक=सोना अर्थात् मायिक धन संपत्ति। कामिनी=काम सुख प्रयोजन वती रमणी। ढाँके=ढक्कन से छिपाना। हृदे (हृदय)=यहाँ वासना से तात्पर्य। छाके=ध्यान मग्न। बाँके=उत्साही। यार=प्रियतम श्री जानकी रमण। कमर कसना=तत्पर रहना। लेषे (लखे)=समझे हैं।

भावार्थः —साधन तत्पर ग्राशिक के लक्षण बताते हुये कविश्री कहते हैं कि सच्चे साधक में

ऐसा तीव्र वैराग्य होना चाहिये कि वह मायिक धन तथा रूपवती तरुणी की ओर आँख उठा कर ताके भी नहीं। अपनी वासना को निरंतर दवाये (ढाँके) रहे। श्री अवध किशोर छयल छवीले की रूप शोभा में ध्यान मग्न रहे। रूपावेश की खुमारी सदैव चढ़ी रहनी चाहिये। भावना जगत में स्थिर होकर, अपने प्यारे की सेवा में तत्पर होने के लिये प्रियतम के सामने सदैव उपस्थित रहे। कविश्री की मान्यता में वह साधक संत शिरोमणि के भोग्य सेवा सुखों को समझ सकेगा।

२८२—वाकिफकार यार के घर क्यों काफिर वचन विचारे।
साफ सरस अंतर बाहर से मलिन मुराद न धारे॥
सनमुख हाजिर रहे पलक तजि इत अत सें नित हारे।
युगलानन्य शरन सीतावर ऊपर सब सुख वारे॥ १७७॥

शब्दार्थः—वाकिफकार (वाकिफेकार अ० फा०)=सेवाकार्य का जानकार। यार के घर= श्री अयोध्या विहारी के कनक महल। काफिर=यार के कृपादान का कृतघ्न। मलिन=दूषित। मुराद अ०=अभिलाषा। हारे=निराश होकर छोड़ दे। (मूल प्रति में "वाकिफ यार कार" पाठ लेख प्रमाद से है, शुद्ध पाठ हमने दिया है)

भावार्थः—जो प्रियतम के विहार स्थल श्री कनक महल की सरस सेवा का जानकर है, वह शील सनेह निधान श्री मैथिली जीवन प्राण के अनन्त सुखदान के प्रति कृतघ्न होने की बात कैसे विचार सकता है? ऐसे साधक अपने बाह्य शरीर को आचार विचार से शुद्ध रखते हैं तथा अन्तः करण को विषय वासना को हटाकर शुद्ध बनाये रहते हैं। उनके मन में दूषित कामना एवं वासना टिक नहीं सकती। निर्निमेष दृष्टि से प्रियतम की मुख छवि को अवलोकन करते हुये, सेवा में समुपस्थित रहते हैं। उनसे भिन्न सभी चीजों को तृण त्यागे रहते हैं। कबिश्री कहते हैं कि ऐसे प्रियतम सुख प्रयोजनवान अपने सारे स्वसुखों के श्री जानकीकांत पर निछावर कर देते हैं॥

बारहवाँ अध्याय, विनय निवेदन

॥ मूल छन्द ॥

२८३—अय खुश रंग रूप रस वरधन मरदन मदन गरूरी।
बाँकी चाल चमत्कारी चित चितवन मद मखमूरी॥
अजब तरह की अदा सलोनी फिदा चारु चख चूरी।
युगलानन्य शरन आशक हित असल सजीवन मूरी॥ २२६॥

शब्दार्थः—खुशरंग फा०=मन हरण अंगवरण। रस=कामोद्वेग। वरधन (वर्द्धन सं०)= बढ़ाने वाले। मरदन (मर्दन सं०)=नष्ट करने वाले। मदन=कामदेव। गरूरी अ०=रूपाभिमान

बाँकी चाल=मनोज्ञ चलन। मखमूरी= (मख्मूरी अ०)=नशे में चूर। अदा=हावभाव. फिदा अ० आसक्त, न्यौछावर।

भावार्थः--अहो अति मनहरण अंग वरण वाले श्यामले सलोने प्यारे! आपके रूप में जादू है कि टोना? आपके रूप अवलोकन करते ही दर्शक, नायिका भावाभिष्ट होकर, काम विह्वल हो जाते हैं। दंडकारण्य वासी जितेन्द्रिय ऋषियों की जब ऐसी दशा हुई, तब औरों के लिये क्या कहा जाय? (देखिये पिछले पृ० १३१ का निचला श्लोक) सूर्पनखा की कथा मानस प्रसिद्ध है ही। पुनः आपके रूप देख कर काम का भी रूप गुमान मिट जाता है॥

'सखि! रघुनाथ रूप निहारु।
सरद बिधु रबिसुवन मनसिज मान भंजनि हारु।
स्याम सुभग सरीर जन-मन-काम-पूरन हारु॥''

श्री गीतावली ७/८

काम पूरन हारु का तात्पर्य काम विकार उपजा कर मदन मनोरथ पूरक हैं। आप की अनोखी चलन दर्शकों के चित्त में चमत्कार पूर्ण प्रभाव डालती है। (देखिये पृ० १७३ छबीली चमक चाल न्यारी, पृ० ११६ क्या अजब चाल अलबेले का "....")। आप की चितवनि रूप मद से मदमस्त रहती है तथा आप की चितवनि अवलोकन करने वाले नेह नशे में चूर हो जाते हैं। आप के हाव भाव कुछ ऐसे विलक्षण हैं कि दर्शकों के नयन मद विह्वल होकर आप में आसक्त हो जाते हैं। कविश्री कहते हैं, विरही आशिकों के लिये आप सच्चे प्राण संजीवनी बूटी है। दर्शन करते ही मरणासन्न के प्राण पलट आते हैं।

❀ मूल छन्द ❀

२८४-अय महबूब माहरू रौशन जौशन दस्त सजा ले।
गूनागून गुलाबी गुलशन तिस का आज मजा ले॥
मेवा मधुर मोरब्बा माखन निमकी गरम गजा ले।
युगलानन्य शरन साबित रस जस की घड़ी बजा ले॥ १२१॥

शब्दार्थः--महबूब अ० =बहुत अधिक प्यारे। माहरू फा०=चन्द्र वदन। रौशन अ०= दीप्त, उज्ज्वल। जौशन फा०=कवच, भुजभूषण। दस्त फा०=हाथ। गूनागून फा०=रंग बिरंगी, चित्रविचित्र। गुलशन फा०=वाटिका। मजा (मज:)=स्वाद, आनंद। साबित=सच्चा।

भावार्थः---मदनातुरा कामिनी अपने प्राण प्यारे श्री रघुराज दुलारे से मदन मनोरथ पूर्ति के लिये अनुनय विनय कर रही है। हे चन्द्रोज्ज्वल मुख श्री वाले प्रियतम, आइये, मुझे भुजपाश में बाँध लीजिये। आप की भुजा को जौशन नामक भूषण धारण करने का सुख होगा। कामिनी के कमल अंग पुष्पराज गुलाब से उपमित होते हैं। अतः रमणी विग्रह ही मानो गुलाब की वाटिका है। उसका आनन्द लेने के लिये नायक को आमंत्रण है। मेवा, मोरब्बा, माखन, निमकी आदि रमणी के

रसल अंगों की उपमाएँ हैं। स्पष्ट अर्थ करने में ग्राम्यदोष का भय है। अधिकारी को अर्थ बताया जा सकता है। कविश्री प्यारे से कहते हैं कि—"मदन मनोरथ पूरि के जस क्यों नहिं लेत" हे सच्चे अर्थ में रसिकराज शिरताज! आज इस गुलाब वाटिका में विहार करने से सम्पूर्ण साकेत प्रमदावन में आपका रसयश फैल जायगा। अपने सुयश गान की आनन्द वधाई बजवा लीजिये।

❁ मूल छन्द ❁

२८५– खुशी समेत हमेश मोद रस निलय बसो दृग मेरे।
मैं मुशताक ताक में हरदम खबर जबर नहिं जेरे॥
जैसी वजह तरह सें कातिल वसल तैसे ही दे रे।
युगलानन्यशरन अय प्रीतम मिलिये आज सवेरे॥१६६॥

शब्दार्थः—मोद रस=प्रेमानन्द। निलय=निधान। मुशताक (मुश्ताक अ०)=विरहोत्कंठित। ताक=प्रतीक्षा। जबर नहिं जेरे (जेर जबर फा०)=नीचे ऊपर, कमजोर बलवान। वजह=कारण। वसल (वस्ल अ०)=प्रेमी प्रेमिका का संयोग, मिलन।

भावार्थः—हे प्रेमानन्द सदन प्यारे, आप सुख पूर्वक मेरे नयन निकुञ्ज में निरन्तर निवास कीजिये। मैं विरहोत्कंठिता हूँ। आपकी प्रतीक्षा में आपके आगमन मार्ग पर पलक पाँवड़े बिछाकर बैठी हूँ। इस मिलनातुरता में मुझे इधर उधर की कोई भी सुधि नहीं है। हे मुझे जख्मी बनानें वाले! जिस कारण से, जिस प्रकार से बने आज तो मिलना ही होगा आपको। मिलने में देर करियेगा तो यहाँ आने पर, आपको यही सुनने को मिलेगा कि एक राघव दर्शनातुरा, उनके विरह में यहीं छटपटा-कर अभी मर गई है। अतः मरने के पहले सवेरे आज ही आकर गले लगा जाइये।

"जानकीवर प्रान पियारे।
बसो रसो दिल दृगन निरंतर, पलक परत हिय हाय हजारे।
सकल लाह उत्साह चाह चित छबि चितवत छनछन सुकुमारे॥
लोक अशेष शोक संकुल लखि चखि रस रहस सुमन मतिवारे।
युगल अनन्य अली सिय पिय बिनु रुचत न ज्ञान ध्यान श्रमधारे॥"

—रूप रहस्य पदावली २१६।

❁ मूल छन्द ❁

२८६– बार बार वरदान मान अभिमान हीन चित चाहें।
सिय वल्लभ निज जानि मोहि सुचि शौक इश्क निर्वाहें॥
किस हीं सें मतलब न रहे दिलदार दरस दिल आहें।
युगलानन्यशरन पयान मम निशदिन नेह सुराहें॥३०६॥

शब्दार्थः- मान=अपनी साधुता के महत्त्व का। अभिमान=पुरुषार्थ का। शौक=उत्साह। चाहे=दर्शनोत्कंठा। रवान=अग्रसर होते रहें। सुराहे=राजमार्ग पर।

भावार्थः—कविश्री के चित्त वार वार वर माँगते हैं। माँगने में न तो आपको अपनी प्रतिष्ठा नाश की परवा है, न पुरुषार्थाभिमान मिटने की। श्रीजानकीवल्लभ लालजी मुझे अपना मान कर, मेरे इश्क प्राप्ति के लिये जो पावन उत्साह है, उसको बनाये रखें।

तुलसी जप तप नेम व्रत, सब सबही ते होय।
नेह निबाहब एक रस, ये जन बिरले कोय॥

हमने लोक सम्बन्ध बहुत जोड़े-"जोरे नये नाते नेह फोकट फीके। देह के दाहक गाहक जीके॥" (श्री विनय पत्रिका) अतः मुझे अब लौकिक नातेदारों से कोई प्रयोजन नहीं रह गया। एकमात्र अपने मनरंजनलाल के दर्शनों की हृदय में चटपटी बनी है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये प्रेमपंथ पर हमारी यात्रा नित्य अग्रसर होती रहे, ऐसी आप कृपा कर दीजिये।

"सजावो जिय जौक थियरवा।
प्रेम पंथ गुन ग्रंथ पढ़ाइये, प्रीतम प्यार विहरवा॥
दरसाइये दुति अंग रंग निधि उज्ज्वल रहस बहरवा।
युगलअनन्य अली बहराइये, मनसिज विमल वियरवा॥"
—श्री रूप रहस्य पदावली, २१७।

॥ मूल छन्द ॥

२८७— लीजै खैंचि मुझे प्यारे अब बहवे की नहि ताकत।
बहुत रोज से बहता आया महामोह मद छाकत॥
सब से जान पछान किया पर भया न एक शराकत।
युगलानन्यशरन से कीजे दिलबर आप रिफाकत॥१०५॥

शब्दार्थः—ताकत अ०=सामर्थ्य। महामोह=मायिक भोग सुखों की इच्छा। मद=नशे। छाकत=चूर होकर। शराकत उ०=भागीदार। रिफाकत अ०=मित्रता।

भावार्थः—प्राण प्यारे! अब तो भव समुद्र से कृपया मुझे खींचकर निकाल लीजिये। अब बहने की शक्ति सामर्थ्य भी नहीं रह गई। भोगेच्छा के नशे में चूर होकर युगों से भवसिन्धु में बहता आ रहा हूँ। संसार के बहुत जनों से इस आशा से जान पहचान बढ़ाई कि कोई मेरे दुःख संताप के साझीदार तो बनें। पर देखा कि ये संसारी नातेदार अपने स्वार्थ के यार हैं, मेरे कष्ट को बँटाने वाला कोई नहीं। अकेले मुझे ही भोगना है। अतः स्वार्थ के संगियों से नेहनाता तोड़कर आया हूँ। आपही को अपना सच्चा सुहृद पाया है। मुझसे आपही मित्रता कर लीजिये।

॥ मूल छन्द ॥

२८८—गाफिल गफलत गुनन बीच गुमराह भया मन मेरा।
आप हमेशे खुले खुशीसर सार न कछु भव घेरा॥

जान मुझे नाचीज कमजरफ नहिं निज नैनन हेरा।
युगलानन्य शरन को केवल आश भरोसा तेरा ॥ १७१॥

शब्दार्थः—गाफिल अ० = असावधान, काहिल। गफलत (गफलत अ०) = भूल। गुनन = माया के रज, तम, सत गुणों में। गुमराह फा० = पथभ्रष्ट। खुले = मायायुक्त। खुशीसर = उत्तम विचार वाले। नाचीज फा० = निकम्मा। कमजरफ (कमजर्फ फा० अ०) = तुच्छ, कमीना।

भावार्थः—माया के तीनों गुणों में भूलकर मैं तो निकम्मा हो गया हूँ। अतः आपके प्रेम पथ से मेरा मन विचलित हो गया है। परन्तु मेरे सुहृद, प्राण सखे! आप तो माया मुक्त हैं। आपके विचार भी उत्तम हैं।

आपके समान समर्थ हितैषी को तो मुझे भवघेरे से निकालना चाहिये था। आप कहें कि तुम्हें वहाँ सुख हो रहा होगा, इसी आशा से वहाँ छोड़ दिया था। तो प्यारे, मुझे इस संसार में कोई वस्तु भी सार नहीं मिली। सारे मायिक सुखों में धोखे भर पाये। अब मैं समझ गया। आपने सोचा होगा कि ऐसे निकम्मे और तुच्छ की कौन परवा करे? इसीसे तो मेरी ओर कृपा दृष्टि नहीं फेरी। परन्तु आपको यह तो विचारना चाहिये कि मेरे लिये एकमात्र आपही की आशा है और आपही का भरोसा भी है। जब कभी मर्जी हो, उबारना आपही को होगा और मेरा सहारा दूसरा कौन है?

> बिसरन लायक कृपाकर, अब नहिं युगल अनन्य।
> केवल करुनाकोश पद, प्रबल भरोस न अन्य॥
> प्रबल भरोस न अन्य, धन्य मानत प्रभु दिसि लखि।
> मन मति करन समेत आस अन्तर राउर रखि॥
> कीजे मम मन सदन सीय सह धरि धनु सायक।
> हौं पद पंकज दास नहीं अब बिसरन लायक॥

श्रीविनय विहार, ३४१।

❀ मूल छन्द ❀

२८६—मुझे किया बदनाम दीन दुनिये में अजब तमाशा है।
खुशी करेंदा आप महल में देंदा नहीं दिलासा है॥
जों कबही अरजी गरजी होय लिखों जवाब न आसा है।
युगलानन्य याद में तेरे पानी बीच बतासा है॥ २२७॥

शब्दार्थः—दीन फा० = सम्प्रदाय। दुनिये = लोक समाज। तमाशा = कौतुक। करेंदा पं० = करते हैं। देंदा पं० = देते हैं। दिलासा = सान्त्वना। अरजी (अर्जी अ०) = प्रार्थना पत्र। गरजी अ० = इच्छुक बनकर।

भावार्थः—कौतुकी प्राणनाथ! मैं आपके प्रेम में दीवानी होने के कारण किसी के प्रयोजन

साधक नहीं रह गई। अतः क्या अपने साम्प्रदापायिक समाज में, क्या लोक समाज में, सर्वत्र बदनाम कर दिया। आप का यह कौतुक बड़ा ही विचित्र है। आप तो अपने भोग सम्पत्ति से समृद्ध-मान कनक महल में मौज लूट रहे हैं और मुझे अपने विरह में तड़पते हुये देख कर, सान्त्वना देने भी नहीं आते। कभी अधिक दर्शनेच्छु बन कर, प्रार्थना पत्र भी लिख भेजूं, तो आप को लापरवाही देख कर, पत्रोत्तर पाने की आशा भी नहीं रही। अब तो मेरी विरहातुर दशा ऐसी हो रही है कि दिनानुदिन आपकी याद में घुल घुल कर पानी में पड़े बतासे की भाँति गलती जा रही हूँ॥

* छठा खंड, बाधक प्रकाश *

॥ पहला अध्याय, वासना ॥

॥ मूल छन्द ॥

२९०—पहिरि प्रतिष्ठा पट पटु प्रीतम प्रीति प्रतीति प्रहारी है।
पानिप परम पवित्र प्रानपति प्रलय प्रसू पद प्यारी है॥
पाहन पवि पचि पोच प्रपंची पंच पनाह पुकारी है।
युगलानन्य शरन पलपल पर पीड़त पथिक पसारी है॥ १०७॥

शब्दार्थः—पट = वस्त्र। पटु = प्रवीण। प्रहारी = नाशक। पानिप = शोभा। प्रलय = सर्वनाश। प्रसू = जननी। प्यारी = प्रियतम की प्रेयसी। पाहन = पत्थर के समान कठोर हृदय। पवि = वज्र। पचि = जड़कर। पोच = नीच। प्रपंची = विश्वप्रपंच में फँसा हुआ। पंच = पाँच भौतिक जगत। पनाह = शरणागति। पसारी = जगत पसारे में उलझा हुआ।

भावार्थः—हमारे प्रियतम श्री अवधकिशोर प्रीति प्रतीति के परम प्रवीण पा रखी हैं। इधर हमने जगत प्रतिष्ठा की चाह रूपी वस्त्र पहन लिया है। यह लोक वासना तो प्रियतम प्रीति प्रतीति को नष्ट करने वाली है। हमें अपने प्राणनाथ जी की प्रेयसी का पद प्राप्त करना है। वह पद शोभा सम्पन्न एवं परम पावन है। लोक प्रतिष्ठा उसके विनाश की जननी है अर्थात् नाश करने वाली है। एक तो अपना हृदय ही पत्थर के समान कठोर है। उस में प्रतिष्ठा चाहना रूपी वज्र भी जड़ लिया है। ऐसे प्रपंच प्रिय हो गये कि सर्व समर्थ अपने शरण्य प्राण पति को छोड़ कर नश्वर पांच भौतिक माया की शरण के लिये पुकार मचाये हुये हैं। यही कारण है कि जगत के पसारे में फँसा हुआ हम जैसा प्रेम पथ का पथिक क्षण क्षण में अनेकों कष्टों से पीड़ित हो रहा है।

॥ मूल छन्द ॥

२९१—दरदिल दाग दिमाग बाग गुल हरन अजूब असीरी।
एक इमारत आरत हित निज दूजे देश जगीरी॥

तीजे संग रंग वामा पुनि जानु तुरीय श्रमीरी।
युगलानन्य चारित्यागे बिन मुशकिल महल फकीरी ॥ १२३ ॥

शब्दार्थः – दरदिल=हृदय के भीतर। दाग=कलंक। दिमाग=मानसी पुष्प वाटिका। असीरी अ०=कैद खाना। इमारत अ०=मकान, कोठी। आरतहित=विपत्ति बुलाने वाला। जगीरी (जागीरी फा०)=जमीन जायदाद। संग रंग=भोग विलास। वामा=सुन्दरी स्त्री। तुरीय=चौथी। अमीरी अ०=धनाठ्यता।

भावार्थः—निम्नांकित चार प्रकार की वासनाएँ आशिकों के हृदय में कलंक कालिमा पोतने वाली, मन के प्रफुल्ल पुष्पोद्यान को नष्ट करने वाली, एवं जगत के कैद खाने में जकड़ बंद रखने वाली हैं। पहली वासना विपत्ति वैसाहने वाली है मकान कोठी बनवाना। दूसरी वासना भी विपत्ति बुलाने वाली है। वह है जमीन जायदाद, गाँवों की जमींदारी आदि प्राप्त करने के उद्योग में लग जाना। तीसरी निकृष्ट वासना है तरुणी रमणी के साथ भोगासक्त होना। चौथी है धनी बनने की लालसा। श्रीदिव्य कनक महल फकीरी साज सजने वालों को प्राप्त होते हैं। उपर्युक्त चारों वासनाओं का जिनने त्याग नहीं किया उनके लिये श्रीमहल पहुँचना कठिन है।

॥ मूल छन्द ॥

२६२—सँकरे के लालची अभागी क्यों निज मरम पछाने।
पाखंडी पापी प्रपँच रत सदा विमुखता ठाने॥
प्रीतम पद पंकज सनेह बिनु विषय परमपद माने।
युगलानन्य पिशाच मिठाई देखत मूढ़ भुलाने॥ २१५॥

शब्दार्थः—सँकरे=दुःखविपत्ति, जंजीर। निज मरम=भगवद् रहस्य। पछाने=पहचानेगा। पाखंडी=कर्म, ज्ञान, उपासन को खंडन करने वाले॥ "पालनाच्छत्रयीधर्मः पा शब्देन निगद्यते। तं खण्डयन्ति ते यस्मात् पाखण्डास्तेन हेतुना।" प्रपंचरत=जगत जंजाल में फँसा हुआ। विमुखता=प्रतिकूल आचरण। पिशाच मिठाई=गंदी वस्तुओं को मिठाई में रूपान्तरण। मूढ़=बेवकूफ।

भावार्थः—जो भाग्यहीन हैं, वे तो जगत जेल में बँधाने के लिये जंजीर के ही लोभी हैं। उन विचारे को श्रीराम रहस्य का क्या पता ? वे तो परमार्थ को ही खंडित करेंगे। पाप कर्म में लिप्त रहेंगे और जगत जंजाल में जकड़े रहेंगे। प्रभु के प्रतिकूल आचरण ही में लगे रहेंगे। उनकी दृष्टि में प्रियतम श्री जानकी रमण के मधुर मनोहर पद कंज में प्रेम करना परमपद नहीं है, वे तो विषय भोग को ही नित्य अक्षय परमानंद माने बैठे हैं। पिशाच की मिठाई देखने में तो मिठाई लगती है, किन्तु यथार्थ में होती है घृणित दुर्गंधित वस्तु। उस धोखे में मूर्ख ही भूलते हैं। इसी प्रकार विषय भोग में ऊपर से आनन्दाभास प्रतीत होता है, किन्तु घृणित एवं विपत्ति परिणामी ही तो है। मूर्ख ही फँसेंगे उस में।

॥ मूल छन्द ॥

२६३– दुमियेदार फकीर यार हक पास कभी जो आते हैं।
जरा निशस्त बाद घर घर की चरचा चटक चलाते हैं॥
दौलत या फरज़ंद मंद मति माँगत शरम न लाते हैं।
युगलानन्यशरन संतों के दिल को आनि सताते हैं॥ १२२॥

शब्दार्थः—दुनियेदार = सांसारिक मनुष्य। हक = ईश्वर। यार = मित्र। निशस्त फा० = बैठक। चटक = चटपट। दौलत अ० = धन समपत्ति। फरजंद (फर्जंद फा०) = बेटा।

भावार्थः—हृदयेश श्रीजानकीरमण के स्नेहवंत रसिक सन्तों के पास संसारी पुरुष आते ही नहीं। यदि कभी आ भी गये तो, थोड़ा सा प्रणाम, स्थान ग्रहण आदि प्रारंभिक शिष्टाचार के बाद, तुरत घर घर की लोकवार्त्ता छेड़ देंगे। रसिक दिव्यदेश के मानसिक निवासी होते हैं। लोक-चर्चा इन्हें कटु लगती है। परन्तु शील के मारे सुनना पड़ता है। उसके बाद माँग बैठेंगे धन सम्पत्ति या बेटा। ये गँवार यह भी नहीं विचारते कि देखो यह जगत जाल से अलग होकर क्या दिव्यानन्द लूट रहे हैं. इनसे संसार में फँसाने वाले बेटा धन नहीं माँगना चाहिये। निर्लज्ज होकर यही मागेंगे। इनके इस व्यवहार से संतों को बड़ा कष्ट होता है।

दूसरा अध्याय, स्वसुख वासना

❁ मूल छन्द ❁

२६४– स्वसुख समेत सनेह खेह सम स्वाद नेक नहि तामें।
स्वारथ लिये रहत केवल नित प्रीतम प्यार न जामें॥
युगल केलि कमनीय मधुर तर रंचक उदय न तामें।
युगलानन्यशरन तत्सुख उज्ज्वल रस ललित ललामें॥ १३३॥

शब्दार्थः—स्वसुख = अपने दिव्य सखी स्वरूप के लिये अन्तर रति की चाह। खेह = धूलवत् तुच्छ। स्वारथ = अपने कामसुख के प्रयोजनवान। प्रीतम प्यार = श्रीजानकीरमण के प्रति लाड़-दुलार। युगल केलि = श्रीमैथिली रघुनन्दन के सेज विहार। कमनीय = अत्यन्त वाञ्छनीय। मधुर-तर = स्वसुख से अधिक सुस्वादु। ललित = युगल केलि प्रधान। ललाम = श्रेष्ठ हैं।

भावार्थः—दिव्य विहार देश के श्रृङ्गार भाव प्रधान रागानुरागा मधुरा रति के एक दृष्टि-कोण से दो भेद माने जाते हैं। १ संबंधानुगा, २- कामानुगा। अधिकांश रूप से श्रीरामसखेजी के माध्व सम्प्रदाय में परकीया भाव परक कामानुगा रति की प्रधानता है। श्रीरामानन्द सम्प्रदाय

के प्रधान प्रवर्त्तकाचार्य श्रीअग्रदेव स्वामी और उनके कट्टर अनुयायी श्रीयुगलप्रियाजी की परंपरा में सम्बन्धानुगा रति ही समादृत है। सम्बन्धानुगा रति की व्याख्या, हम कविश्री की श्रीयुगल-विनोद विलास नामक पुस्तिका से उद्धृत करते हैं।

"काहू विधि नहि उचित इतै रति आन तियन सन।
केवल श्रीमिथिलेश किशोरी सुकर बिकयो मन ॥
जेती व्याही वाम प्रानवल्लभ सुखमा कर।
श्रीलाडली सुसेव सजन कारन प्रमोद कर ॥
तत्सुख सुखी प्रधान स्वसुख अंतर अदाग रति।
नैन बैन सत सैन चिवस विट्ठल सनेह मति ॥" ४।२१६॥

सच्चे स्नेह की माँग है अपने प्रेमास्पद को ही सुख देना। कामानुगा प्रीति वाली कामिनी अपनी इन्द्रियों की तृप्ति चाहती है। उसे प्रियतम के प्रति सच्चा स्नेह नहीं जमता। युगल-किशोर की पारस्परिक प्रीति जीव धर्म से परे अलौकिक है। सर्व समर्थ ब्रह्म की गति विधि अचिन्त्य होती है। जीवा सखी का स्वसुख संपन्न स्नेह धूल के समान रुक्ष एवं तुच्छ समझा जाता है। दिव्य देशीय स्नेह का परम रसानन्द स्वसुख में अनुभूत नहीं हो पाता। कारण यह है कि स्वसुख प्रयोजनवती कामानुगा रति में अपनी इन्द्रिय तृप्ति की चाह प्रधान होती है। श्रीप्राण-वल्लभ के प्रति निष्काम प्रेम का स्वारस्य उसमें कहाँ पाइये ?

"चातक चक्क चकोर मोर गन मीन कमल कल आशक हैं।" (पृष्ट ३५)

में उद्धृत इस शीर्षक वाले छन्द को पढ़िये और निष्काम प्रेम समझिये। दिव्यविहार देश की श्रीराघव अन्त:पुर विलासिनियों के मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ कुछ ऐसे विलक्षण द्रव्य के बने हैं, जिनमें स्वसुख चाह टिकती ही नहीं। इनकी मधुरा प्रीति युगलकिशोर के लिये रतिसुख प्रयोजनवती होती है। स्वसुख अर्थिनी को मान लीजिये कामसुख प्रदायक प्रियतम में कुछ प्रीति हो भी जाय, तो श्रीसियास्वामिनीजू के प्रति तो उसमें सौतियाडाह होना स्वाभाविक हो जायगा। श्रीवृन्दावन विहार देश की श्रीराधिका और श्रीचन्द्रावलि का पारस्परिक वैमनस्य प्रसिद्ध है। अन्तःपुर में "हमारे माई जनकललीजू के राज" है। स्वसुख चाहने वाली के लिये "पानी में रहकर मगर से वैर" करना हो जायगा। वहाँ के विहार देश में युगलकेलि को दूर से अवलोकन करने में स्वसुख से बढ़कर अनन्तगुणा सुख मिलता है। चकोर दूर से चन्द्र प्रदर्शन का आनन्द लूटता है। कुमुदिनी का हृदय दूरस्थ चन्द्र दर्शन से प्रफुल्लित हो जाता है।

'पिय प्यारी रति केलि में, तत्सुख के दृग योग।
उदय चंद के कुमुद गन, दृग चकोर के भोग ॥"
"अपने सुख की चाय, केलि करत नृप लाल सँग।
सिय स्वामिनी विहाय, धर्म जाय अंतहु विपति ॥"

श्रीमिथिलेश किशोरी से भिन्न—

अपर नायिका रमन जानकी रमन न काचित ।
सखी समूह विशेष तत्सुखी स्वाद विभावित ॥
हठवस स्वसुख प्रधान करहिं जे विना विचारे ।
तिनहि न मोद विनोद जुगल संपति विनु धारे ॥

श्रीयुगल विनोद विलास ३।१५

युगल केलि अवलोकन में, स्वसुख परक कामानन्द से कहीं अधिक सुख स्वाद है,जिसे तत्सुखी जानती है। स्वसुख चाहने वाली को वह कहाँ मयस्सर ? कविश्री तत्सुख को ही शृङ्गार रस का नामान्तर उज्ज्वल रस मानते हैं। स्वसुख चाह से शून्य निस्स्वार्थ हृदय ही निर्मल और उज्ज्वल होता है। उसी शृङ्गार भाव की उज्ज्वल रस संज्ञा सार्थक है। प्रिया सुख को ही तत्सुख कहते हैं। वही ललित भी है और ललाम भी।

❀ मूल छन्द ❀

२९५— दरजा दूर इश्कबाजन का कहन सुनन तें न्यारा है ।
महबूबों दी मेहर न माँगे कहर महामुद धारा है ॥
आप खाक में मिले मौज से दिलजानी दिलदारा है ।
युगलानन्य एकटक हरदम नेही नजर ❀निहारा है ॥ २२४ ॥

(पुराने पाठों में ❀ यहाँ 'निजारा' शब्द छपा है। हमें अरबी,फारसी,हिन्दी एवं संस्कृत के किसी शब्द कोष में निजारा शब्द नहीं मिला। अतः हमने निजारा शब्द को मूल प्रति की प्रतिलिपि का लेख प्रमाद समझकर, उसके स्थान में प्रसंगानुकूल उचित 'निहारा' पाठ रखा है।)

शब्दार्थः - दरजा (दरजः अ० = गौरवमय पद। दूर = अति ऊँचा। इश्कबाजन = आशिकों। न्यारा = विलक्षण। महबूबों = युगल प्रेमास्पद। दी० पं० = की। मेहर = दया। कहर (कह्र अ० = कोप, क्रोध। खाक = धूल। मौज अ० = आनन्द। दिलजानी = प्राणों के प्राण। दिलदारा = प्रियतम। नेही नजर = सुखान्वेषिणी दृष्टि से।

भावार्थ — आशिकों का अत्युच्च गौरवमय पद कहने सुनने में नहीं आने को। आशिक के ऊपर यदि प्राणप्यारे कोप करते हैं तो उसका अर्थ लगाते हैं कि प्यारे मुझे ताड़न कर विशुद्ध बना रहे हैं। विशुद्ध बनाकर अधिक प्यार से अपनावेंगे। इस विचार से प्रियतम कोप को बड़े हर्ष के साथ स्वीकार कर लेते हैं। उस दशा में प्रियतम से दया की भीख नहीं माँगते। "जासु कृपा नहिं कृपा अघाती" में कृपा का संकोच कहाँ ? जितना मैं चाहूँ, उससे अधिक कृपा हो ही रही है। दृश्य कोप के अभ्यन्तर भी कृपा ही का विधान है। इश्क नगर की प्रीति-नीति के अनुसार आशिकों को स्वसुख की चाह कतई नहीं होती। उनका रागासक्त हृदय प्रियतम सुख को ही स्वसुख मानता है। हमारे

प्राणों के प्राण सुखपूर्वक अपने महल विलास में पगे रहें। उनके सुख संपादन में हमें मरमिट कर धूल में भी मिल जाना पड़े, तो बड़ा सौभाग्य मानेंगे। आशिक की प्रियतम सुखान्वेषिणी दृष्टि टकटकी लगाकर, उन्हीं के सुख की चाह में उनका रुख निहारा करेगी कि हमारी कौन सी सुख संपादिनी सेवा चाहते हैं प्यारे।

॥ मूल छन्द ॥

२६६– रोवें राग रंग रंजित दृग दिल दिलवर सुख सोवें।
भोवें वाग विहार वदन वदि भोवैं भाव विलोवें॥
पोवें प्रेमपूप पावन प्रिय हिय अंतर गुन गोवें।
युगलानन्य शरन आशक कमनीय केलि जस जोवें॥ १६२॥

शब्दार्थः—राग रंग=रास विलास। रंजित=निरंतर अवलोकन करने की चाह। दिल=हृदय के सेज भवन में। वदन=मुख। वदि द्विअर्थक=१-कहकर, (वंदि फा०) २-कलंक कालिमा। भोवे=भींज जायँ। भाव=सम्बन्धानुगा प्रीति। विलोवें=मंथन करें। पोवें=पकावें। पूप=मालपूआ। पावन द्विअर्थक=१-क्रिं० प्यारे के भोग आरोगने के निमित्त, २-वि० निष्काम (प्रेम) फलतः पवित्र। गोवें=संजोकर रखें। कमनीय=सुन्दर। जस=सुयश। जोवें=प्रतीक्षा करते रहें।

भावार्थः—प्रियतम के रास विलास के निरन्तर दर्शनेच्छु हमारे नयन किसी कारण से केलि-दर्शन में व्यवधान पड़ने पर. स्वभावतः छटपटायेंगे, रोवेंगे। परन्तु हम आशिकों को यह विचारना है कि आप रोवें तो रोवें, प्यारे खूब सुख से रहें। अतः नयन के अदर्शन विरह कष्ट नयन ही में रोक रखें। हृदय में नहीं पहुँचने दें। निष्काम प्रेम की मिठास चखाकर हृदय को प्रसन्न रखें। वहाँ की प्रसन्नता देख, हमारे हमदर्द हृदय विहारी प्रसन्न मन से वहाँ सुख शयन करेंगे। लोकचर्चा, परापवादसे वचन की पड़ी कालिमा.मिटेगी युगलविहार चर्चा मुखसे कथन करने पर ही। सम्बन्धानुगा प्रीति से अपने हृदय को भिजाये रखना चाहिये। पुनः उस प्रीति को मथकर उसमें से तत्सुख-रूपी मक्खन निकाल लेना चाहिये। अपने प्राणप्यारे के पाने के लिये पवित्र भावमय छेने का रस-पूआ पकाना चाहिये। दिव्य कामानन्द ही मानो शुद्ध गौ का दूध है। कामानन्द नायक नायिका दोनों ही के द्वारा रसनीय होने से उभय पक्षीय होता है। उस कामानन्दरूपी दूध से स्वसुखरूपी जलीय अंश निकालना है। स्वार्थ त्याग रूपी खटाई डालकर काम सुख रूपी दूध को फाड़ डालें। अब स्वसुख जलीय अंश को निकाल कर फेक दें। दूध सारवत छेनारूपी तत्सुख में प्रिया सुख रूपी मैदा मिला दीजिये। छेना मैदा मिश्रित युगल काम सुख रूपी पदार्थ को तदीयत्व स्नेह के घृत में खौला लीजिये। उसमें युगलकेलि रूपी सारतत्व को छानकर पूआ पकाइये। पुनः मदीयत्व स्नेह के मधु में उसे पाग देकर,रसपूआ तैयार कर लीजिये। शुद्ध प्रेमपूआ तैयार हो गया। अब अपने खाश युगलकिशोर को भोग लगाइये। रसपूआ के साथ तसमई का भोग अधिक सुस्वाद होता है। काम-सुख रूपी दूध तो है ही, उसमें विपरीत रति वाला प्रियासुख चावल तथा प्रियतम सुख शक्कर

मिलाकर तस्मई तैयार कर लीजिये। मधुर वस्तु के साथ कुछ चाट भी चाहिये। नर्म हास-परिहास ही चाट बन जायगा। क्या सुन्दर मजेदार भोग है। अर्पण करिये अब अपने युगल मन भावन को। युगल रससुख को दूर से ही देख देख आप फूले नहीं समाइयेगा। सखी स्वरूप दृग भोगी जो होता है? अपने मनरंजन युगलललन में जो वात्सल्य सौशिल्य, सौहार्द, सौकुमार्य सौगन्ध्य आदि गुणगण हैं उनको अपने हृदयमें सँजोकर रखना चाहिये। अपना अन्तःकरण सतत दिव्यप्रेम से सराबोर रहेगा। कविश्री का सुमधुर आदेश है कि आशिकों को चाहिये कि युगल हृदयेश की केलि क्रीड़ाओं को तथा उनके रसयश को सतत टकटकी लगाकर देखते रहें। रसमय टहल की ताक में तत्पर रहें। अवसर अनुकूल युगल रस सुख संपादिनी सेवा का आनंद लूटें।

॥ मूल छन्द ॥

२६७– आशक को हरवखत मोनासिब खबर बेखबर होना।
सनम शौक सोहबत जाहिर में खूब जागना सोना॥
अच्छी चीज मधुर दिलवर हित आप खुशी दुख ढोना।
युगलानन्य सनेह समुझ बिन वृथा जनम को खोना॥ ४६ ॥

शब्दार्थः–हरवखत फा०=सब समय. सदा सर्वदा। मोनासिब अ०=उचित। खबर=भीतर से सजग तत्पर। बेखबर=बाह्य संसार की घटनाओं से अनजान। सनम अ०=प्रेमास्पद। शौक अ०=सेवाके लिये उत्कंठित। सोहबत (सुह्बत अ०)=सहवास। जागना=सावधान। सोना=बेखबर रहना। अच्छी=देखने में सुन्दर। मधुर=स्वादिष्ट। सनेह=प्रीति रीति। समुझ=मर्म जाने। खोना=बर्बाद करना।

भावार्थः—कविश्री का अमृत उपदेश है कि आशिक के लिये उचित है कि भीतर से युगल ललन की मानसिक सेवा में सदा तत्पर (खबर) रहे तथा बाहर से संसार के भान से बराबर बेसुध रहे। अपने प्रेमास्पद युगलकिशोर की रसमय सेवा करने के लिये समुत्सुक होकर, उनके अति समीप डटे रहें तथा संसार के बाह्य व्यवहार से अनजान रहें। ध्यानमग्न बाहर से देखने में आलस में विभोर होकर सोये हुये से प्रतीत होते ही हैं। प्रेम का आग्रह होता है कि प्रिय दर्शन एवं सुस्वाद वस्तु अपने माशूक प्यारे को समर्पण कर, उन्हें सदैव सुखानन्द से सम्पन्न देखें और मन ही मन प्रसन्न होवें। यदि अप्रिय दुखद प्रसंग आ पड़े, तो उसे अपने हिस्से में रखें। प्यारे के सुखार्थ प्राणनाश का कष्ट भी हो, तो उसमें प्रेमी को प्रसन्नता ही होती है। यह राग दशा का धर्म है। प्रीति रीति का रहस्य आशिक ने जाना नहीं, तो उसका देवदुर्लभ मानव जीवन ही व्यर्थ हो जायगा।

तीसरा अध्याय, इश्क ढकोसला

॥ मूल छन्द ॥

२६८– फक्कर कहाना जगत रिझाना कहु किसने फरमाया है ?
शाहनशाह गुलाम हुवा फिरि किसको शीश नवाया है ?
पारस मनि जब हाथ लगी तब कौड़ी कौन कमाया है ?
युगलानन्यशरन हरदम बिन चाह फकीरी गाया है ॥ २४४ ॥

शब्दार्थः—फक्कर (फक्र अ०)=विरक्त साधु । फरमाया (फर्माया फा०)=शास्त्र या आचार्य की आज्ञा । शाहनशाह (शाहंशाह फा०)=सार्वभौम सम्राट् । गुलाम अ०=सेवक । पारस मनि (स्पर्शमणि सं०)=मधुरा भक्ति में पा . या जाता है) रस । कौड़ी=लौकिक भोग वस्तु तुच्छ है । बिन चाह=कामना शून्य ।

भावार्थः—संसार के सभी भोग वस्तुओं से राग त्यागने पर ही विरागी या वैरागी बनना होता है । विरक्त भजनानन्दी के शरीर निर्वाह के लिये भोजन वस्त्र की व्यवस्था अयाचित वृत्ति धारण करने पर भी भजनीय विश्वम्भर करते ही हैं । भजन करने वाले निश्चिन्त रहते हैं । "राम खबरिया लेवे करिहैं । भूख लगे तब देवे करिहैं ॥" उचित तो यह था कि हम भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के शब्दों में धनियों का तिरस्कार कर देते । "ये रे धनी नीच हमे तेज तू दिखावे कहा गज परवाही नहि होत कभूँ खरके । होय ले रसाल तू भले ही जग जीव काज आसी ना तिहारे ये निवासी कल्प तरु के ॥" सो न करके हम जगत के धनी मानी व्यक्तियों की खुशामद करते हैं । इसका स्पष्ट अर्थ है कि अर्थ-संग्रह चाहते हैं । कंचन के संग्रह करने पर कामिनी के प्रति राग उदित होना अवश्यम्भावी है । फिर हमारे वैरागी कहाने का क्या अर्थ रह जायगा ? विरक्तों के लिये लोकरंजन में प्रवृत्त होने का आदेश न तो किसी सम्प्रदायिक ग्रन्थों का है, न किसी आचार्य का । हमारे इष्ट श्रीजानकीरमण उभय विभूति नायक परात्परतम ब्रह्म हैं ।

स्वारथ परमारथ सकल सुलभ एक ही ओर ।
द्वार दूसरे दीनता उचित न तुलसी तोर ॥ (श्री दोहावली)
को करि कोटिक कामना पूजे बहु देव ।
तुलसिदास तेहि सेइये संकर जेहि सेव ॥ (श्री विनय)

उदार चूड़ामणि श्रीचक्रवर्तीकुमार का सेवक कहाकर अदनों के सामने शिर झुकाना लज्जा-जनक है । मधुराभक्तिरूपी पारस को पाकर, दिव्यानन्द में आप ऐसे अघाये रहेंगे कि विषया-नन्द कौड़ी के समान तुच्छ प्रतीत होगा । उसको कौन पूछे ? आचार्यचरण का श्रुति संत सम्मत आदेश है कि फकीरी सर्वकामना वासना शून्य होनी चाहिये ।

चाह गई चिंता मिटी, मनुआ वे परवाह ।
जो को कछू न चाहिये, सोई शाहनशाह ॥

❀ मूल छन्द ❀

२९९– नाम फकीर असीर हमेशे जगत कोठरी अंदर है ।
लालच अलप वासते घूमें ज्यों बाजारी बंदर है ॥
संत संग में रंग न सपने विषय विहारी कंदर है ।
युगलानन्य शरन नालायक भजन विहीन कलंदर है ॥ २४५ ॥

शब्दार्थः—असीर अ०=कैदी । अलप (अल्प सं०)=थोड़ा । बाजारी=मदारी के हाथों बाजार में नाचने वाला । रंग=श्रद्धा अनुराग । कंदर=गुफा । विहारी=भोग विलास करने वाला । नालायक=मूर्ख । कलंदर=संसार से विरक्त मुसलमानी साधु बंदर नचाने वाला मदारी ।

भावार्थः—हम फकीरी अर्थात् साधु का वेशभूषा धारण करके, संसार के मोह जाल रूपी कोठरी में कैद हो रहे हैं । काष्ट जिह्वा स्वामी ने हमारे ही जैसे साधु के स्वांग सजने वालों के लिये ठीक ही कहा है —

"साधु कहावत न लागत सरम ।
बाना बड़े बड़े को धारत, पाजिन के सब करत करम ॥"

भोग सामग्री जुटाने के लिये अर्थ की आवश्यकता है। थोड़े ही पैसों के लोभ से घर घर में बाजारी बन्दर के सामने नाचते कूदते फिरते हैं । 'लोभ मनहि नचाव कपि ज्यों गले आसा डोरि ॥" इतना भटक जाने पर भी सच्चे संतों का सत्संग प्राप्त होता, तो पुनः आत्म सुधार कर सही रास्ते पर आ जाते, किन्तु सन्तों के संग में स्वप्न में भी श्रद्धा नहीं होती । कारण यह है कि हम विषयभोग रूपी कंदरे में अँटक रहे हैं । भोगासक्त व्यक्ति की सच्छ्रद्धा मारी जाती है । कविश्री हमें मूर्ख बताकर, धिक्कारते हैं । तू इष्ट भजन भावना को छोड़कर, साधु वेषधारी बंदर नचाने वाला मदारी बन गया ।

❀ मूल छन्द ❀

३००– इश्क फकीरी अमल अमीरी दमरी सेर नहीं है ।
कोह मोह की बेरी पहिरे सूरति फिरत बही है ॥
मन महबूब मिलाय न पलभर खाते दूध दही है ।
युगलानन्य शरन बातों से किसने लाल लही है ॥ २४२ ॥

शब्दार्थः—फकीरी=विरक्तों के लिये प्राप्य । अमल=कर्म । अमीरी=धनियों के ठाट । दमरी (दमड़ी)=एक पैसे का आठवाँ हिस्सा । कोह=क्रोध । मोह=ममता । बेरी (बेड़ी)= कैदी के हाथों में हथकड़ी पाँवों में बेड़ी पहनाई जाती है। सूरति=स्मरण वृत्ति । बही=इधर उधर प्रवाहित हो रही है । महबूब=प्रियतम इष्ट । पलभर=क्षणमात्र ।

भावार्थः—फकीरों के लिये निष्किंचन वृत्ति विहित है। उसी वृत्ति के आचरण करने वालों को इश्क हासिल होता है। इधर हमारी रहनि धनीमानी के ठाट से बनी हुई है। हमें इश्क प्राप्त हो भी तो कैसे ? बाजार में एक दमड़ी दाम देने पर सेर भर का सौदा मिल जाय, ऐसा सस्ता इश्क नहीं है। इश्क प्राप्ति का दूसरा उपाय है चित्तवृत्ति को एकाग्र बनाकर, सपरिकर युगलकिशोर की ध्यान भावना में अँटकाना। सो स्मरण वृत्ति एकाग्र न होकर, इधर उधर बहकती फिरती है। एकाग्र हो भी कैसे? क्रोध, मोह आदिक विकार चित्त में खलबली उत्पन्न करने वाले हैं। चित्त को स्थिर कैसे करें ? विकारों को दबावें तब न? दूध दही आदिक पौष्टिक वस्तुओं के खाने से जहाँ शरीर हृष्ट पुष्ट होता है, तो वहाँ कामादि विकार भी साथ-साथ प्रबल हो जाते हैं। विकृत मन प्रियतम के ध्यान में लगेगा ही नहीं। ध्यान करने के लिये सूक्ष्म मन की आवश्यकता है। सो होगा तब जब "जीवत ही लक्कर ह्वै जावे सो सक्कर को खावेगा। देखिये पृ० ६१ का छन्द ६६।" कविश्री पूछते हैं, बात बनाने से श्रीअवधलाल किसको प्राप्त हुये हैं? उनकी प्राप्ति के उपयुक्त साधन श्रम की आवश्यकता है।

॥ मूल छन्द ॥

३०१– इश्क फिस्क मानिंद मिस्क अज वसद रांग दिल अन्दर।
तिनको कहाँ मयस्सर इह रस लज्जत छविनिधि सुन्दर॥
कला अजूब खूब इस रस का वेदाँ मिसाल समुन्दर।
युगलानन्य शरन भूषन दुति क्या जाने बन बन्दर॥ ११६॥

शब्दार्थः—इश्क फिस्क=कामासक्ति। मानिंद फा०=समान। मिस्क (मुश्क फा०)=कस्तूरी। अज अ०=प्रभाव डालता है। वसद (वस्त अ०)=गाँठ। वे फा०=बिगैर। दाँ फा०=जानकार। मिसाल=समान। समुन्दर=समुद्र।

भावार्थः—इश्क मिजाजी अर्थात् कामुकता कस्तूरी की गाँठ के समान हृदयमें ही बनी रहती है। सौन्दर्य माधुर्य सुधा सिंधु श्रीअवधविहारी के प्रति इश्क का सुख स्वाद लौकिक काम लंपट को कहाँ प्राप्त होवे ? दिव्य इश्क रस समुद्र के समान अपार एवं अथाह है। इसकी प्राप्ति की युक्ति (कला) भी अत्यन्त विलक्षण है। कामी पुरुष इसके जानकार नहीं (वेदाँ) हो पाते। कविश्री कहते हैं कि मणि भूषणों की दीप्ति को वन में रहने वाला बन्दर क्या जानेगा ? उसी प्रकार दिव्य इश्क की प्रभा से कामी मनुष्य सर्वथा अनभिज्ञ रहेंगे। इश्क हकीकी और इश्क-मिजाजी में आकाश जमीन का अन्तर है।

चौथा अध्याय, कुसङ्ग

॥ मूल छन्द ॥

३०२– जहर जोगाय जान जीवन जिय सुधा सुनत सकुचावे।
काँच समान लिये मत डोलत चिंतामनिहि हँसावे॥

छोई छार भार वाहक सठ कहो कंद कहँ पावे।
युगलानन्य शरन कुराह गत राजपंथ किमि भावे॥ १६४॥

शब्दार्थः—जहर=विषयभोग रूपी विष। सुधा=श्रीनाम रटन। काँच समान मत=स्मार्त मत। चितामनि=‘राम भगति चितामनि सुन्दर”। छोई=गन्ने की सिट्ठी। छार=खारी नमक। कंद फा०=मिश्री। कुराह=काँटे कङ्कड़ वाला रास्ता। राजपंथ=सुगन्ध छिड़की हुई चिकनी चौड़ी सड़क।

भावार्थः—“तव उर कुमति वसी विपरीता। हित अनहित जानहु रिपु प्रीता॥” विषयी जीवों की बुद्धि विपरीत हो जाती है। विषय भोग विपत्ति परिणामी है। प्रारम्भ में क्षणिक सुखाभास देकर, रोग, शोक, नरक, पुनर्जन्म आदि विपत्ति का समारंभ कर देता है। ऐसे विषय विष को ही अपने प्राण धारण का अवलंब अपने मन में समझकर, भोग वस्तुओं के संचय एवं संरक्षण में रचते पचते रहते हैं। श्रीसीतारामनाम जप अमृत के समान चिरजीवन एवं शाश्वत सुख देने वाले अमृत ही हैं। उसके लिये उपदेश सुनेंगे तो सकुचा कर घर में घुस जायेंगे। सकाम कर्म के फल देने वाले स्मार्त मत के देवता हैं. उनके सकाम अर्चन शीशे के टुकड़े के समान झलकने वाला फल दिखाता है अवश्य, पर वह शीशा के समान कम कीमत और शीघ्र टूटकर नष्ट होने वाला होता है। श्रीरामभक्ति चिंतामणि के समान प्रकाश तथा दिव्य मनोरथों को देने वाली हैं। इनकी चर्चा को सुनकर, इनका उपहास एवं तिरस्कार करेंगे। गधा गन्ने की सिट्ठी, खारी नमक आदि का बोझ अपनी पीठ पर भले ढोता फिरे, उसे मिश्री चखने को कहाँ मिलेगी? उनके विचार नीरस एवं खारे होते हैं। श्रीराम भजनहीन को मिश्री कैसे मयस्सर हो? विषयभोग के कंटकाकीर्ण मार्गपर चलने वाले को ‘गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहि लगत राज डगरो सो” कहाँ मिल सकता है?

॥ मूल छन्द ॥

३०३— परम परेश सुदेश ज्ञान लवलेश न उर फुर भासे।
वंचक वेद विमल विद्या पढ़ि वाद विवाद विकासे॥
वैभव बोध विराग रहित अविहित बहु वचन निकासे।
युगलानन्य शरन सीतापति भजन विमुख खर खासे॥ १६३॥

शब्दार्थः—परम परेश=उभय विभूति नायक सर्वेश्वर श्रीजानकीपति। सुदेश=श्रीसाकेत। फुर=सत्य। भासे=प्रतीत होता है। वंचक=ठग, धोखेबाज। वाद विवाद=शास्त्रार्थ। विकासे=बढ़ावेंगे। वैभव=सम्पत्ति। अविहित=वेद विरुद्ध। निकासे=मुख से कहेंगे। खर=गधे। खासे=सर्वांग पूर्ण।

भावार्थः—“पुरुष प्रसिद्ध प्रकाश निधि, प्रगट परावर नाथ। रघुकुल मनि मम स्वामि सोइ, कहि सिव नायउ माथ॥” परात्परतम ब्रह्म श्रीअयोध्या विहारी हैं। उनका स्वदेश नित्य अयोध्या या

साकेत है। "जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि।" नित्य त्रिपाद् विभूति में तथा मर्त्यलोक के ऊपर भी नित्य अयोध्या की स्थिति तथाकथित ब्रह्मज्ञानी वेद, पुराण, संहितादि प्रामाणिक ग्रन्थों में पढ़ेंगे अवश्य, किन्तु उनकी सत्तामें इन्हें हृदयसे विश्वास नहीं होगा। धाम का अर्थ प्रकाश लगाकर,श्रीधाम की साकार सत्ता का अर्थ पलट देंगे। इन्होंने वेद की विमल विद्या पढ़ी अवश्य, किन्तु समझा नहीं। समझने पर इनकी कहने सुनने से परे ब्राह्मीस्थिति हो जाती। ये तो शास्त्रार्थ के चक्कर में विद्वानों से जा-जाकर भिड़न्त करते फिरते हैं। ये वेदज्ञ नही हैं, हैं धूर्त और ठग। ज्ञान की सम्पत्ति तो है पर वैराग्य। वैराग्य से ही ज्ञान का उदय एवं संरक्षण होता है। आपको विश्वास नहीं हो, तो इनके घरेलू आचरण की जाँच पड़ताल करके समझ लीजिये। हृदय में सच्चे ज्ञान के अभाव से ये जो वचन कहेंगे प्रायः उन्हें वेद विरुद्ध ही समझिये। जो श्रीजानकीवर प्रभु का भजन नहीं करते हैं, वह ब्रह्मज्ञानी नहीं बिल्कुल गधे हैं गधे।

"रामचन्द्र के भजन बिनु, जो चह पद निर्वान।
ग्यानवंत अपि सो नर, पसु बिनु पूँछ बिषान ॥" (श्रीमानस ७।७८)

॥ मूल छन्द ॥

३०४– ऊमर कुसुम शशा विषान वन्ध्या सुत सम दरसाते हैं।
भाग्यहीन नीरस मलीन मन दृढ़ विश्वास बढ़ाते हैं॥
स्वान समान अजान अलायक जहँ तहँ धक्का खाते हैं।
युगलानन्य शरन राघव गुन विमुख सदा पछताते हैं॥ २१० ॥

शब्दार्थ—ऊमर=गूलर। शशा=खरगोश। विषान=सिंह। स्वान=कुत्ता।

भावार्थः—गूलर में फूल नहीं होता। खरहे को सिंह नहीं होते। बाँझ को बेटा पैदा हो जाय, तो उसे बाँझ कहेंगे कैसे? इसी प्रकार श्रीराम विमुख होने पर सुख होता ही नहीं। "जो आनन्द सिन्धु सुख रासी। सीकर ते त्रैलोक सुपासी॥ सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक विश्रामा॥" अखिल लोकों के एकमात्र सुखदाता के विना सुख कहाँ पाइयेगा?

"कमठ पीठ जामहि बरु बारा। बंध्या सुत बरु काहुहि मारा।
तृषा जाइ बरु मृग जल पाना। बरु जामहि सस सीस बिषाना॥
अन्धकार बरु रबिहि नसावै। राम बिमुख न जीव सुख पावै॥"

श्रीमानस ७।१२२।

श्रीराम भजन व्यतिरेक अन्य उपाय से सुख प्राप्ति बताते हैं. तो झूठे हैं, अभागे हैं। "सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं विषय अनुरागी॥" श्रीराम भक्तिरस विरहित हृदय, नीरस होता है, भजनहीन तो मलीन होंगे ही। अनन्तानन्त कल्याण गुणगण निधान सगुण ब्रह्म श्रीराम को ये निर्विशेष मानकर, उसी में दृढ़ विश्वास करते हैं। चाहे दुनियाँ इन्हें विद्वान मान लें; परन्तु यथार्थ

में हैं ये 'धोबी के कुत्ता न घर का न घाट का ।।' अज्ञानी ऐसे ही कहाते हैं ।। जानकी जीवनु जान न जान्यो तो जान कहावत जान्यो कहा है ।। श्रीकवितावली ७/३६ ।। लोक परलोक में सब जगह धक्के खाते फिरेंगे, कहीं इन्हे ठौर ठिकाना नहीं मिलेगा । कविश्री कहते हैं कि सगुणब्रह्म श्रीराम से विमुख रहने के कारण इन्हें पछताना पड़ेगा "सो परत्र दुख पावई, सिर धुनि धुनि पछिताइ ।"

❀ मूल छन्द ❀

३०५—करम कीच के बीच धसे मुख से विज्ञान बताते हैं ।
वाचक व्यर्थ वाद वादी नहिं लक्ष्य लाभ लखि पाते हैं ।।
राम अनादि निखिल ईसनपति प्रीति रहित बिललाते हैं ।
युगलानन्यशरन इह भवनिधि फिरि फिर आते जाते हैं ।। २१२ ।।

शब्दार्थ: करम कीच=सकाम कर्म रूपी कीचड़ । वाचक=बताने वाला शब्द मात्र । व्यर्थवाद=कोई लाभ नहीं हो ऐसा तर्क । वादी=वक्ता । लक्ष्य=साध्य वस्तु श्रीराम भक्ति । लाभ= प्राप्ति, साधन । निखिल=सब । ईशन=ईश्वरों के । पति=स्वामी । बिललाते=रोते फिरते हैं ।

भावार्थ:—कोई कोई तथाकथित ब्रह्मज्ञानी आलसी और निकम्मे होते हैं । उन्हें मक्खी मारते देखो, तो कहेंगे भई, मुझे तो आत्मानुभव हो गया हैं, अब शास्त्र के मत से मेरे लिये कोई कर्त्तव्य कर्म करणीय नहीं रह गया । प्रमाण में श्रीगीता अध्याय ३ का १७ वाँ श्लोक उद्धृत कर देंगे ।

"यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ।।"

भोग सामग्री जुटाने में आकाश पाताल एक कर देंगे । उस समय बड़े कर्मठ बन जायेंगे । ऐसे विद्वानों में केवल वाक्य ज्ञान मात्र होता है । अपने कथन की पुष्टि में जो वेद वचन उद्धृत करेंगे, उनका तात्पर्य स्वयं भी नहीं लख पाते । वेद ज्ञान के परम मर्मज्ञ जगद्गुरु भगवान शंकर के श्री मुख वचन है । "जहँ लगि साधन वेद बखानी । सब कर फल हरिभगति भवानी ।।" श्रीमानस ७/१२६/७ । साध्य तत्त्व तो स्पष्ट है, पर विचारे सर्वज्ञ ज्ञानी कहाने वाले की समझ पर तो पत्थर पड़ा है । श्रीसीताराम रूप में मन को सटाये विना बुद्धि हो भी तो कैसे? "नास्ति बुद्धि रयुक्तस्य" श्रीगीता २/६६ । श्रीरघुवंशमणि राम तो सभी ईश्वरों के ईश्वर हैं' हरिहि हरिता, विधिहि विधिता, सिवहिं सिवता जो दई । सोइ जानकी पति मधुर मूरति, मोदमय, मंगल मई ।।" श्रीविनय पत्रिका १३५/३ । अनादिब्रह्म भी आप ही है ।

"विषय करन सुर जीव समेता । सकल एकते एक सचेता ।। सब कर परम प्रकासक जोई । राम अनादि अवधपति सोई ।।" ऐसे परात्पर ब्रह्म के श्री चरणों में जिन्हें प्रीति नहीं हुई, उन्हें जन्मजन्म रोते रहना पड़ता है । इस संसार सिन्धु के जन्म मरण प्रवाह में सतत बहते रहेंगे । श्रीमानस का अकाट्य सिद्धान्त है—

साधक सिद्ध विमुक्त उदासी। कवि कोविद कृतग्य संन्यासी।
जोगी सूर सुतापस ग्यानी। धर्म निरत पंडित विग्यानी॥
तरहि न बिनु सेए मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी॥

❀ मूल छन्द ❀

२०६— जाके रंग रूप रेखा नहिं कहि पुनि तहँ अरुझाते हैं।
अलख कहत कहु काहि लखत शठ अहमक जन्म नशाते हैं॥
इनकी कौन कथा कहिये चुप रहिये प्रान पिराते हैं।
युगलानन्य शरन निज सुख लहि फूले नहीं समाते हैं॥ २१३॥

शब्दार्थः—रंग=अंग वरण। रूप रेखा=सूरत सकल, पता ठिकाना। अरुझाते=फँसाना, अटकाना। अलख=जो मायिक मन, बचन, इन्द्रियों से नहीं गोचर हो अर्थात् दिखाई नहीं देवे। लखत=देखते हैं, अनुमान करते हैं। शठ=मूर्ख, वेवकूफ। अहमक अ०=निपट मूर्ख।

भावार्थः—हमारे इष्टदेव श्रीजानकीरमणजू के अंग वर्ण हैं–"नील सरोरुह नील मनि नील नीर धर श्याम।" उनको सूरत शक्ल के विषय में इसी से अनुमान कर लीजिये कि–"लाजहि तन सोभा निरखि कोटि कोटि सतकाम।" हमें अपने मन को फँसाने के लिये, अँटकाने के लिये, आधार है अपने इष्ट का रूप॥ हम सावधान होकर इष्ट रूप का ध्यान करें तो युक्ति है। "यथा अभिमत ध्याना द्वा" तो "समाधि सिद्धि रीश्वर प्रणिधानात्।" (योग सूत्र) इष्ट कृपा से अनायास हमारी प्रेम समाधि सिद्ध हो जायगी। ब्रह्मवादी जी महाराज, आपके निराकार ब्रह्म के तो न रूप है, न रंग। कहाँ अपना मन अँटकाइयेगा ? इष्ट गुण भी चिंतन करते तो भाव समाधि लग जाती। सो आपके कल्पित उपास्य हैं निर्गुण। लौकिक गुणहीन व्यक्ति तो हमारे किसी काम के नहीं होते। निर्गुण ब्रह्म में तो दया, करुणा, वात्सल्य आदि गुण भी नहीं होंगे। दुःख पड़ेगा तो कौन उबारेगा आपको ? जब आपके इष्ट अलख हैं, तो आप वेदान्त विद्या पढ़कर किसको लखने के लिये ब्रह्म ज्ञान का उपार्जन करते हैं ? हमारे आचार्य ने आपको शठ या महामूर्ख ठीक ही कहा है। निराकार ब्रह्मके चक्कर में पड़ेंगे, तो व्यर्थ देवदुर्लभ मानव जन्म नष्ट होगा। "ग्यान के पंथ कृपान के धारा। परत खगेस लाग नहिं वारा॥' कौन पतन के पंथ में पाँव धरते हैं ? भई, ऐसे नासमझों की चर्चा क्या की जाय? मौन रहना अच्छा है। जब वेद के विद्वान कहाने वालों में ऐसी नासमझी देखते हैं, तो प्राणों को बड़ा कष्ट होता है। अनपढ़ों की विमुखता से उतना कष्ट नहीं होता। भाई "करहु जाइ जा कहँ जोइ भावा। हम तौ आजु जनम फल पावा॥" कविश्री कहते हैं कि मुझे तो अपनी रसमयी इष्ट उपासना में इतना अधिक परमानन्द का अनुभव हुआ कि मेरे रोम-रोम प्रफुल्लित हो रहे हैं।

❀ मूल छन्द ❀

२०७— ख्याल खराव खार खातिर खल खाली खसम मनाते हैं।
वाल विहाल विवेक विगत वारु विच रस प्रगटाते हैं॥

शून्य सीम मत श्रुति सम्मत कहि कायर कूर अघाते हैं।
युगलानन्य शरन आशक सँग करत सदा सकुचाते हैं ॥ २०९ ॥

शब्दार्थः—ख्याल खराव=निकृष्ट दुर्भावना। खार फा०=काँटे। खातिर अ०=निमित्त। खाली=निर्गुण निराकार। खसम (खस्म अ० =पति स्वामी। वाल=मूर्ख। विहाल=शान्ति-हीन। शून्य सीम=अभाव का हद। कूर=निकम्मा।

भावार्थ—ब्रह्मज्ञानी कहाने वाले निराकार ब्रह्म को ही अपना स्वामी मानते हैं। अद्वैत ज्ञानी तो श्रीकबिर दासजी भी कहाते हैं—किन्तु उनने तो स्पष्ट शब्दों में कहा है कि 'सजनी गावो मंगल-चार, घर आये राम भतार" ब्रह्मवादीजी, इतनी बात आप भी मान लीजिये। "पतिं पतीनां परमं परस्तात्" श्वेता० ६।७। श्रीराम को अपना भतार मान लीजियेगा, तो बड़ा सुख होगा। शून्य पति कौन सुख देंगे? अभाव में भाव करना बड़ा ही बुरा विचार है, कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलना है। दुष्ट विचार वाले ही ऐसा करेंगे। "वारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल। बिनु हरि भजन न भव तरिअ, यह सिद्धांत अपेल॥" ७।१२२। श्रीजानकीरमण मनहरणलाल को सेव्य मानकर, उनकी उपासना जो नहीं करते हैं और चाहते हैं कि हम जन्म मरण के भवसागर से तर जायें तो, बालू से रस प्रगटाने का मूर्ख जैसा उद्योगकर रहे हैं। नासमझ बालक जैसे मिथ्या वस्तु के लिये बेचैन हो रहे हैं। सदा सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक ब्रह्म अनन्तरूपों से सिद्ध भक्तों से प्रत्यक्ष मिलते आये हैं। "सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनुबाना॥" ऐसे प्रत्यक्ष साकार ब्रह्म को शून्यसीम बता देना और झूठमूठ का श्रुति भगवती का सिद्धान्त बता देना, भक्तिके साधन श्रम से जी चुराने वाले आलसी और निकम्मों का काम है। विमल बोध वाले रसिक संतों का पाँव दबावें, तो उन्हें वेद का यथार्थ अर्थ समझ में आवेगा।

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥
—श्वेता० ६।२३

श्रीजानकीरमण के रसिक रंगीले आशिक ऊपर से गरीबी साज सजे दीनहीन दरसाते हैं। अतः ज्ञान गुमान में फूले हुये तथाकथित ब्रह्मवादी इनके सत्संग करने में अपनी मान प्रतिष्ठा की हानि मानकर संकोच करते हैं, उनसे सत्संग करने में। भाग्य फूटना इसी को कहते हैं।

❀ मूल छन्द ❀

२०८— जे सतपंथ पाँव धारे तिनको बहुविधि बहकाते हैं।
ज्ञान गरूर मरूर जहर प्याला पीये मदमाते हैं॥
दुर्लभ देह पाय मानव शठ अहं प्रवाह बहाते हैं।
युगलानन्य राम अनुरागिन तरफ ताकि खुनसाते हैं॥ २११ ॥

शब्दार्थः—गरूर अ०=अभिमान। मरूर (मरोड़)=घमंड। अहं=अहंकार। खुनसाते=क्रोध करते हैं।

भावार्थः—वेद ज्ञान का स्वांग सजकर, ये तथाकथित ज्ञानी तो स्वयं गये गुजरे हैं ही, परन्तु जो भोले भाले साधक श्रीराम स्नेही आशिकों का सत्संग पाकर, "श्रुति सम्मत हरि भगति पथ, संयुत विरति विवेक" पर आरूढ़ है उन्हें भी अपने वाक् जाल में फँसाकर पथ भ्रष्ट कर देते हैं। 'आपु गये अरु घालहिं आनहिं। जे कहुँ सतमारग प्रतिपालहिं॥" इसका कारण यह है कि ये ज्ञानी जी महाराज ज्ञानाभिमान; घमंडरूपी विष का प्याला पी करके, मतवाले बने हुये हैं। विष पहले नशा चढ़ाता है, पुनः मौतके घाट पार उतारता है। देव दुर्लभ मानव शरीर पाकर, उचित तो था, श्रीजानकी कांतजू का दीन-हीन सेवक बनकर, उनका भजन करते, सो स्वयं ब्रह्म बने हुये 'अहं ब्रह्मास्मि शिवोऽहं' कहते हुये घमंड की तीव्र धारा में बहते जा रहे हैं। चित्रकूट में समागत श्रीअयोध्या वासियों का श्रीसीतारामानुराग देखा तो वहाँ के योगी ज्ञानी अपने योग ज्ञान वैराग्य को धिक्कारने लगे, और मन ही मन तरसने लगे काश! हम भी श्रीराम अनुरागी होते। इतने दिन ज्ञान मार्ग में व्यर्थ बीत गये। ये तथाकथित ज्ञानी भी यदि श्रीरामानुरागियों की संगत करें, अवश्य श्रीराम रंग में रँग जायेंगे। परन्तु संग करना तो दूर रहा, ये तो इन्हें देखते ही क्रोध से जल उठते हैं। ईर्ष्या होती होगी, उनके सौभाग्य को देखकर। और क्या हो सकता है?

—: उपसंहार :—

॥ मूल छन्द ॥

३०६— श्रीसीतावर विवश नेह प्रिय प्रगट पुरान पुकारी है।
संत अनंत महंत कहे श्रीराम सुप्रीति पियारी है॥
चपल चतुरता कवितांई से रहित सनेह सुधारी है।
युगलानन्य अज्ञान ज्ञान बिन शीश इश्क पर वारी है॥ ३०४॥

शब्दार्थ—विवश नेह=स्नेही के परतन्त्र हो जाते हैं। नेह प्रिय='रामहि केवल प्रेम पिआरा'। पुकारी=स्पष्ट शब्दों में कहा है। अनन्त=शेष भगवान। महंत=महापुरुष। श्रीराम=अनंत शोभा सम्पति की अधिष्ठातृ श्रीमैथिलीजू के सहित हृदय रमण जू। सुप्रीति=साधक रमणी भावाविष्ट होकर उनसे मधुरा प्रीति करें। चपल=भाव गांभीर्य विरहित शीघ्रता पूर्वक रची हुई। चतुरता=उक्ति वैचित्री। वारी=न्यौछावर कर दिया है।

भावार्थः—रसिक शिरोमणि श्रीमिथिलेश किशोरीकान्त सर्वतन्त्र स्वतन्त्र सर्वेश्वर परात्परतम ब्रह्म हैं। किन्तु नेही आशिकों के ऐसे वशीभूत हो जाते हैं, मानो उसके क्रीत गुलाम हों। पुराणों ने डिमडिम घोष से स्पष्ट कहा है कि उन्हें एकमात्र नेह ही प्रिय है। 'रामहि केवल प्रेम पिआरा। जानि लेहु जो जाननि हारा॥' श्रीवैदेहीवल्लभ लाल को मधुरा प्रीति अत्यन्त प्यारी है, इस विषय में सिद्ध विशुद्ध रसिक संत, परमार्थ वक्तामणि भगवान श्रीशेष, महापुरुष गण सभी एक मत हैं। हमारे परमाराध्य आचार्य चरण यद्यपि सर्वगुण सम्पन्न ज्ञान विज्ञान निधान, तथा काव्यकौशल में निष्णात

हैं, फिर भी महापुरुषोचित कार्पण्य भाव से कहते हैं कि मैं न तो कोई आशु कवि हूँ, न मुझमें कविता रचने की कोई चतुराई प्राप्त है। मैंने अपने हृदयदेश में श्रीजानकीरमण जू के प्रति एकमात्र स्नेह को जोगा कर रख लिया है। कविता की कला से अनजान हूँ। ज्ञान विज्ञान का कोरा हूँ। तौ भी अपने मस्तक को इश्क देवता के श्रीचरणों में निवछावर कर दिया है। अतः स्वयं इश्क-देव ने जैसा चाहा, उसी भाँति उनके सुयश का प्रस्तुत ग्रन्थ में गान कर दिया है।

॥ दोहा ॥

इश्क कांति मुद मोद वर, विशद विनोद निधान।
युगलानन्य शरन रचित, पढ़ें सुने सुख खान॥

इति श्रीमधुर मञ्जु मालायां श्रीयुगलानन्य शरण
विरचितायां श्रीइश्कस्वरूप निरूपणं नाम
एकादशो इश्क कान्तिः॥११॥

शब्दार्थः—मुद=हृदय को शुद्ध बनाकर, उसमें हर्ष का संचार करना। मोद=हर्ष का समृद्ध रूप। विशद=विशुद्ध। विनोद=विरहोत्कंठा उद्दीपन।

भावार्थः—प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम श्रीइश्क कान्ति है। ग्रन्थ का उद्देश्य है, पाठक के अन्तःकरण को विशुद्ध बनाकर, उसमें दिव्यानन्द का संचार करना तथा श्रीरंगीलेलाल श्रीजानकीरमणजू से मिलने के लिये विशुद्ध विरहोत्कंठा को जगाना। दिव्योत्साह का तो खजाना ही इसमें भरा है। ग्रन्थ के यशस्वी रचयिता कविश्री रसिकाधिराज शिरताज अनन्त श्रीस्वामी युगलानन्य-शरणजी महाराज हैं। कविश्री का अमोघ आशीर्वाद है कि इस दिव्यग्रन्थ के पढ़ने सुनने वालों को सुख का खजाना ही हाथ लगेगा।

॥ इति श्रीइश्क रहस्योद्घाटिनी टीका सम्पूर्ण ॥

❀ शुभं भूयात्! मंगलं संतनोतु!! ❀

सी ता

कूद पड़ो दरयाव इश्क में क्यों डरते हो प्यारे ।
जो कुछ होनी होय सो होवे सिर सौंपे सुखसारे ॥
समा रमा जम जमा मयस्सर मुशकिल यार हमारे ।
युगलानन्यशरन सुधि बुधि बिन रहिये साँझ सकारे ॥

इश्कबाज सिरताज सबों में हर हमेश रँग बोरे हैं ।
नाता नेह गेह फानी संदेह बिना सब तोरे हैं ॥
खाहिश खलक ललक दो तरफी लखि दिल अंदर कोरे हैं ।
युगलानन्यशरन छाके छबि सरस स्याम तन गोरे हैं ॥

रा म

मनीराम प्रिन्टिङ्ग प्रेस, श्री अयोध्या जी (उ० प्र०)

सम्वत् २०३७ वि०